भारतीय स्वाधीनता संघर्ष के क्रान्तिकारी आन्दोलन में सरदार भगतसिंह की भूमिका

पी-एच.डी. उपाधि के लिये प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध
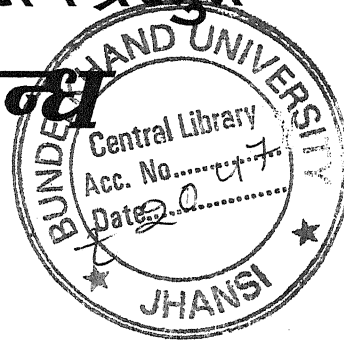
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

निर्देशक :
डॉ. श्रीमोहन लाल श्रीवास्तव
रीडर, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उरई (उ.प्र.)

शोधकर्ता :
श्रीमती मंजू जौहरी
प्रवक्ता, इतिहास विभाग
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उरई (उ.प्र.)

सरदार भगत सिंह

(1907 – 1931)

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि अनुसंधित्सु श्रीमती मंजू जौहरी, वरिष्ठ प्रवक्ता, इतिहास विभाग डी0वी0 (पी0जी0) कालेज, उरई ने **"भारतीय स्वाधीनता संघर्ष के क्रान्तिकारी आन्दोलन में सरदार भगत सिंह की भूमिका"** विषय पर मेरे निर्देशन एवं मार्गदर्शन में कला संकाय के अन्तर्गत इतिहास विषय में पी-एच0डी0 की उपाधि प्राप्त करने हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध तैयार किया है। यह शोध प्रबन्ध श्रीमती मंजू जौहरी का मौलिक कार्य हैं वह इस शोध प्रायोजना से दो वर्ष से अधिक सक्रिय रूप से जुड़ीं रही हैं। यह शोध-प्रबन्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी की पी-एच0डी0 परीक्षा की नियमावली के सभी उपबन्धों की पूर्ति करता है। इन्होने नियमित रूप से उपस्थित रहकर निर्देशानुसार कार्य किया है। इस शोध-प्रबन्ध का कोई भी अंश अथवा पूर्ण शोध-प्रबन्ध किसी अन्य विश्वविद्यालय की शोध उपाधि के विचारार्थ प्रस्तुत नहीं किया गया है।

यह शोध-प्रबन्ध श्रीमती मंजू जौहरी के अनुसंधान, परिश्रम और अध्ययन का परिणाम है। मैं इस शोध-प्रबन्ध के निरीक्षण तथा मूल्यांकन की प्रबल अनुशंसा करते हुये संस्तुति सहित अग्रसारित करता हूं।

शोध निर्देशक

SML Srivastava

डॉ0 श्री मोहनलाल श्रीवास्तव

रीडर- भूतपूर्व विभागाध्यक्ष

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

घोषणा-पत्र

मैं शपथपूर्वक घोषणा करती हूं कि प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मेरी मौलिक कृति है। मेरी जानकारी के अनुसार इस कार्य को इसके पूर्व किसी के द्वारा अन्य किसी भी विश्वविद्यालय में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

शोधकर्त्री,

मंजू जौहरी

मंजू जौहरी
प्रवक्ता (इतिहास)
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

आभार

यह शोध प्रबन्ध जिनके आशीर्वाद और स्नेह का प्रतिफल है। उनके प्रति भावांजलि मेरा पुनीत कर्तव्य है–

स्व0 मां श्रीमती पदमा बिसारिया की चेतना इस शोध प्रबंध का आधार है। पूज्य पिता श्री विजयकरन नाथ बिसारिया के प्रति आदर और स्नेह का भाव स्वाभाविक है। जिनका संबल मेरा आधार है।

महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ0 एन0डी0 समाधिया जी के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं। जिनका मानसिक भाव सदैव प्रेरणास्पद रहा।

शोध प्रबन्ध के निर्देशक एवं मेंरे गुरू डा0 श्री मोहनलाल श्रीवास्तव के प्रति मैं आदर व्यक्त करती हूं जिसके चिंतन का फल यह प्रबन्ध कृति है।

मेरी विभागाध्यक्ष डॉ0 (श्रीमती) शारदा अग्रवाल जी भी साधुवाद की पात्र हैं, जिनकी प्रेरणा से मैं कार्यपथ पर तत्पर रही। पुस्तकालय प्रभारी श्री हृदयकांत श्रीवास्तव जी भी धन्यवाद के पात्र हैं जिनका सहयोग मुझे बराबर मिला।

श्री मृत्युंजय शरण शुक्ला का स्नेह अनुजवत् सहयोग इस प्रबन्धकृति को रूपाकार देने में सतत् मिलता रहा जो मेरा सौभाग्य है। श्री मुकेश भूषण के प्रति भी मैं अपनी भावनाएं व्यक्त कती हूं। इसके अतिरिक्त उन सभी स्वजनों के प्रति मैं हार्दिक साधुवाद व्यक्त करती हूं जिनका सहयोग इस महान कार्य में सतत् मिला।

इस प्रबन्ध को पूर्ण करने में जिन विद्वानों/समीक्षकों की पुस्तकों का मैने प्रयोग किया है उनके प्रति भी मैं हार्दिक साधुवाद ज्ञापित करती हूं।

अंततः पूर्वी कम्प्यूटर के श्री पंकज गुप्ता के प्रति भी मैं हार्दिक साधुवाद ज्ञापित करती हूं जिनकी भूमिका अविस्मरणीय है।

विषय-क्रम

प्रवेश

भारत भूमि पुण्य है। वीरता, संस्कार, संस्कृति, शुचि चेतना इस पुण्यता का आधार है और केवल पुण्य होना ही बहुत नहीं है बल्कि शक्ति का संचार इस पुण्यता की निरंतरता को बनाए हुए है, क्योंकि धरती की परिकल्पना और उसका विस्तार एवं भोग बड़ा विशिष्टि है– 'वीर भोग्याः वसुंधरा'। अस्तु यह भारत भूमि वीरों की जननी है, जिन्होंने इस राष्ट्र की मर्यादा की रक्षा हेतु अपने प्राण त्यागे वे ही वीर हुए। ऐसे वीरों क एक लंबी कतार भारतीय इतिहास में है। किंतु कुछ वीर ऐसे भी हुए जिन्होंने अपना निसत्व लोप कर इस राष्ट्र को तिल–तिल संवारा और अंततः इस देश की मिट्टी में विलीन हो गये।

इस पृष्ठभूमि को यदि थोड़ा व्यापक करके देखें तो पता चलता है कि भारत वर्ष की इस पावन भूमि की अस्मिता को हरने के लिए कई बार आक्रमण हुए। इन आक्रमणों का उद्देश्य भारतीय संवेदनाओं को लूटना, सभ्यता को पद–दलित करना और विदेशी साम्राज्य का विस्तार करना आदि था। किन्तु इस भूमि पर जन्में वीर सपूतों ने समय–समय पर अपनी प्रांणाहुति से इस राष्ट्र की रक्षा की। ये सारे संदर्भ इतिहास की धरोहर बन गये। यदि भारतीय इतिहास का अवलोकन किया जाये तो सहज ही दिखाई पड़ता है कि संघर्ष, संग्राम की एक व्यापक पृष्ठभूमि इसमें समाहित है। इसी संघर्ष की पृष्ठिभूमि में एक विराट् संघर्ष–अंग्रेजों एवं भारतीयों का संघर्ष–हमारे सामने आता है। भारतीय इतिहास का एक बहुत बड़ा हिस्सा इस संघर्ष की अनुगूंज से भरा पड़ा है। राष्ट्र की रक्षा हेतु बलिदान देने वालों की अनगिनत काया इतिहास में डूब गयी। सैंकड़ों चीखें काल–कवलित हो गयीं। इन्हीं संघर्षशील ध्वनियों में भारतीय इतिहास का यह कालखण्ड गुजरा है।

भारत–भूमि का यह विराट् संघर्ष एक साथ अनेक तथ्यों की ओर संकेत करता है। अंग्रेजों से हुये युद्ध में भारत की शौर्य–परम्परा का उत्कृष्ट रूप क्या नहीं मिलता है। यही शौर्य परम्परा भारत की मूल परम्परा है। इस परम्परा के नाम को– महानायकों को हमने केवल इतिहास के पन्नों में डालकर छोड़ दिया है। एक लम्बी परम्परा जिसमें गांधी, भगत सिंह, सुभाष चन्द्र, तात्या टोपे आदि समाहित हैं क्या केवल इतिहास की गौरव–गाथा बनकर नहीं रह गये हैं? इसी गौरव गाथा का मूल्यांकन करना हमारा अभीष्ट कार्य होना चाहिये। जो केवल घटनाक्रम पर आधारित न होकर कालचक्र के सापेक्ष भी हो, यही उद्देश्य होना चाहिए। यही इस प्रबंध की प्रेरणा–भूमि है।

वस्तुतः मूल्यांकन की बात यदि की जाये तो यह स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है कि किसी भी व्यक्तित्व का विश्लेषण उसके युग सापेक्ष परिस्थितियों में ही किया जा सकता है। क्योंकि हर देश की अपनी जातीय अस्मिता होती है, प्रत्येक कालखण्ड का क्षणबोध होता है और हर व्यक्ति का एक निजी परिवेश होता है। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर यदि भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि पर चर्चा की जाये तो ज्यादा प्रासंगिक होगा। एक बात जो स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में सर्वाधिक महमीय है और जिसको हमें ध्यान में रखना चाहिये वह यह कि यह पूरा का पूरा संग्राम पल–पल परिवर्तित परिस्थितियों में परिवर्तित होता गया। अतः इस संग्राम के नायकों–महानायकों का परिवर्तित परिवेश में मूल्यांकन आवश्यक है। किन परिस्थितियों में किन संदर्भों में इन वीरों ने राष्ट्र रक्षार्थ संघर्ष किया उसका मूल्यांकन काल–क्रमानुसार किया जाये यही अपेक्षित है क्योंकि भारतीय इतिहास का समग्र रूप तो भले ही कालखण्डों में विभाजित करके मूल्यांकित है किन्तु इस इतिहास के कुछ महानायकों का काल क्रमानुसार मूल्यांकन अब भी अपेक्षित है।

इसके अतिरिक्त जो दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है, वह है परिवेशगत् मूल्यांकन अर्थात् जीवन के व्यापक संदर्भों में इन स्वाधीनता सैनिकों ने कैसे अपने आपको ढाला, सामाजिक जीवन में कैसे अपनी चेतना को सुरक्षित रखा और घर परिवार आदि सभी का परित्याग करके किस प्रकार राष्ट्र का संग्राम लड़ा। इसका मूल्यांकन भी आवश्यक है। अस्तु इन पक्षों को ध्यान में रखकर मूल्यांकन की दिशा को प्रौढ़ता प्रदान की जा सकती है। प्रस्तुत शोध–विषय में इसी प्रेरणा को ग्रहण किया गया है।

ध्यातव्य है कि भारतीय इतिहास के स्वतंत्रता हेतु संघर्ष करने वाले जिन वीरों ने अपने प्राणों की आहूति दी, उसमें सर्वाधिक विलक्षण व्यक्तित्व और क्रांति की उच्च चेतना भगत सिंह की भी थी। भगत सिंह की युवा अभिलाषा और संघर्ष–चेतना ने स्वाधीनता संग्राम को नई दिशा दी थी, इसमें संदेह नहीं है। अपने आरम्भिक जीवन से लेकर मृत्युपर्यंत उनका व्यक्तित्व एक योद्धा का था, जिसमें उत्साह और आवेश का सागर भरा था। इसी उत्साह और आदेश का तथा संघर्ष के विभिन्न पहलुओं का मूल्यांकन देशकाल के संदर्भों में और परिवेशगत् एवं कालक्रमानुसार करना हमारे शोध–प्रबन्ध का अभीष्ट है।

भगत सिंह भारतीय इतिहास की प्रेरणा–भूमि हैं। भारतीय वीरता और पराक्रम की जय–गाथा के महानायक हैं। उनका व्यक्तित्व और जीवनगत् परिवेश आरम्भ से ही प्रेरणास्रोत रहा है। बचपन से ही 'बंदूक बोने' की प्रेरणा का परिचय क्या उनके उत्साही जीवन का संदेश नहीं था? किंतु पारिवारिक परिवेश का समर्थन आरम्भ से ही भगत सिंह को मिला। इस कारण उनकी राष्ट्रभक्ति दृढ़ बनी रही और इस देश की विजय गाथा का आधार बनीं। इन्हीं समस्त संदर्भों को इस शोध विषय के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का उदय एवं विकास (1931 तक) के अंतर्गत 1857 से क्रांति के प्रादुर्भाव को रेखांकित किया गया है। इस विद्रोह/क्रांति के कारण, प्रकृति, आरंभ एवं विस्तार आदि पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। राष्ट्रीय के उदय के कारण, कांग्रेस की स्थापना, उदारवाद एवं उग्रवाद मत असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन आदि बिन्दुओं का उद्देश्य उस पृष्ठभूमि की ओर संकेत करना है जिसके कारण भगत सिंह की क्रांति चेतना निर्मित/परिपक्व हुई।

द्वितीय अध्याय 'भगत सिंह का प्रारंम्भिक जीवन एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि' (1907–1922) पर आधारित है। इसमें भगत सिंह की पारिवारिक पृष्ठभूमि से लेकर जन्म की पृष्ठभूमि, आरम्भिक शिक्षा, स्वतंत्रता आंदोलन में सम्मिलित होने की प्रेरणा, प्रारम्भिक कार्य एवं नेशनल कालेज की पृष्ठभूमि का व्यापक सदर्भ विवेचित हुआ है। इन सभी घटनाक्रमों का काल–सापेक्ष विवेचन इस अध्याय में किया गया है और यह स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि इन बिन्दुओं से भगत सिंह का जीवन कितना प्रेरित और प्रभावित हुआ।

शोध प्रबन्ध का तृतीय अध्याय 'भगत सिंह का क्रांतिकारी कार्य' (1923–26) भगत सिंह के क्रांतिकारी स्वरूप पर आधारित हैं इस अध्याय में भगत सिंह के क्रांतिकारी रूप का अवलोकन करते हुये उनके द्वारा प्रथम गृह–त्याग, लाहौर यात्रा, कानपुर तथा अलीगढ़ प्रवास और आंदोलन की व्यापक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त इस कालखण्ड में संगठनात्मक कार्यों, काकोरी काण्ड (1925), नौजवान भारत सभा के दायित्व एवं दशहरा बम काण्ड (1926) को भी विवेचित किया गया है। ये वे निर्णायक बिंदु हैं, जिससे भगत सिंह की परंपरा का पूर्ण स्वरूप दिखायी पड़ता है।

शोध के चतुर्थ अध्याय भगत सिंह और क्रांतिकारी आंदोलन (1926–31 तक) के माध्यम से भगत सिंह क्रांतिकारी रूप के निर्णायक दौर को दर्शाया गया है। क्रांतिकारी भगत सिंह का क्रांति के पथ पर पूर्ण अवतरण, नौजवान सभा का पुनर्गठन, हिन्दुस्तान समाजवादी सभा का आयोजन, साण्डर्स हत्याकाण्ड, असेम्बली बम काण्ड, भगत सिंह की गिरफ्तारी, भूख हड़ताल, लाहौर षड़यंत्र, फांसी आदि जैसे भारतीय इतिहास के महत्वमय बिन्दुओं को इसमें स्पष्ट किया गया है। ये सभी बिंदु भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के निर्णायक बिंदु है, जिनका कालक्रमानुसार तटस्थ विवेचन किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध का पंचम अध्याय भगत सिंह के चिंतक रूप को लक्ष्य करता है। 'भगत सिंह एक चिंतक के रूप में' शीर्षक से भगत सिंह के राजनीतक, सामाजिक एवं धार्मिक रूप को इस अध्याय में व्यंजित किया गया है। क्योंकि भगत सिंह एक क्रांतिकारी और एक विचारक दोनों ही रूपों में भारत के लिये गौरव है। उनका चिंतक/विचारक रूप सदैव प्रासंगिक रहा है और उसके मूल्यांकन की सघन आवश्यकता आज भी है। इसी पक्ष पर इस अध्याय में विचार किया गया है।

उपसंहार के अंतर्गत शोध की स्थापनाओं को व्यंजित किया गया है। भगत सिंह के आरम्भिक जीवन की पृष्ठभूमि से लेकर अंततः भगत सिंह तक बिंदुवार विश्लेषण इसमें किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में परिशिष्ट में एक संवाद–क्रांतिदर्शी श्री कुलतार सिंह जी से, स्पेशल मजिस्ट्रेट, लाहौर के नाम, गवाहियों की अपेक्षा रसगुल्ले ज्यादा जरूरी, भगत सिंह का पत्र अपने पिता के नाम, दूसरे लाहौर षड़यंत्र के अभियुक्तों के नाम पत्र, मौत का परवाना एवं फांसी दे दी गयी, के रूप में प्रपत्र संलग्न किये गये हैं।

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का उदय एवं विकास

प्रस्तावना

विश्व इतिहास में क्रान्तियों का स्थान महत्वपूर्ण है। वास्तविकता यह है कि विश्व का इतिहास क्रान्ति के पूर्व की परिस्थितियों और क्रान्ति के बाद की नवीन व्यवस्थाओं का लेखा–जोखा है।

क्रान्ति शब्द की उत्पत्ति ''क्रमु'' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है ''पाद विक्षेप''। दूसरे शब्दों में इसकी व्याख्या पैर लड़खड़ाना कहकर की गयी है। अंग्रेजी में क्रान्ति शब्द का समानान्तर "Revolution" है, जिसका अर्थ है उलटना। एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल सांइस के अनुसार क्रान्ति का तात्पर्य आमूल चूल परिवर्तन से है। राज्य या समाज में नवीन व्यवस्था की स्थापना ही क्रान्ति है।

विभिन्न विचारकों ने क्रान्ति की परिभाषा अपने–अपने ढंग से दी है। सैमुअल हाटिगंटन का मत है कि ''क्रान्ति का तात्पर्य किसी देश में ऐसे तीव्र, मौलिक और हिंसक परिवर्तन से है जिनसे समाज के प्रमुख मूल्यों व मिथकों, उनकी राजनीतिक संस्थाओं, उसके सामाजिक ढांचा, नेतृत्व, सरकार की गतिविधियों एवं नीतियों में आमूल अन्तर आ जाय।''[1] Encyclopaedia Britanica में कार्ल जे फ्रेडरिक ने क्रान्ति को राजनीतिक अर्थ में ही प्रयुक्त किया है। उनके अनुसार ''क्रान्ति स्थापित राजनीतिक व्यवस्था को चुनौती और अन्ततः पुरानी व्यवस्था से पूरी तरह भिन्न नई व्यवस्था की स्थापना है।''[2]

क्रान्ति को उसके व्यापक अर्थ में आर०डी० हारपर ने परिभाषित किया है। उन्होंने "Revolutionary Process" में लिखा है क्रान्ति वह तीव्र परिवर्तन

---

1. Quoted by Dr. Shiv Bhanu Singh- समाज दर्शन का सर्वेक्षण, पेज–228
2. Quoted by Dr. Shiv Bhanu Singh- समाज दर्शन का सर्वेक्षण, पेज–228

है जिसमें राजनीतिक व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो जाती है, सरकार स्थायी रूप से कार्यशील सत्ता नहीं रह जाती है। समाज की मौलिक एकता समाप्त हो जाती है। सामाजिक तथा नैतिक नियम लुप्त होने लगते है। सभी प्रमुख संस्थाओं में बड़ा भारी परिवर्तन आ जाता है जिसके फलस्वरूप राज्य, धर्म, परिवार और शिक्षा मूल रूप में नहीं रह जाती।

इन परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि क्रान्ति का तात्पर्य सरकार और उससे तत्वसम्बन्धित व्यवस्थाओं एवं सरंचनाओं में परिवर्तन से है। क्रान्ति में पुरानी सरकार का स्थान नयी सरकार एवं नया संस्थागत ढांचा ग्रहण कर लेता है। क्रान्ति में सत्ता हिल जाती है और सत्ता का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि क्रान्ति केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं होती। विश्व इतिहास में ऐसे भी उदाहरण मिले हैं जब सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी क्रान्तियां हुई हैं। यहां यह भी बता देना प्रासंगिक होगा कि क्रान्ति केवल हिंसात्मक नहीं होती। ऐसे भी उदाहरण प्राप्त हुए है जब शांतिपूर्ण एवं रक्तहीन क्रान्ति हुई है। अतः क्रान्ति का स्वरूप कैसा होता है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु एक बात सत्य जरूर है कि क्रान्ति में परिवर्तन का तत्व निश्चित रूप से अन्तर्निहित होता है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि क्रान्ति विद्रोह और बगावत से भिन्न है। विद्रोह में शासक की अधीनता को स्वीकार नही किया जाता। बगावत का स्वरूप व्यापक है जिसमें विद्रोह करके वर्तमान शासकों को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया जाता है। क्रान्ति को तख्ता उलट भी नहीं माना जा सकता। कारण कि तख्ता पलट में एक छोटा सा समूह जबरदस्ती कब्जा करके सरकार को हटाने का प्रयास करता है। इस प्रकार उपर्युक्त विधियों एवं क्रान्ति में मूल अन्तर यह है

कि क्रान्ति में शासन व्यवस्था के स्वरूप, संस्थाओं, मूल्यों में आमूल परिवर्तन होता है। क्रान्ति तभी सार्थक होती है जब सम्पूर्ण समाज के मूल्यों, उद्देश्यों एवं राजनैतिक प्रक्रियाओं में आमूल परिवर्तन आ जाय।

जहां तक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रश्न है– यह आन्दोलन भारतीय जनमानस तथा ब्रिटिश सरकार के हितों के बीच विरोध का परिणाम था। इसमें कांग्रेस का अंहिसात्मक आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी गतिविधियां दोनों शामिल थीं। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक नेता हितों के विरोध को अच्छी तरह जान रहे थे। वे यह भी जानते थे कि भारत अल्प विकास की प्रक्रिया से गुजर रहा है। उन्होंने ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियों का विश्लेषण किया और जनता के सामने इस रहस्य को रखने में सफल रहे कि भारत की गरीबी और दरिद्रता का कारण ब्रिटिश शासन ही है। इन नेताओं ने एक स्पष्ट उपनिवेशवाद विरोधी विचारधारा का विकास किया और यही विचारधारा आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन का आधार बनी।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन संघर्ष की एक सोची समझी रणनीति थी। इस आन्दोलन के विभिन्न स्वरूप थे, विभिन्न चरण थे जो आपस में एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे, यद्यपि इनको सैद्धान्तिक जामा न पहनाया जा सका था। सभी का लक्ष्य एक ही था– भारत को ब्रिटिश दासता से मुक्त कराना। ब्रिटिश शासन का भय भारतीय लोगों के साथ साये की तरह लगा रहता था। इसी भय के विरोध में गांधी जी ने शांत लेकिन दृढ़ स्वर में कहा था– डरो मत।

अब यह प्रश्न उठता है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में अहिंसा की क्या भूमिका थी? अहिंसा एवं सत्याग्रह का सिद्धान्त गांधी जी का कोई धार्मिक

सिद्धान्त नहीं था और न ही उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन धनी वर्ग के लोगों के हितों को ध्यान में रखकर किया था। ये सिद्धान्त राष्ट्रीय आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता थे। ऐसी आवश्यकता जो आगे चलकर आन्दोलन का आधार बनी। इसी सिद्धान्त के बल पर उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में ब्रिटिश शासन के विरूद्ध सफलता प्राप्त की थी। वे यह भलीभांति समझ चुके थे कि यह अस्त्र साम्राज्यवादी हुकूमत के विरूद्ध संघर्ष करने का अमोघ अस्त्र है। इस अस्त्र के जरिए ही उन्होंने भारतीय जनता को एकजुट करने का यथासम्भव प्रयास किया।

राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस थी। इसमें कई धाराएं आकर मिलती थी। इस आन्दोलन की सम्पूर्ण शक्ति जनता की चेतना थी। सत्याग्रह का आधार जनता की सक्रिय भागीदारी थी और जिन्होंने इसमें भाग नहीं लिया उनकी कम से कम सहानुभूति तो इनके साथ थी। राष्ट्रीय नेतृत्व ने दृढ़ विश्वास और साहस के बल पर आन्दोलन को बनाए रखा। यह आरम्भ में बुद्धजीवियों का आन्दोलन था लेकिन बाद में युवकों, महिलाओं, शहरी मध्यवर्ग, गांवों की गरीब जनता, दस्तकारों, किसानों, मजदूरों पूंजीपतियों एवं छोटे जमींदारों को काफी अधिक संख्या में एक जुट करने में सफल रहा।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एक जन आन्दोलन था जिसमें विचारधाराओं का रूपान्तरण होता रहा। 20वीं सदी के दूसरे और तीसरे दशक में जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, सरदार भगत सिंह आदि लोगों ने कांग्रेस के अन्दर से ही आन्दोलन को व्यक्तिगत स्तर पर समाजवादी दिशा देने की कोशिश की। किसानों के लिए किसान सभा, मजदूरों के लिए ट्रेड यूनियनें, युवकों के लिए नवजवान सभा और छात्र यूनियनों का गठन इसी विचारधारा का परिणाम था। इस प्रयास के कारण देश में समाजवादी विचारधारा तेजी से फैली। तीसरे और चौथे दशक में लगभग हर बुद्धजीवी किसी न किसी रूप में समाजवादी

विचारधारा से प्रेरित था। क्रान्तिकारियों ने भी इस विचारधारा के प्रसार में बहुमूल्य योगदान दिया। इस दौरान एक और महत्वपूर्ण बात यह थी कि गांधी जी के विचार भी लगातार क्रान्तिकारी दिशा में विकसित हो रहे थे।

एक और मुख्य बात यह कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस न तो एक पार्टी थी और न ही एक दल। यह एक आन्दोलन था। एक ऐसा आन्दोलन जिसमें विभिन्न विचार धारा के लोग शामिल थे। इसमें जहां एक ओर सुभाषचन्द बोस और जवाहरलाल नेहरू जैसे समाजवादी थे वहीं दूसरी ओर सत्यमूर्ति और के.एम. मुंशी जैसे संविधानवादी भी थे। इन विविधताओं के बाबजूद आन्दोलन ने एकता की अद्भुत मिसाल पेश की। 1907 के सूरत की घटना से कांग्रेस ने सबक लिया। इसके बाद तो भयंकर संकट काल में भी नरमदल और गरमदल के लोग, संविधानवादी और गैर संविधानवादी, वामपंथी और दक्षिणपंथी कभी अलग नहीं हुए।

1857 से पूर्व के विद्रोह

1857 का विद्रोह अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के लिये जनता के विभिन्न वर्गों का प्रथम विद्रोह नहीं था। 1722 में बंगाल, बिहार, उड़ीसा के प्रान्तों को वारेन हेस्टिंग्स द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य में विलय के शीघ्र बाद अंग्रेज विरोधी भावनाएं जागृत हो गई। इस प्रकार प्लासी के युद्ध के बाद की शताब्दी में और 1857 के गदर के विस्फोट के साथ अंग्रेजों के विरूद्ध अनेक विद्रोह, आन्दोलन और बगावतें हुई और ब्रिटिश शासन का खुलेआम विरोध किया गया, जिसमें किसानों, शासकों, सैनिकों, जमींदारों, धार्मिक भिक्षुओं तथा अपदस्थ भारतीय शासकों के मंत्रियों एवं आश्रितों ने खुलकर भाग लिया। उसमें से अधिकंश समूह निम्न वर्ग के थे, इसलिये इन विद्रोह तथा आन्दोलनों का ''आधार भूत इतिहास'' की संज्ञा दी गई है। उक्त विद्रोहों का उल्लेख निम्नलिखित है–

सन्यासी विद्रोह :

इस विद्रोह का उल्लेख वन्देमातरम् के रचयिता बंकिम चन्द्र चटर्जी ने अपने ग्रन्थ ''आनन्द मठ'' में किया है। यह विद्रोह ब्रिटिश शासन द्वारा तीर्थ यात्रा के स्थानों पर लगे प्रतिबन्धों को लेकर हुआ था। वी०एल० ग्रोवर के अनुसार– ''सन्यासियों में अन्याय के विरूद्ध लड़ने की परम्परा थी और उन्होंने जनता के साथ मिलकर कम्पनी की कोठियों तथा कोषों पर आक्रमण किए।''[1]

वारेन हेस्टिंग्स एक लम्बे सैन्य अभियान के पश्चात् ही इस विद्रोह को दबा सका था।

फकीर विद्रोह (1776 - 1777) :

बंगाल में हुए इस विद्रोह का नेतृत्व मजनूमशाह ने किया था। उसने अंग्रेजी सत्ता को चुनौती देते हुए जमींदारों और किसानों से धन वसूलना आरम्भ

---

1. बी०एल० ग्रोवर एवं यशपाल– आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 246

किया। मजनूमशाह की मृत्यु के पश्चात चिराग अलीशाह ने उनकी गतिविधियों का विस्तार बंगाल के उत्तरी जिलों तक किया। उनकी सहायता करने वाले दो प्रसिद्ध हिन्दू नेता– भवानी पाठक एवं देवी चौधरानी थी। फकीरों एवं कम्पनी की सेनाओं के बीच अनेक लड़ाईयां एवं झड़पें हुई और अन्ततः उन पर 19वीं सदी के शुरू में काबू पाया जा सका।

पागलपंथी विद्रोह :

यह एक धार्मिक सम्प्रदाय था जिसके प्रवर्तक करमशाह थे। इसका प्रभाव उत्तरी बंगाल तक था। इस विद्रोह का मुख्य कारण जमींदारों द्वारा मुजारों पर किया गया अत्याचार था। करमशाह के पुत्र टीपू ने 1825 में शेरपुर पर अधिकार कर लिया। वी0एल0 ग्रोवर के अनुसार "विद्रोहियों ने गारों की पहाड़ियों तक उपद्रव किये। यह क्षेत्र लगभग 1850 तक उपद्रव ग्रस्त बना रहा।"[1]

फैराजी आन्दोलन :

इस आन्दोलन के प्रवर्तक शरीयतुल्लाह थे। इस आन्दोलन का प्रभाव क्षेत्र ढाका एवं फरीदपुर के जिलों तक सीमित था। शरीयतुल्लाह के पुत्र दादूमियां ने इस आन्दोलन का और अधिक विस्तार किया। उन्होंने अंग्रेजी शासन द्वारा लागू की गई भूमिकर व्यवस्था से शोषत मुसलमानों को प्रभावित किया। इस आन्दोलन का कारण जमींदारों द्वारा मुस्लिम किसानों पर अत्याचार था।

विद्रोह की शुरूआत 7 अप्रैल 1839 को हुई। आर0एल0 शुक्ल के शब्दों में– "सात से आठ हजार के बीच एकत्रित हाजियों ने दादूमियां को अपना नेता स्वीकार किया और स्थानीय पुलिस थाने पर हमला करते हुए प्रशासन को अस्त–व्यस्त कर दिया।"[2] यह उपद्रव 1839 से 1857 तक चलता रहा।

---

1. बी0एल0 ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 249
2. आर0एल0 शुक्ल – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 212

वहावी आन्दोलन :

यह आन्दोलन मूलतः इस्लाम धर्म का सुधारवादी आन्दोलन था। इसका लक्ष्य पश्चिमी संस्कृति के फलस्वरूप मुस्लिम समाज में आये भ्रष्ट तौर–तरीकों को हटाना था। इसके प्रणेता अब्दुल वहाव थे। शीघ्र ही इस आन्दोलन ने एक धार्मिक–राजनीतिक सम्प्रदाय का रूप धारण कर लिया। भारत में इस आन्दोलन के नेता सैय्यद अहमद रायबरेलबी थे। आरम्भ में यह आन्दोलन पंजाब की सिक्ख सरकार के विरूद्ध था। किन्तु 1849 में पंजाब का अंग्रेजी राज्य में विलय के उपरान्त यह आन्दोलन अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध हो गया। कुछ समय के लिये सैय्यद अहमद रायवरेलवी ने पेशावर पर कब्जा कर लिया तथा अपने नाम के सिक्के चलवाए। 1831 में बालाकोट की लड़ाई में वे मारे गए। बी0एल0 ग्रोवर के अनुसार– ''अनेक स्थानों पर वहावियों के विरूद्ध न्यायालयों में देशद्रोह के अभियोग चलाए गये।''[1] सैय्यद अहमद की मृत्यु के पश्चात इस आन्दोलन का केन्द्र पटना हो गया। यह आन्दोलन 1870 में कड़ी सैन्य कार्यवाही के पश्चात दबा दिया गया।

वेलुटम्पी का विद्रोह :

1805 में वेलेजली ने ट्राबनकोर के महाराजा पर सहायक सन्धि आरोपित कर दी। चूंकि महाराजा सन्धि की शर्तों से अप्रसन्न थे। इसलिये उन्होंने सहायक कर देने में आनाकानी की। अंग्रेज रेजीडेन्ट का व्यवहार भी कठोर था। जिसके कारण दीवान वेलुटम्पी ने विद्रोह कर दिया। वी0एल0 ग्रोवर ने लिखा है कि – ''नायर बटालियन ने उसका समर्थन किया।''[2] कड़ी सैन्य कार्यवाही के फलस्वरूप यह विद्रोह दबा दिया गया।

---

1. बी0एल0 ग्रोवर एवं यशपाल – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 251
2. बी0एल0 ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 250

विशानपुर का विद्रोह (1789) :

इस विद्रोह का मुख्य कारण था, अकाल की चपेट के बाबजूद अंग्रेजी शासन द्वारा भूमिकर का बढ़ाया जाना। जब राजा ने बढ़े हुये कर को अदा करने में अपनी असमर्थता जताई, तो अंग्रेजों ने उसकी जागीर नष्ट करने की धमकी दी। इस पर राजा ने अपने स्थानीय जनता के सहयोग से विद्रोह कर दिया। आर०एल० शुक्ल के अनुसार– "वहां पर नियुक्त अंग्रेज कलक्टर हेंसलरीज इस स्थिति पर नियन्त्रण स्थापित करने में असफल रहा।"[1] बाद में इस विद्रोह को दबा दिया गया।

गंजाम विद्रोह (1835) :

यह विद्रोह जमींदार धनंजय भाजा के नेतृत्व में हुआ था।

धारराव 'बुन्द' का विद्रोह (1840-41) :

यह विद्रोह सतारा के राजा प्रताप सिंह को अपदस्थ करने और देश निष्कासन कर दिए जाने के विरूद्ध हुआ था। कराड़ के धारराव जिन्होंने सबसे पहले विद्रोह संगठित किया, कि 1840 तक अंग्रेजी सेना के साथ अनेक झड़पे हुई।

बुंदेला विद्रोह (1846-47) :

1846–47 में कुरनूल से बेदखल किये गए पालिंगर नरसिम्हा रेड्डी ने सरकार द्वारा उसकी जब्त की गई पेंशन देने से इन्कार करने पर विद्रोह कर दिया।

विजयनगरम् के राजा का विद्रोह :

इस विद्रोह का मुख्य कारण कम्पनी द्वारा राजा से तीन लाख रूपये

---

1. आर०एल० शुक्ल – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 205

भेंट में देने की मांग करना तथा सेना को भंग करने के लिये विवश करना था। राजा को उसकी प्रजा ने पूरा समर्थन दिया। राजा लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए।

फतेहशाही का विद्रोह (1767-1795) :

यह विद्रोह बिहार के सारण जिले में स्थित हुसैनपुर के जमींदार फतेहशाही द्वारा किया गया था। इस विद्रोह का प्रमुख कारण कम्पनी द्वारा भूराजस्व का बकाया धन वसूलने की कोशिश करना था। आर0एल0 शुक्ल के अनुसार– "पटना से सेना बुलाने पर ही उन्हें परास्त किया जा सका। इसके बाद वे गौरखपुर के जंगलों में भाग गये और वहीं से बार–बार धावा बोलकर कम्पनी को परेशान करते रहे।"[1] फतेहशाही को अंग्रेजों के विरूद्ध भारी जनसमर्थन मिला और अपने प्रभाव क्षेत्र में उन्होंने वर्षों तक आतंक फैलाया।

पाइक विद्रोह (1904-06) :

यह विद्रोह उड़ीसा में हुआ था। खुर्दा के राजा ने अपने पाइकों (लगानमुक्त जमीनों का उपयोग करने वाले सैनिक) की सहायता से विद्रोह संगठित किया। बाद में जग बन्धु के नेतृत्व में पाइको ने अंग्रेजी सेना को परास्त करके पुरी पर अधिकार कर लिया।

जन जातियां (आदिवासी) देश के पश्चिमी, मध्यवर्ती, पूर्वी और उत्तरपूर्वी हिस्सों के विशाल क्षेत्र में निवास करते थीं। इन्होंने 19वीं सदी में अनेक छापामार लड़ाइयां लड़ी। इन विद्रोहों का स्वरूप अन्य विद्रोहों से भिन्न था। ये बिल्कुल हिंसक अलग–थलग और बहुत प्रायिक थे। 1778 से 1947 तक ऐसे लगभग 70 आन्दोलन हुए। ये जनजातियां आपस में संगठित हुई और

---

1. आर0एल0 शुक्ल – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 203

साम्राज्यवादी शासकों के विरूद्ध इन्होंने अत्यन्त जुझारू संघर्ष किये। इन्होंने असीम शौर्य एवं बलिदान का परिचय दिया और ब्रिटिश हुकूमत ने इनका कत्लेआम किया। इन विद्रोहों के कारण निम्न लिखित थे–

1. ब्रिटिश राजस्व व्यवस्था ने संयुक्त स्वामित्व वाली आदिवासी परम्पराओं को क्षीण किया जिसने जनजातीय समाज में तनावों को प्रोत्साहित किया।

2. आदिवासी क्षेत्रों में ईसाई धर्म प्रचारकों की गतिविधियों से भी अनेक तरह की प्रतिक्रियाएं हुई।

3. वन क्षेत्रों में सरकार नियंत्रण को कड़ा करने तथा आरक्षित वन सृजित करने और इमारती लकड़ी और पशु चराने की सुविधाओं पर प्रतिबन्धा लगाये जाने के कारण आदिवासी अर्थव्यवस्था अस्त–व्यस्त हुई जिसके फलस्वरूप आदिवासी लोगों में विरोध की भावना प्रोत्साहित हुई।

4. आदिवासी लोगों ने सामान्य कानून लागू किए जाने का भी विरोध किया क्योंकि उनकी दृष्टि में यह उनके व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप के बराबर था।

5. आदिवासी लोगों पर आन्तरिक, धार्मिक और सामाजिक, सांस्कृतिक सुधारों का भी बहुत प्रभाव पड़ा।

खोड़ विद्रोह :

खोड़ लोग तमिलनाडु से लेकर बंगाल एवं मध्य भारत तक फैले विस्तृत पहाड़ी क्षेत्रों में रहते थे। 1837 से 1856 तक चले इस विद्रोह का मुख्य कारण सरकार द्वारा मानव बलि को प्रतिबन्धित करने का प्रयास, अंग्रेजों द्वारा नये करों का करारोपण और उनके क्षेत्रों में जमीदारों तथा साहूकारों के प्रवेश से सम्बन्धित थे। अंग्रेजों ने एक मरिहा ऐजेन्सी गठित की जिसके विरूद्ध टांगी,

तीरकमानों और तलवारों से युद्ध किया। इस विद्रोह का नेतृत्व युवा राजा के नाम पर चक्र विसोई ने किया। बाद में राधा कृष्ण दण्डसेन के नेतृत्व में सवारा एवं कुछ अन्य जातियां इस विद्रोह में सम्मिलित हो गई। 1853 में चक्र विसाई लुप्त हो गया जिसके बाद यह आन्दोलन समाप्त हो गया।

चुआर कोल तथा हो विद्रोह :

इस विद्रोह का मुख्य कारण अकाल तथा बढ़े हुए भूमिकर के कारण नये आर्थिक संकट का उत्पन्न होना था। मिदनापुर जिले में आदिम जाति के चुआर लोगों ने हथियार उठा लिये। बी0एल0 ग्रोवर के अनुसार– "दलभूमि ढोलकों, बाराभूमि के राजाओं ने मिलकर 1768 में विद्रोह कर दिया तथा आत्मविनाश की नीति अपनाई।"[1] यह प्रदेश 18वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों तक उपद्रव ग्रस्त बना रहा।

कोल विद्रोह :

यह विद्रोह छोटा नागपुर क्षेत्र में कोल जनजातियों द्वारा किया गया था। विद्रोह का मुख्य कारण यह था कि कोलों की भूमि उनके मुखिया मुण्डों से छीनकर मुस्लिम कृषकों तथा सिक्खों को दे दी गई थी। बी0एल0 ग्रोवर के अनुसार– "1831 में कोलो ने लगभग 1000 विदेशी अथवा बाहर के लोगों को जला दिया था और उनकी हत्या कर दी।"[2] बाद में यह विद्रोह रांची, सिंह भूमि, हजारीबाग, पालामऊ आदि क्षेत्रों में भी फैल गया। विस्तृत सैन्य कार्यवाही के पश्चात ही यहां शान्ति स्थापित हो सकी।

---

1. बी0एल0 ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 246
2. बी0एल0 ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 247

संथाल विद्रोह :

आदिवासियों के विद्रोहों में संथाल विद्रोह सबसे जबर्दस्त था। यह विद्रोह राजमहल जिले के संथाल लोगों ने भूमिकर अधिकारियों के दुर्व्यवहार, पुलिस के दमन तथा जमींदारों एवं साहूकारों की वसूलियों के विरूद्ध किया था। संथालों ने सिद्धू तथा कान्हू के नेतृत्व में कम्पनी के शासन के अन्त करने की घोषणा कर दी तथा अपने आपको स्वतन्त्र घोषत कर दिया। प्रो0 विपिन चन्द्र के अनुसार– ''विद्रोहियों ने महाजनों एवं जमींदारों पर हमला बोलना शुरू किया। उनके मकान जला डाले। पुलिस स्टेशन, रेलवे स्टेशन और डाक देने वाली गाड़ियों को जला दिया। लगभग उन सभी वस्तुओं पर हमला किया जो दीकू (गैर आदिवासी) और उपनिवेशवादी सत्ता के शोषण के माध्यम थे।''[1] विस्तृत सैन्य कार्यवाही के पश्चात् ही 1856 में स्थिति को संभाला जा सका। सरकार ने इन लोगों के लिये पृथक संथाल परगना बनाकर शान्ति स्थापित की।

इस अवधि के दौरान होने वाले अन्य आदिवासी विद्रोह थे– छोटानागपुर में तामर विद्रोह (1784–85), महाराष्ट्र में कोली विद्रोह (1784–85), पाचेर एस्टेर विद्रोह (1809–28), गुजरात में भील विद्रोह, वस्तर में गोड विद्रोह (1842)।

रंपा विद्रोह :

इस विद्रोह के नेता अल्लारी सीताराम राजू थे। यह विद्रोह आन्ध्र प्रदेश के तटवर्ती क्षेत्र में 1879 में रंपा आदिवासियों द्वारा किया गया था। विद्रोह का मुख्य कारण सरकार समर्पित मनसबदारों के भृष्टाचार तथा नया जंगल कानून था। प्रो0 विपिन चन्द्र ने लिखा है कि– ''इस विद्रोह को दबाने के लिये भी सरकार

---

1. प्रो0 विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पेज– 19

ने सेना की मदद ली। पैदल और घुड़सवार सेना के दस्ते हजारों आदिवासी विद्रोहियों के दमन में जुट गये।"[1] यह विद्रोह 1880 में दबा दिया गया।

कोया विद्रोह :

यह विद्रोह आधुनिक आन्ध्र प्रदेश के पूर्वी गोदावारी क्षेत्र में शुरू हुआ और इससे उड़ीसा के मल्कागिरी जिले के कुछ क्षेत्र भी प्रभावित हुए। इसका मुख्य केन्द्र चोडवरम् का रंपा प्रदेश था। जहां आदिवासी कोया और कोडा सोना नामक पहाड़ी सरदारों ने 1803, 1840, 1845, 1858, 1861, 1862 में अपने शासक के विरूद्ध विद्रोह किए। 1886 में एक अन्य कोया विद्रोह हुआ। विद्रोहियों ने राजा अनन्तय्यार के नेतृत्व में रामसंडु (राम की सेना) का गठन किया और जयपुर के महाराज से अंग्रेजों का तख्ता पलट करने के लिए सहायता की याचना भी की थी।

रानी गैडिनालियु का नागा आन्दोलन :

इस आन्दोलन की शुरूआत युवा रोगमेई जदोनांग ने किया था। इस आन्दोलन का उद्देश्य सामाजिक एकता लाना, खराब रीति रिवाजों को खत्म करना तथा प्राचीन धर्म को पुर्नजीवित करना था। 29 अगस्त, 1931 को सरदार द्वारा जदोनांग को फांसी दे देने के बाद इस आन्दोलन को एक नागा महिला गैडिनालियु ने नेतृत्व दिया। उन्होंने अपने आदिवासी आन्दोलन को गांधी जी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन से जोड़ा और अपने समर्थकों को कष्टकारी करों और कानूनों की अवज्ञा करने का आदेश दिया। जवाहर लाल नेहरू तथा आजाद हिन्द फौज ने गैडिनालियु को रानी की उपाधि देकर सम्मानित किया। रानी ने जदोनांग के धार्मिक विचारों के आधार पर हेर्कापंथ की स्थापना की।

---

1. प्रो0 विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पेज– 20

भील विद्रोह :

इस आदिम जाति का क्षेत्र पश्चिमी तट के खानदेश में था। इन्होंने अपने नए स्वामी अंग्रेजों के विरूद्ध 1812–19 में विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह का मुख्य कारण कृषि संबंधी संकट तथा नई सरकार का भय था। उनकी उत्तेजना तब और बढ़ गई जब उन्हें अंग्रेजों की वर्मा में हुई हार का ज्ञान हुआ। बी0एल0 ग्रोवर के अनुसार– "उन्होंने 1825 में संवरम के नेतृत्व में पुनः विद्रोह कर दिया।"[1] कड़े सैन्य बल के साथ इस विद्रोह को दबा दिया गया।

कच्छ विद्रोह :

अंग्रेजों के विरूद्ध इस विद्रोह का मुख्य कारण कच्छ के राजा भारमल्ल और झरेजा के समर्थक सरदारों का शेष था। इस प्रदेश का वास्तविक शासन एक प्रतिशासक परिषद के हाथों था जिसका निर्देशन एक अंग्रेज रेजीडेंट के अधीन था। वी0एल0 ग्रोवर के अनुसार– "वर्मा युद्ध में अंग्रेजों की हार के समाचार से विद्रोहियों को प्रोरणा मिली तथा उन्होंने भारमल्ल को पुनः स्थापित करने की मांग की।"[2] एक लम्बे समय के पश्चात ही साम्राज्यवादी हुकूमत उस विद्रोह को दबाने में कामयाब हुई।

वघेरा विद्रोह :

1818–19 के बीच यह विद्रोह तब हुआ जब बड़ौदा के गायकवाड़ ने अंग्रेजी सेना की सहायता से इन लोगों से अधिक कर प्राप्त करने का प्रयत्न किया। यहां 1820 में शान्ति स्थापित की गई।

---

1. बी0एल0 ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 248
2. बी0एल0 ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 249

सूरत का नमक आन्दोलन :

1844 में नमक कर 1/2 रूपया प्रतिमन से बढ़ाकर 1 रूपया प्रतिमन कर दिया गया। जिसके कारण अंग्रेज विरोधी भावना को प्रोत्साहन मिला। ब्रितानी सरकार पर प्रहार हुए। बढ़ा हुआ अतिरिक्त कर हटा दिया गया।

मुण्डा विद्रोह :

1899–1900 का उल्गुन (महाविद्रोह) नाम से प्रसिद्ध यह मुण्डा विद्रोह इस अवधि का सर्वाधिक चर्चित आदिवासी विद्रोह था। इसके मुख्य नेता विरसा मुण्डा थे। यह विद्रोह ब्रिटिश भूराजस्व प्रणाली के खिलाफ हुआ था। बाद में इसने धार्मिक राजनीतिक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। विरसामुण्डा की लोकप्रियता का आधार उसकी औषधीय एक चिकित्सकीय शक्तियां थी जिसके द्वारा वह अपने अनुयायियों को अमोघ बना देने का दावा करता था। मुण्डा ने अपने को भगवान का दूत घोषित किया और हजारों मुण्डाओं का नेता बन गया। विपिन चन्द्र ने लिखा है कि– ''उसने घोषणा की कि– दिकुओ (गैर आदिवासियों) से अब हमारी लड़ाई होगी और उनके खून से जमीन इस तरह लाल होगी जैसे लाल झण्डा।''[1] 1800 के प्रारम्भ में विरसा को गिरफ्तार कर लिया गया। जहां जेल में ही उसकी मृत्यु हो गयी।

खासी विद्रोह :

इस विद्रोह का क्षेत्र और खासी और जयत्तियां का पहाड़ी क्षेत्र था। विद्रोह का आरम्भ तब हुआ जब कम्पनी ने ब्रह्मपुत्र और सिलहट को जोड़ने के लिये एक सड़क के निर्माण की योजना बनाई। बी0एल0 ग्रोवर के अनुसार– ''ननक्लों के राजा तीरत सिंह ने इस हस्तक्षेप का विरोध किया तथा गारों खाम्पटी

---

1. प्रो0 विपिन चन्द– भारत का स्वतत्रंता संघर्ष, पेज– 20

तथा सिंहपो लोगों की सहायता से विदेशी लोगों निकालने का प्रयत्न किया।''
1833 में इस विद्रोह को दबा दिया गया।

अहोम विद्रोह :

यह विद्रोह असम के अहोम क्षेत्र में हुआ था। जिसका मुख्य कारण अहोम प्रदेश को कम्पनी द्वारा अपने प्रदेश में सम्मिलित करने का प्रयत्न करता था। बी0एल0 ग्रोवर के अनुसार– ''1828 में अहोम लोगों ने गोमधर कुंवर को अपना राजा घोषित किया तथा रंगपुर पर चढ़ाई करने की योजना बनाई।''[1] अनेक प्रयत्नों के बाद ही इस विद्रोह को दबाया जा सका।

सिगफास विद्रोह :

यह विद्रोह 1830 में शुरू हुआ था, जिसे तीन महिने पश्चात दबा दिया गया, किन्तु सिगफास लोग असंतोष से सुलगते रहे और 1839 में उन्होंने पुनः विद्रोह कर दिया। इसमें इन्होंने अंग्रेजी राजनीतिक एजेंट की हत्या कर दी।

कूकी विद्रोह :

यह विद्रोह मणिपुर क्षेत्र में लगभग दो वर्ष तक कूकी आदिवासियों द्वारा चलाया गया था। इसका मुख्य कारण आदिवासियों को पोथांग (आदिवासियों को बिना मजदूरी के अधिकारियों का सामान ढोने) के लिये बाध्य करना तथा सरकार द्वारा झूम की खेती पर प्रतिबंध लगाना था। लम्बे समय तक कठिन संघर्ष के द्वारा यह विद्रोह दबाया गया।

सैनिक विद्रोह :

ईस्ट इण्डिया कम्पनी को साम्राज्य विस्तार के लिये एक विशाल सेना की आवयकता थी। ज्यो–ज्यों इनका साम्राज्य बढ़ता चला गया। त्यो–त्यों

---

1. बी0एल0 ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 247

सैनिक भरती की आवश्यकताएं बढ़ती चली गई। परन्तु सैनिकों ने देखा कि साम्राज्य विस्तार के अनुपात में उनका वेतन तथा भत्ते कम और सेवा शर्तें बिगड़ती चली गई। इसके अतिरिक्त उन्हें वे सभी शिकायतें थी जो असैनिक जनता को सहन करनी पड़ती हैं। अतः समय–समय पर विद्रोह हुए जिनका स्वरूप प्रायः स्थानीय ही था।

1764 में हेक्टर मुनरों की एक बटालियन बक्सर की रणभूमि में मीर कासिम से जा मिली। सरजान वार्लो के कार्यकाल में 1806 में वेल्लोर में एक सैन्य विद्रोह हुआ। इस विद्रोह का मुख्य कारण आर0एल0 शुक्ल के अनुसार– ''माथे पर जाति सूचक तिलक लगाने तथा पगड़ी पहनने पर प्रतिबंध लगाना था।''[1] 1824 में जब बैरकपुर रेजीमेंट को समुद्र मार्ग से जब वर्मा जाने को कहा गया तब उस रेजीमेंट ने विद्रोह कर दिया क्योंकि समुद्र यात्रा जातीय परम्पराओं के प्रतिकूल थी। 1825 में असम के तोपखाने में विद्रोह हुआ। 34वीं एन0आई0 तथा 64वीं रेजीमेंट ने कुछ अन्य लोगों के साथ मिलकर पुराना भत्ता न मिलने तक सिन्ध के अभियान में भाग लेने से अस्वीकार कर दिया। इसी प्रकार 1850 में गोविन्दगढ़ रेजीमेंट ने विद्रोह कर दिया। उस समय कोई अन्य असंतुष्ट वर्ग ऐसा नहीं था जो इन उपद्रवों का लाभ उठाता। अतः ये सीमित ही रहे और फैलकर बड़े विद्रोह का रूप नहीं ले पाए।

---

1. आर0एल0 शुक्ल – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 188

1857 का विद्रोह

मुगल कालीन भारत की समृद्धि को देखकर अनेक यूरोपीय शक्तियां भारत आई। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात जब मुगल सत्ता कमजोर हो गई तब इन शक्तियों ने इसका लाभ उठाया तथा अपने अपने क्षेत्र में राजनीतिक तथा आर्थिक स्वार्थ की पूर्ति हेतु स्वयं आपस में उलझ गयी। इस प्रकार इन शक्तियों के बीच आपसी संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में अंग्रेज सफल हुए और उन्होंने भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना की।

परन्तु भारत में ब्रिटिश शासन अन्याय एवं शोषण पर आधारित था। अंग्रेजी शासन के आरम्भिक 100 वर्षों में राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और सैनिक क्षेत्र में अनेक ऐसी प्रवृत्तियों का उदय हुआ जिन्होंने भारतीय जनता को अंग्रेजी शासन का प्रबल विरोधी बना दिया। देशी शासकों से उनकी सत्ता छीन ली गई। किसानों को कृषि दास बना दिया गया। दस्तकारों के पारम्परिक कौशल तथा जीविका के साधन समाप्त कर दिए गये थे। हेस्टिंग्स, वेलेजली, डलहौजी के साम्राज्य विस्तार की नीति ने देशी शासकों को पंगु बना दिया था। ब्रिटिश शासकों द्वारा भारतीयों के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप तथा ईसाई बनाने के प्रयत्न ने साधारण भारतीय में तीव्र असंतोष को जन्म दिया। अंग्रेज शासकों द्वारा किए गये निरन्तर आर्थिक शोषण से कृषक, श्रमिक तथा व्यापारी सभी वर्गों की स्थिति बहुत बुरी थी। काफी समय से भारतीय सैनिक भी असंतुष्ट थे। इसी समय चर्बी वाले कारतूसों की घटना ने उनकी धार्मिक भावनाओं को और भड़का दिया। इन सभी परिस्थितियों ने मिलकर 1857 के विद्रोह को जन्म दिया।

विद्रोह की प्रकृति :

1857 के विद्रोह के स्वरूप को लेकर इतिहासकारों में मतभेद रहा है। सर जान लारेंस और सीले ने इसे ''सैनिक विद्रोह'' की संज्ञा दी। परन्तु उनके इस मत से सहमत होना कठिन है क्योंकि सेना का कुछ ही अंश अंग्रेजों की ओर से लड़ा। विद्रोही जनता के हर वर्ग से आए थे। अवध और कुछ अन्य क्षेत्रों में इस विद्रोह को जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ था।

एल0ई0आर0 रीज का कहना है कि ''यह धर्मान्धों का ईसाईयों के विरूद्ध युद्ध था परन्तु उनका यह तर्क भी कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

टी0आर0 होम्स ने लिखा है कि यह ''बर्बरता तथा सभ्यता के बीच युद्ध था।'' परन्तु यह कथन भी ठीक नहीं। कारण यह कि यदि भारतीयों ने ज्यादतियां की थी तो अंग्रेज भी इस मामले में कम न थे। उदाहरण के लिए हडसन ने दिल्ली में अंधाधुन्ध गोली चलाई थी। नील को इस बात का गुमान था कि उन्होंने सैकड़ों भारतीयों को बिना मुकदमें के ही फांसी पर लटका दिया। इस प्रकार की अत्याचार करने वाली जाति अपने को सभ्य कहलाने का दावा कैसे कर सकती है?

बेजमिन डिजरेली ने इस विद्रोह को ''राष्ट्रीय विद्रोह'' की संज्ञा दी है। इसी प्रकार अशोक मेहता ने अपनी पुस्तक "The Great Rebellion" में बताया है कि विद्रोह का स्वरूप राष्ट्रीय था। वी0डी0 सावरकर द्वारा इसका वर्णन ''सुनियोजित राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम'' के रूप में किया गया है।

आर0सी0 मजूमदार तथा डा0 एस0एन0 सेन ने इस विद्रोह के सम्बन्ध में गहन शोध किया है। दोनों विद्वान कुछ बातों पर सहमत होते हुए भी एक मत नहीं है। डा0 एस0एन0 सेन ने अपनी पुस्तक ''एट्टीन फिफ्टी सेवन'' में

आंशिक रूप से इस मत से सहमत होते हुए कहते हैं "जो युद्ध धर्म की रक्षा के लिए एक युद्ध के रूप में आरम्भ हुआ था उसमें शीघ्र ही स्वतन्त्रता संग्राम का रूप धारण कर लिया और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि विद्रोही एक विदेशी सरकार को समाप्त करना चाहते थे और उस प्राचीन व्यवस्था को पुनः स्थापित करना चाहते थे जिसमें दिल्ली का राजा ही वास्तविक प्रतिनिधि था।" इससे असहमति व्यक्त करते हुए डा० आर०सी० मजूमदार ने लिखा है "तथाकथित प्रथम राष्ट्रीय संग्राम न तो पहला ही, न ही राष्ट्रीय तथा न ही स्वतन्त्रता संग्राम था।" निश्चित ही यह स्वतन्त्रता संग्राम नहीं था क्योंकि देश की बहुत बड़ी जनता तथा बहुत क्षेत्र इस विद्रोह के प्रति उदासीन रहे। नेताओं के उद्देश्य भी समान नहीं थे। साथ ही उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता अपने भ्रूणावस्था में थी।

मार्क्सवादी इतिहासकारों ने 1857 के विद्रोह को "विदेशी एवं सामंती गुलामी के विरूद्ध सैनिकों और किसानों के संयुक्त लोकतान्त्रिक संघर्ष" कहा है। लेकिन यह व्याख्या भी तथ्यों के विपरीत इसलिए है क्योंकि विद्रोह के नेता स्वयं सामन्त वर्ग से थे। एक अन्य इतिहासकार डा० एस०वी० चौधरी का कथन है कि 1857 के विद्रोह को सैनिक बगावत और सामान्य विद्रोह के रूप में दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। यह विद्रोह सैनिक तथा असैनिक विक्षोभ की दोनों श्रृंखलाओं के एकजुट हो जाने का परिणाम था जिनमें से प्रत्येक अलग–अलग शिकायतों के कारण उत्तेजित हुई थी।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस विद्रोह के स्वरूप को स्पष्टतः वर्गीकृत करना कठिन होगा। निःसन्देह यह साम्राज्यवाद विरोधी और राष्ट्रवादी था, क्योंकि हिन्दू और मुसलमानों, दोनों ने इसमें समान रूप से मिल–जुलकर भाग लिया और सैनिक व नागरिक, दोनों वर्ग साम्राज्यवादी ताकतों को उखाड़ फेंकना चाहते थे। परन्तु यह कहना कठिन है कि राष्ट्रीयता की संकल्पना थी।

विद्रोह के कारण :

1857 का विद्रोह कोई अकस्मात असंतोष का परिणाम न था, वरन् इसके पीछे आधारभूत कारण थे, इस विद्रोह के लिए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सैनिक कारण उत्तरदायी हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है–

1) **राजनीतिक कारण -**

अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति ने देश का राजनीतिक संतुलन बिगाड़ कर रख दिया था। वेलेजली की सहायक संधि ने भारतीय नरेशों को पंगु बना दिया था। डलहौजी ने हड़प नीति के द्वारा सतारा,नागपुर, सम्भलपुर, झांसी, बरार आदि राज्यों पर अधिकार कर लिया जिसके परिणामस्वरूप इन राजवंशों में असंतोष की भावना भर गयी। कुशासन के आधार पर हैदराबाद और अवध साम्राज्य में मिला लिए गए जबकि इन स्थानों पर कुशासन फैलाने के लिए स्वयं अंग्रेज उत्तरदायी थे। तंजौर और कर्नाटक के नबावों की राजकीय उपाधियां समाप्त कर दी गई। पंजाब, पीगू, सिक्किम विजय के अधिकार द्वारा मिला लिए गये। पेंशन और पदों की समाप्ति कर दी गयी। इससे देशी नरेशों में भय व्याप्त हो गया। उनका यह भय निराधार नहीं था जैसा कि ब्रिटिश साम्राज्य के एक निर्माता चार्ल्स नेपियर ने लिखा था– ''यदि मैं 12 वर्षों के लिए भारत का सम्राट होता तो कोई भारतीय राजा शेष नहीं रहता.... निजाम का नाम भी सुनाई न देता. ...... नेपाल हमारा होता....।''[1] मालेसन ने लिखा है– ''डलहौजी की नीति ने एवं अन्य ऊंचे पदाधिकारियों के कथनों एवं लेखों ने एक प्रकार का ''अविश्वास का वातावरण उत्पन्न कर दिया था और भारतीययों को यह प्रतीत होने लगा कि अंग्रेज मेमने के रूप में भेड़िये की भूमिका निभा रहे हैं।''[2]

---

1. बी0एल0 ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 260
2. बी0एल0 ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 260

मुसलमानों की भावनाओं को भी ठेस पहुंची थी, क्योंकि अंग्रेजी शासकों द्वारा निरन्तर मुगल बादशाह के साथ अपमानजनक व्यवहार किया जा रहा था। इन सबके कारण भारतीय जनता अंग्रेजों से तंग आ गई।

2) आर्थिक कारण -

कम्पनी का प्रशासनिक तन्त्र अकुशल तथा अपर्याप्त था। कम्पनी के भूराजस्व की नीति भारतीयों के हितों के विरूद्ध थी। यह नीति अन्याय एवं शोषण पर आधारित थी। विलय किए गए नए राज्यों के कई जिले स्थायी रूप से विद्रोह कर रहे थे। कई ताल्लुकेदारों से उनके पद और संसाधन छीन लिए गये थे। बम्बई के प्रसिद्ध इनाम कमिशन ने 20000 जागीरें जब्त कर ली जिससे बहुत से भूपति निर्धन बन गए, सम्पदाएं जब्त करके नीलाम कर दी गई। इस प्रकार विलय किए गए नए राज्यों में कम्पनी द्वारा की गई भूराजस्व व्यवस्था ने अभिजात वर्ग को निर्धन बना दिया। इससे किसानों को भी कोई फायदा नहीं हुआ जो साहूकारों के चंगुल में फंस गए और करों के बोझ से कराह रहे थे। कम्पनी की आर्थिक नीतियों ने भारतीय व्यापार एवं उद्योगों को भी नष्ट कर दिया। इससे असंतोष बढ़ता चला गया।

3) सामाजिक कारण -

अंग्रेज शासकों के अनेक सामाजिक सुधार की नीतियों ने भारतीयों को असंतुष्ट कर दिया क्योंकि वे इसे परम्परागत सामाजिक प्रणाली में हस्तक्षेप मानते थे। अंग्रेजों को अपनी श्वेत चमड़ी पर घमण्ड था और वे निरन्तर भारतीयों को काली चमड़ी वाला कहकर अपमानित करते थे। बी0एल0 ग्रोवर के अनुसार– ''वे भारतीयों को काले अथवा सुअर की संज्ञा देते थे।''1 बैटिक ने अपने

---

1. बी0एल0 ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 263

शासनकाल में सती प्रथा, बालहत्या, नरहत्या आदि पर प्रतिबन्ध लगाकर तथा डलहौजी ने विधवा विवाह को मान्यता देकर रूढ़िवादी भारतीयों के अन्दर असंतोष को भर दिया।

4) धार्मिक कारण -

अंग्रेजों का एक उद्देश्य यह था कि भारत में ईसाई धर्म का पूरे मनोयोग से प्रचार–प्रसार किया जाय, यद्यपि कहने के लिए यह शासन धर्म के मामले में तटस्थ था। भारतीयों को ईसाई बनाने का उद्देश्य कम्पनी के अध्यक्ष मैगल्ज द्वारा हाउस आफ कामन्स में दिए गए एक भाषण से स्पष्ट होता है। उन्होंने कहा था– "दैव योग से भारत का विस्तृत साम्राज्य ब्रिटेन को मिला है ताकि ईसाई धर्म की पताका भारत के इस छोर से दूसरे छोर तक फहरा सके। प्रत्येक व्यक्ति को शीघ्रातिशीघ्र समस्त भारतीयों को ईसाई बनाने के महान कार्य को पूर्णतया सम्पन्न करने में अपनी समस्त शक्ति लगा देनी चाहिये।"[1] अंग्रेजों द्वारा मूर्ति पूजा को बुरी तरह से देखा जाता था तथा हिन्दू देवी देवताओं का उपहास किया जाता था। सैनिकों को ईसाई धर्म अपनाने के बदले पदोन्नति का वचन दिया जाता था। ईसाई धर्म के प्रचार के लिए धर्म प्रचारकों को शासन का पूरा सहयोग मिला। उत्तराधिकार, दायभाग आदि जैसे विषयों में सामान्य पारम्परिक कानूनों के सम्बन्ध में मौलवियों एवं पंडितों दोनों के शास्त्र–सम्मत निर्योग्यता अधिनियम द्वारा हिन्दू रिवाजों में संशोधन किया गया। धर्म परिवर्तन करने से पुत्र अपने गैर ईसाई पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनने से वंचित नहीं हो सकता था। भारतीयों की मानसिकता निरन्तर यह बनती जा रही थी कि अंग्रेज उन्हें ईसाई बनाने का षडयन्त्र रच रहे हैं।

---

1. बी0एल0 ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 263

5) सैनिक कारण –

अंग्रेजी सेना में कार्य करने वाले भारतीय सैनिकों में व्यापक असंतोष था और सेना के अधिकतर सैनिक और छोटे अधिकारी भारतीय ही थे। इन सैनिकों का वेतन बहुत कम था और पदोन्नति की संभावना बहुत कम। भारतीयों को अपने देश से बाहर जाकर सैन्य सेवा करना नापसन्द था क्योंकि इससे उन्हें जाति बहिष्कृत हो जाने का खतरा था। इसके अतिरिक्त उन्हें समुद्रपार भत्ते नहीं दिए जाते थे। 1856 में कैनिग की सरकार ने सामान्य सेना भर्ती अधिनियम पारित किया जिसके अनुसार भावी सैनिकों को यह स्वीकार करना होता था कि जहां कही भी सरकार को आवश्यकता होगी वे वहीं कार्य करेंगे। 1854 में डाकघर अधिनियम पारित होने से सैनिकों की निःशुल्क डाक सुविधा समाप्त हो गई। इस बीच चर्बी वाले कारतूसों के प्रकरण ने आग में घी का काम किया। 1856 में कैनिग की सरकार ने नवीन एन फील्ड राइफल के प्रयोग का निश्चय किया। इस राइफल में कारतूस के ऊपर भाग को मुंह से काटना पड़ता था। इस बीच यह अफवाह फैल गई की चर्बी वाले कारतूस में गाय और सुअर की चर्बी है। इससे हिन्दू तथा मुसलमान दोनों सैनिकों में रोष व्याप्त हो गया। सैनिकों के अब विश्वास हो गया कि कारतूसों का प्रयोग उनके धर्म को भ्रष्ट करने का एक निश्चित प्रयत्न है।

विद्रोह का आरम्भ और प्रसार :

विद्रोह की ज्वाला 29 मार्च 1857 को भड़क उठी। मंगल पाण्डे नामक एक सैनिक ने वैरकपुर छावनी में अपने अफसर के विरूद्ध विद्रोह कर दिया परन्तु इस विद्रोह को नियन्त्रित कर लिया गया और साथ ही उसकी वटालियन 34 एन.आई. को भंग कर दिया गया। 24 अप्रैल को 3 एल0सी0 परेड मेरठ में 90 घुड़सवारों में से 85 सैनिकों ने नये कारतूस लेने से इन्कार कर

दिया। आदेश की अवहेलना करने पर इन्हें कठोर सजा दी गई। खुला विद्रोह 10 मई 1857 को प्रारम्भ हुआ। पैदल टुकड़ी 20 एन.आई. में विद्रोह की शुरूआत हुई। तत्पश्चात 3 एल.सी. में भी विद्रोह फैल गया। इन विद्रोहियों ने अपने अधिकारियों के ऊपर गोलियां चलाई।

11 मई 1857 को मेरठ के सैनिकों ने दिल्ली पहुंचकर मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर को दिल्ली का सम्राट घोषित किया। शीघ्र ही विद्रोह लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, बरेली, बनारस, बिहार तथा झांसी में फैल गया।

अंग्रेजों ने पंजाब से सेना बुलाकर पहले दिल्ली पर अधिकार कर लिया और लेफ्टिनेंट हडसन ने धोखे से बहादुर शाह के दो पुत्रों और एक पोते को गोली मरवा दी। लखनऊ में विद्रोह की शुरूआत 4 जून 1857 को हुई और यहां के विद्रोही सैनिकों द्वारा ब्रिटिश रेजीडेन्सी के घेराव के उपरान्त ब्रिटिश रेजीडेन्ट हेनरी लारेस की मृत्यु हो गई। हैवलाक आउट्रम ने लखनऊ में विद्रोह दबाने का भरसक प्रयास किया परन्तु असफल रहा। अंततः कालिन कैपबेल ने गोरखा रेजीमेंट के सहयोग से मार्च 1858 में शहर पर अधिकार कर लिया।

5 जून 1857 को विद्रोहियों ने कानपुर क़ो अंग्रेजों से छीन लिया। नाना साहब को पेशवा घोषत किया गया जिसमें तात्या टोपे ने उनका साथ दिया। सर कैपवेल के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना ने पुनः कानपुर को अपने कब्जे में कर लिया। तात्या टोपे कानपुर से फरार होकर झांसी चले गए।

जून 1857 में सैनिकों ने झांसी में विद्रोह कर रानी लक्ष्मीबाई को वहां की शासिका घोषित कर दिया। तात्या टोपे के सहयोग से लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों को नाकों चने चबवाया। इन दोनों ने ग्वालियर पर भी विद्रोह का झण्डा फहाराया और वहां के तत्कालीन शासक सिधिंया द्वारा विद्रोह में भाग न लेने पर

रानी ने नाना साहब को पेशवा घोषित किया परन्तु शीघ्र ही अंग्रेजों ने जून 1858 में ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। झांसी पर अंग्रेजी सेना ह्यूरोज के नेतृत्व में अप्रैल 1858 को अधिकार कर लिया। ह्यूरोज ने लक्ष्मीबाई की वीरता से प्रभावित होकर कहा– "यहां वह औरत सोई हुई है जो विद्रोहियों में एक मात्र मर्द थी।"[1] बरेजी में खान बहादुर खां ने स्वयं को नबाव घोषित किया। बिहार में जगदीशपुर के जमींदार कुंअर सिंह ने ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ विद्रोह का झण्डा फहराया। बनारस में हुए विद्रोह को कर्नल नील ने दबाया। जगदीशपुर के विद्रोह को अंग्रेज अधिकारी विलियम टेलर एवं मेजर विसेंट आयर ने दबाया। इस प्रकार जुलाई 1858 तक विद्रोह पूर्णतया शान्त हो गया।

विद्रोह की असफलता के कारण :

1. यह विद्रोह स्थानीय, सीमित और असंगठित था। बम्बई एवं मद्रास की सेनायें तथा नर्मदा नदी के दक्षिण के राज्यों ने अंग्रेजों का समर्थन किया। राजस्थान में कोटा और अलवर के अतिरिक्त शेष स्थानों पर विद्रोह का कोई प्रभाव नहीं था। सिन्ध भी शान्त था।

2. अच्छे अस्त्र–शस्त्र एवं धन की कमी ने भी विद्रोह को असफल बनाया। भारतीयों के पास बन्दूकें थोड़ी थी और वे तलवार से लड़े। इसके विपरीत अंग्रेजी सेना अत्याधुनिक हथियोरों से लैस थी। नाना साहब ने तो एक बार कहा था– "यंह नीली टोपी वाली राईफल तो गोली चलने से पहले ही मार देती है।"[2] आवागमन एवं संचार के साधानों ने भी विद्रोह को दबाने में काफी सहायता दी।

3. इस विद्रोह के प्रति "शिक्षित वर्ग" पूर्ण रूप से उदासीन रहा। यदि इस

---

1. विपिन चन्द्र– भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पेज–8
2. बी0एल0 ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 270–271

वर्ग ने अपने लेखों एवं भाषणों द्वारा लोगों में उत्साह का संचार किया होता तो निःसन्देह विद्रोह का परिणाम कुछ और होता।

4. इस विद्रोह में राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था। समाज के सभी वर्गों का सहयोग इस विद्रोह को नहीं मिला। सामन्तवादी वर्गों में एक वर्ग ने विद्रोह में सहयोग किया परन्तु पटियाला, जीन्द, ग्वालियर एवं हैदराबाद के राजाओं ने विद्रोह को कुचलने में अंग्रेजों का सहयोग किया।

5. विद्रोहियों में अनुभव, संगठन क्षमता एवं मिलकर कार्य करने की कमी थी।

6. सैनिक दुर्बलता भी विद्रोह की असफलता का एक अन्य कारण थी। बहादुर शाह जफर एवं नाना साहब एक कुशल संगठनकर्ता अवश्य थे परन्तु उनमें सैन्य नेतृत्व की क्षमता की कमी थी, वहीं अंग्रेजी सेना के पास लारेन्स बन्धु, निकल्सन, हैवलॉक, आउट्रम एवं एडवर्क्स जैसे कुशल सेना नायक थे।

7. उचित नेतृत्व तथा ठोस योजना एवं लक्ष्य का अभाव भी विद्रोह की असफलता का एक कारण बना।

विद्रोह का प्रभाव :

1857 का विद्रोह भारत में अंग्रेजी शासन के इतिहास में एक अद्वितीय घटना थी जिसने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की बुनियादें हिला दीं। इसने अंग्रेजी शासन का स्वरूप बदल दिया जिसके साथ ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और भारत सीधे क्राउन के अधीन आ गया। इस विद्रोह के परिणाम निम्नलिखित थे–

– विद्रोह के असफल हो जाने के पश्चात 1858 में ब्रिटिश संसद ने एक कानून पास कर ईस्ट इंडिया कम्पनी के अस्तित्व को समाप्त कर दिया। अब भारत का शासन ब्रिटिश क्राउन के आधीन कर दिया गया। 1858 के

अधिनियम के तहत भारतीय राज्य सचिव की व्यवस्था की गयी। इसकी सहायता के लिऐ 15 सदस्यों की एक 'मंत्रणा परिषद' बनायी गई। इन 15 सदस्यों में 8 की नियुक्ति सरकार द्वारा करने तथा 7 की कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स द्वारा चुनने की व्यवस्था की गई।

– अब गर्वनर जनरल को वायसराय का नाम दिया गया।

– अंग्रेजों ने साम्राज्य विस्तार की नीति त्याग दी। देशी राजाओं को उनके गौरव एवं अधिकारों को पुनः वापस करने की बात कही गई और साथ ही धार्मिक शोषण को खत्म कर बिना भेदभाव के सेवाओं में भागीदारी की बात की गई।

– 1858 में विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा सेना के पुर्नगठन के लिए स्थापित पील कमीशन की रिपोर्ट पर सेना ने भारतीय सैनिकों की तुलना में यूरोपियनों का अनुपात बढ़ा दिया गया। सैनिकों की भर्ती हेतु एक ''रायल कमीशन'' गठित हुआ तथा बड़ी कुटिलता से ''फूट डालो राज्य करो'' की नीति का अनुसरण करते हुए सेना के रेजिमेंटो को जाति, समुदाय और धर्म के आधार पर विभाजित कर दिया गया।

– भारतीय राजाओं को गोद लेने की अनुमति दे दी गई।

– साम्राज्य विस्तार के स्थान पर अब आर्थिक शोषण का युग आरम्भ हुआ।

– भारतीयों को प्रशासन में प्रतिनिधित्व देने के लिए 1861 में भारतीय परिषद अधिनियम पारित किया गया।

– विद्रोह के परिणामस्वरूप भारतीयों में राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास हुआ।

– विद्रोह से भारतीयों एवं अंग्रेजों के बीच खाई चौड़ी होती गई। यह जातीय कटुता कभी–कभी हिंसा के रूप में परिवर्तित हो जाती थी।

भारत में राष्ट्रीयता के उदय के कारण

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रारम्भ कांग्रेस की स्थापना, जिसकी स्थापना 1885 ईस्वी में हुई थी, माना जाता है। यद्यपि 'कांग्रेस का इतिहास' के लेखक पट्टाभिसीतारमैया के इस विचार को तो ऐतिहासिक दृष्टि से स्वीकार नहीं किया जा सकता कि "कांग्रेस का इतिहास ही भारत की स्वतन्त्रता के संघर्ष का इतिहास है, क्योंकि कांग्रेस की स्थापना के पूर्व और पश्चात दूसरी अनेक शक्तियों द्वारा भी इस उद्देश्य से कार्य किया गया था, लेकिन कांग्रेस ने सदैव ही भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष के दोरान केन्द्र का कार्य किया। यह वही धुरी थी जिसके चारों ओर स्वतन्त्रता के महान गाथा की विविध घटनाएं घटित हुई।"[1] स्वतन्त्रता आन्दोलन में कांग्रेस के इस प्रमुख भाग के कारण ही भारत में राष्ट्रीयता के उदय का उल्लेख कांग्रेस की स्थापना के समय से किया जाता है।

1857 ईस्वी के विद्रोह के पश्चात भारत में राष्ट्रीयता का उदय होने लगा था। आरम्भ में साम्राज्यवादी हुकूमत ने इस राष्ट्रीयता के अस्तित्व को मानने से इन्कार कर दिया किन्तु जब 19वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में यह दिखाला दिया गया कि भारत में राष्ट्रवाद उभर चुका है और यह तेजी से विकसित हो रहा है तब अंग्रेजों ने एक नया रास्ता अपनाया। मान्टफोर्ड रिपोर्ट के लेखकों ने भारत में अंग्रेजी राज को ही राष्ट्रीय भावना के उदय के लिए श्रेय दिया। इसमें लिखा था– "राजनीतिक भावना से प्रेरित भारतीय बौद्धिक रूप से हमारी ही सन्तान हैं। उन्होंने वे ही विचार अपनाए हैं जो हमने उनके सामने रखे हैं और इसका श्रेय हमें ही मिलना चाहिए। भारत में आधुनिक बौद्धिक तथा नैतिक हलचल से हमारी भर्त्सना नहीं होती अपितु यह हमारे कार्य के लिए एक श्रद्धांजलि है।"[2] परन्तु यह

---

1. R.C. Mazumdar, History of the Freedom Movement in India
2. Quoted by B.L. Grover – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज– 404

विचार ठीक नहीं है यह कहना अधिक उचित होगा कि भारतीय राष्ट्रवाद फ्रांसीसी क्रान्ति के परिणामस्वरूप समूचे संसार में उत्पन्न हुए राष्ट्रवाद तथा आत्मनिर्णय की भावना, कुछ अंशों में भारतीय पुर्नजागरण का परिणाम, कुछ अंशों में भारत में अंग्रेजों द्वारा प्रारम्भ किए गए आधुनिकीकरण का परिणाम तथा आंशिक रूप से भारत में चल रही अंग्रेजी औपनिवेशिक नीतियों की तीव्र प्रतिक्रिया का ही परिणाम था। भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के निम्न कारण थे।

1) **1857 का स्वतन्त्रता संग्राम -**

सन! 1857 का विद्रोह एक सैन्य विद्रोह के रूप में आरम्भ हुआ था लेकिन इसने शीघ्र ही एक जनविद्रोह का रूप धारण कर लिया। इस विद्रोह से अंग्रेजों के मन में भारतीयों के प्रति और भारतीयों के मन में अंग्रेजों के प्रति घृणा की भावना पैठ कर गई। यह भावना राष्ट्रवाद के उत्थान में सहायक हुई।

2) **राजनीतिक एकता की स्थापना -**

ब्रिटिश हुकूमत ने पूरे देश में समान शासन व्यवस्था की स्थापना की। इसका परिणाम हुआ कि भारत राजनीतिक रूप से एक हो गया। इस राजनीतिक एकता की भावना ने राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित किया। पं0 नेहरू ने लिखा है कि– ''ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित भारत की एकता सामान्य अधीनता की एकता थी लेकिन उसने सामान्य राष्ट्रीयता की एकता को जन्म दिया।''[1]

3) **पुर्नजागरण आन्दोलन -**

19वीं शताब्दी में हुए पुर्नजागरण आन्दोलन ने भी राष्ट्रीयता के उदय में भरपूर सहायता की। इन आन्दोलनों में ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन का नाम उल्लेखनीय है। इन आन्दोलनों

---

1. Pt. Nehru, Autobiography, P. 437.

ने भारत के प्राचीन गौरव को लोगों के सामने रखा। उन्होंने सोये हुए भारत को जागृत किया। इन आन्दोलनों ने लोगों में आत्म सम्मान की भावना जगायी। धर्म और समाज की एकता के आधार पर देशव्यापी एकता को प्रोत्साहन मिला। ए0आर0देसाई के अनुसार– ''ये आन्दोलन कम अधिक मात्रा में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक समानता के लिए संघर्ष थे और इनका चरम लक्ष्य राष्ट्रवाद था।''[1]

3) पाश्चात्य शिक्षा –

''भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा पाश्चात्य शिक्षा प्रारम्भ किए जाने का उद्देश्य यह था कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पूर्ण रूप से लोप हो जाए और ऐसे वर्ग का निर्माण हो जो रक्त और वर्ण से तो भारतीय हो किन्तु रूचि, विचार, शब्द और बुद्धि से अंग्रेज हो जाए।''[2] कुछ सीमा तक अंग्रेज इस कार्य में सफल हुए किन्तु इसका एक दूसरा पक्ष यह भी था कि यह शिक्षा भारतीयों के लिए वरदान सिद्ध हुई। इस शिक्षा के कारण भारतीयों को मिल्टन, वर्क, मिल, मैकाले आदि के विचारों को जानने का अवसर प्राप्त हुआ। अंग्रेजी भाषा के प्रचलन ने शिक्षित मध्यमवर्गीय भारतीयों को एक मंच पर ला खड़ा किया।

4) भारतीय समाचार पत्रों तथा देशी साहित्य का विकास –

भारत में अंग्रेजी शासन का एक अन्य प्रभाव देशी समाचार पत्रों का उभरना था। इन समाचार पत्रों ने भारत में अंग्रेजी राज के ढोल की पोल खोल दी। इससे अंग्रेज विरोधी भावनाएं जागृत हुई जिसने राष्ट्रवाद का मार्ग प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त इस काल में बंगाली, मराठी, गुजराती और तमिल भाषा में ऐसे साहित्य का सृजन हुआ जिसने राष्ट्रीय अन्दोलन के उदय में योगदान दिया।

---

1. A.R. Desai, Social Background of Indian Nationalism, P.210
2. Garrat, An Indian Commentary, P.119.

5) **आर्थिक शोषण -**

मि0 गैरेट ने लिखा है– ''राष्ट्रीयता में शिक्षित वर्ग का अनुराग हमेशा ही कुछ हद तक धार्मिक और कुछ हद तक आर्थिक कारणों से हुआ है।'' यह कथन भारतीय राष्ट्रीयता पर पूरे रूप से लागू होता है। अंग्रेजों की नीति भारतीय कृषि, व्यापार तथा उद्योग धंधों के विरूद्ध थी। भारतीय किसानों की दशा अत्यन्त सोचनीय हो गयी थी। आर्थिक शोषण के फलस्वरूप असंतोष का उत्पन्न होना स्वाभाविक था।

6) **भारतीयों को उच्च पदों से अलग रखने की नीति -**

अंग्रेजी हुकूमत ने शुरू से ही भारतीयों को उच्च पदों से अलग रखने की नीति अपनायी थी। परीक्षा में प्रवेश की आयु 21 वर्ष थी और प्रणाली बहुत जटिल। लिटन ने प्रवेश की आयु 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष कर भारतीयों के जले पर नमक छिड़क दिया। इस निर्णय के विरूद्ध सुरेन्द्र नाथ चटर्जी ने राष्ट्रीय जनमत जागृत करने हेतु देश व्यापी दौरा किया। उन्होंने 1876 में इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना की जिसे कांग्रेस की पूर्ववर्ती संस्था कहा जा सकता है।

7) **जाति विभेद की नीति -**

1857 के विद्रोह ने जातीय कटुता की भावना को प्रोत्साहित किया। अंग्रेजों ने जाति विभेद की जो नीति अपनाई थी उसने भी भारतीयों में असंतोष उत्पन्न किया।

8) **यातायात तथा संचार साधनों का विकास -**

अंग्रेजों द्वारा यातायात तथा संचार साधनों के विकास ने भी

राष्ट्रीयता को प्रोत्साहित करने में प्रमुख भूमिका निभाई। इन साधनों ने पूरे देश को गूथकर एक कर दिया और भौगोलिक एकता को एक मूर्त वास्तविकता बना दिया।

9) **लार्ड लिटन की प्रतिक्रियावादी नीति –**

लार्ड लिटन की भारत विरोधी नीति ने भी राष्ट्रीयता के उदय में सहायता की। उसकी इन नीतियों में भारतीय सिविल सेवा की आयु 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष कर देना, दिल्ली दरबार का आयोजन, भारतीय शस्त्र अधिनियम, वर्ना क्यूलर प्रेस एक्ट प्रमुख है। उसके ये सभी कार्य भारत विरोधी थे जिससे अंग्रेज विरोधी भावनाएं जागृत हुई।

10) **इल्बर्ट बिल सम्बन्धी विवाद –**

1883 में प्रस्तुत इल्बर्ट बिल में भारतीय जजों को यूरोपियों के मुकदमें की सुनवाई का अधिकार दे दिया गया था, परन्तु जातीय उच्चता की भावना से प्रेरित अंग्रेजों ने इस बिल का विरोध कर संगठित आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप यह बिल अपने मूल रूप में पारित न हो सका। परन्तु इस विवाद ने भारतीयों की आंखे खोल दी। उन्होंने यह देखा कि जहां यूरोपिय लोगों के विशेषाधिकारों का प्रश्न है उन्हें न्याय नहीं मिल सकता। दूसरे उन्हें यह भी अनुभव हुआ कि संगठित आन्दोलन का क्या प्रभाव होता है। हेनरी काटन ने लिखा है– ''इस विधेयक और इसके विरोध में किए गए आन्दोलन ने भारतीय राष्ट्रीयता पर जो प्रभाव डाला, वह प्रभाव विधेयक के मूल रूप में पारित होने पर कभी नहीं हो सकता था।''[1]

---

1. Sir Henry Cotton, New India, pp. 15-16.

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त भारतीयों द्वारा की गई विदेशी यात्राएं, संसार के अन्य भागों में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन, राष्ट्रीयता के उदय के अन्य कारण थे। इन सब कारणों के फलस्वरूप जो राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हुई थी उसने कांग्रेस को जन्म दिया।

कांग्रेस की स्थापना

1885 में कांग्रेस का जन्म आकस्मिक न था। कांग्रेस के पूर्व भी अनेक ऐसी संस्थायें थी जो राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने का कार्य कर रही थी। इन संस्थाओं में मुख्य रूप से ब्रिटिश इण्डिया एसोसिएशन (1851), इण्डिया लीग (1875), इण्डियन एसोसिएशन (1876), पूना सार्वजनिक सभा (1867), बाम्बे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन प्रमुख है। परन्तु ये संस्थाएं अलग–अलग क्षेत्रों में कार्य कर रही थी। लार्ड लिटन के अविवेकपूर्ण कार्यो तथा इल्बर्ट बिल सम्बन्धी विवाद ने एक अखिल भारतीय लक्षण के राजनीतिक संगठन की आवश्यकता महसूस कराई। इन्हीं परिस्थितियों में एक अंग्रेज अधिकारी ए0ओ0 ह्यूम के मन में कांग्रेस की स्थापना का विचार आया। ह्यूम ने अपनी यह योजना तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन के सामने रखी और डफरिन ने प्रस्तावित संगठन के कार्य क्षेत्र को बढ़ाने का सुझाव देते हुए कहा कि इस संगठन द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में कार्य किया जाना चाहिए।

ह्यूम ने वायसराय की इच्छानुसार अपनी इस योजना में परिवर्तन किया और प्रमुख व्यक्तियों से विचार विनिमय के लिए इंग्लैण्ड गये। वापस आने पर उन्होंने यह निश्चय किया कि कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन 25 से 28 दिसम्बर 1885 को पूना में होगा। परन्तु पूना में हैजा फैल जाने के कारण अधिवेशन का स्थान पूना से बम्बई हो गया। इस प्रकार बम्बई के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज में कांग्रेस का जन्म हुआ। इस प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता व्योमेश चन्द्र बनर्जी ने की। यह समस्त कार्य सरकारी आशीर्वाद से हुआ था। कूप लैण्ड ने लिखा है– "भारतीय राष्ट्रीयता ब्रिटिश राज की शिशु थी और ब्रिटिश अधिकारियों ने उसके पालने को आशीर्वाद दिया था।"[1] इसमें बिलियम बेडनवर्ग और रानाडे जैसे सरकारी अधिकारी भी उपस्थित थे।

---

1. Coupland, The Indian Problem, 1933-1935, P.23.

कांग्रेस की स्थापना से जुड़ा विवाद :

कांग्रेस की स्थापना क्यों हुई, इस प्रश्न को लेकर इतिहासकारों में विवाद रहा है। इतिहासकारों का एक वर्ग मानता है कि बढ़ते हुए असन्तोष को 'सुरक्षा बाल्व' प्रदान करने के लिए कांग्रेस की स्थापना की गयी। जहां तक इस विचार की बात है, यह सही भी हो सकता है लेकिन यह स्पष्ट करने के लिए कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है क्रि कांग्रेस की स्थापना सुरक्षा वाल्व के रूप में की गयी थी। यदि यह संस्था ब्रिटिश हितों की रक्षा के लिए सुरक्षा वाल्व के रूप में होती तो इसे ब्रिटिश सरकार के कोपभाजन का शिकार न बनना पड़ता। डफरिन ने स्वयं कांग्रेस का उल्लेख ''सूक्ष्मदर्शी अल्पसंख्यकों'' के प्रवक्ता के रूप में किया था और उस पर ब्रिटिश अधिकारियों के विरूद्ध विद्वेष फैलाने का आरोप लगाया था। इससे अधिक प्रभावशाली नीति ''फूट डालो और राज करो'' द्वारा कांग्रेस से मुसलमानों को अलग रखना था। लार्ड कर्जन ने 1900 में भारत विषयक सचिव को यह लिखा था। ''कांग्रेस अपने पतन के कगार पर खड़ी है और भारत में रहते हुए मेरी एक प्रबल अभिलाषा इसके शान्तिपूर्ण अन्त में सहयोग करना है।''

मुख्यतः कैम्ब्रिज में केन्द्रित इतिहास की नव साम्राज्यवादी विचारधारा से सम्बद्ध कुछ इतिहासकारों ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस वस्तुतः बिल्कुल भी राष्ट्रवादी नहीं थी, बल्कि यह तो नौकरी के भूखे, कुठिंत और निराश मध्यमवर्ग या सत्ता लोभी स्वार्थी व्यक्तियों का एक आन्दोलन मात्र था और उन्होंने अपने प्रतिद्वन्द्विताओं के लिए एक साधन के रूप में कांग्रेस का उपयोग किया। किसी विशेष मामले में यह बात पर्याप्त सही सिद्ध हो सकती है लेकिन विचारधारा एवं देशभक्ति पूर्ण प्रायोजनों के महत्व का इस प्रकार सामान्यीकरण करना न केवल गलत होगा बल्कि उस विचार की भी उपेक्षा होगी जिसने लाखों करोड़ों में राष्ट्रीय चेतना का संचार करके उन्हें प्रभावित किया।

बल्कि सही अर्थ में कहे तो कांग्रेस ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के उन आर्थिक एवं जातीय उपलक्ष्यों पर ही पानी फेर दिया जिनकी कल्पना अंग्रेजों ने इस संस्था की स्थापना के समय नहीं की होगी।

कांग्रेस के उद्देश्य :

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष डब्लू0सी0 बनर्जी ने कांग्रेस के निम्न उद्देयों को स्पष्ट किया।

– देश हित की दिशा में प्रत्यनशील भारतीयों में परस्पर सम्पर्क एवं मित्रता को प्रोत्साहन देना।

– देश के अन्दर धर्म, वंश एवं प्रान्त सम्बन्धी विवादों को खत्म कर राष्ट्रीय एकता की भावना को प्रोत्साहित करना।

– शिक्षित वर्ग की पूर्ण सहमति से महत्वपूर्ण एवं आवश्यक सामाजिक विषयों पर विचार विमर्श करना तथा यह निश्चित करना कि आने वाले वर्षों में भारतीय जनकल्याण के लिए किए दिशा में और किस आधार पर कार्य किया जाय।

कांग्रेस के आरम्भिक अधिवेशन :

1885 में स्थापित कांग्रेस का स्वरूप अखिल भारतीय था। इसका उद्देश्य जाति, धर्म या वर्ण के किसी भेदभाव के बिना सभी भारतवासियों का प्रतिनिधित्व करना था। इसका राष्ट्रीय स्वरूप इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि इसके प्रथम अध्यक्ष व्योमेशचन्द्र बनर्जी भारतीय ईसाई थे, दूसरे दादा भाई नौरोजी पारसी थे, तीसरे वदरूद्दीन तैयब जी मुसलमान थे और चौथे तथा पांचवे अध्यक्ष जार्जयूल तथा सर विलियम बेडनवर्ग अंग्रेज थे।

अपने रचनात्मक वर्षों में कांग्रेस ने शक्तिशाली राष्ट्रीय भावनाओं के विकास के लिए उल्लेखनीय कदम उठाए। 1886 में राष्ट्रीय कांग्रेस तथा नेशनल कान्फ्रेंस का विलय हुआ। 1887 के तीसरे अधिवेशन में अध्यक्ष के मंच से बदरूद्दीन तैय्यब जी ने अपने सहधर्मी मुसलमानों से अपील की कि वे सर्वसाधारण के हितों के लिए अपने साथी देशवासियों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करें। कांग्रेस का यह धर्म निरपेक्ष स्वरूप उसकी शक्ति का सर्वाधिक प्रबल स्रोत सिद्ध हुआ।

उदार राष्ट्रीयता का युग

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ ही इस पर उदारवादी राष्ट्रीय नेताओं का वर्चस्व हो गया। तत्कालीन उदारवादी राष्ट्रीय नेताओं में प्रमुख थे– दादा भाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे, फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, दीनशावाचा गोपाल कृष्ण गोखले, मदन मोहन मालवीय। कांग्रेस की स्थापना के आरम्भिक 20 वर्षों में उसकी नीति अत्यन्त ही उदार थी, इसलिए इस काल को कांग्रेस के इतिहास में उदारवादी राष्ट्रीयता का काल माना जाता है। इन नेताओं का मानना था कि संवैधानिक तरीके अपनाकर ही हम देश को आजाद करा सकते हैं, इसलिए इन्होंने प्रार्थना पत्रों, प्रतिवेदनों, स्मरण पत्रों, शिष्ट मंडलों का सहारा लिया। इन नेताओं का ब्रिटिश शासन के प्रति कृतज्ञता का भाव था। उन्हें अंग्रेजों की न्यायप्रियता में भी अटूट विश्वास था जैसा कि 12वें अधिवेशन के अध्यक्ष रहमतुल्ला सयानी ने कहा था कि– ''अंग्रेजों से बढ़कर सच्ची जाति इस सूर्य के प्रकाश के नीचे नहीं बसती।''[1] इन नेताओं का विश्वास था कि अंग्रेजों ने ही भारत को एक प्रगतिशील सभ्यता प्रदान की है। इन सब कारणों से ही उन्होंने संवैधानिक साधनों को अपनाया जिसके कारण आलोचकों ने उन्हें ''राजनीतिक भिक्षावृत्ति'' का नाम दिया।

उदारवादी नेताओं और उनके द्वारा अपनाये गए साधनों की अनेक आधारों पर आलोचना की जाती है। यह कहा जाता है कि उनके द्वारा अपनाया गया साधन प्रभावशाली न था। ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति से उनकी देशभक्ति आशिंक होकर रह गई थी। उनका यह भी सोचना गलत था कि ब्रिटिश राज भारत के हित में है, और अंग्रेजों ने ही भारत को आधुनिक बनाया है।

---

1. Quoted from Annie Beasant, How India Wrough for Freedom, P.232.

वास्तव में अंग्रेजों ने भारत को जो भौतिक प्रगति प्रदान की थी वह अपने स्वार्थों के लिए की थी। कुल मिलाकर इस हुकूमत ने भारत के विनाश में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी थी। इन नेताओं का यह भी सोचना गलत था कि ब्रिटिश राज भारत के हित में है। उनका जनसाधारण से कोई सम्पर्क न था। गुरूमुख निहाल सिंह लिखते हैं– ''सम्भवतः गोखले को छोड़कर कांग्रेस के नरम नेताओं में स्वतन्त्रता के लिए व्यक्तिगत बलिदान करने और आपत्तियां सहने को कोई तैयार नहीं था।''[1]

उपरोक्त आलोचनाओं के बाद भी उदारवादियों द्वारा किया गया कार्य बेहद महत्वपूर्ण है। यद्यपि उनकी राजनीतिक मांगे साधारण थी लेकिन आर्थिक मांगों का स्वरूप उग्रवादी तथ साम्राज्य विरोधी था। उन्होंने इस शोषण तन्त्र का पर्दाफाश कर दिया, जिसके माध्यम से ब्रिटिश राज का संचालन होता था और इस तरह भारत और इंग्लैण्ड के बीच आर्थिक सम्बन्धों में मूलभूत परिवर्तनों की मांग की गई। उन्होंने देशवासियों को राजनीतिक शिक्षा प्रदान की। शुरू के दिनों में ही कांग्रेस, ''सरकार का एक प्रतिपक्ष बन गई, ऐसा प्रतिपक्ष जिसने सरकार की हैसियत और अधिकार को चुनौती दी।''[2] कांग्रेस वस्तुतः एक राष्ट्रीय संगठन था जिसकी मांगों का स्वरूप धर्म निरपेक्ष था। हालांकि यह मुख्यतः राजनीतिक संगठन था फिर भी इसके कार्यक्रम में धर्म को छोड़कर जीवन के सभी क्षेत्रों में भारतीयों के हितों को शामिल किया गया था। इसने सरकार और जनता के बीच एक कड़ी का कार्य किया, इस प्रकार स्वतन्त्रता आन्दोलन की नीव पड़ी। उनके दबाव के चलते ही 1892 का भारत परिषद अधिनियम पारित हुआ जिसके द्वारा निर्वाचित स्थानीय निकायों को कुछ अधिकार प्रदान किए गए। यद्यपि यह सीमित सुधार नितान्त असंतोष जनक थे, फिर भी यह उदारवादियों के राजनीतिक प्रयासों का परिणाम था।

---

1. जी0एन0 सिंह, भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, पेज– 121
2. Mc Donald, Government of India.

उग्र राष्ट्रीयता का युग (1906-1919)

कांग्रेस की उदारवादी नीतियों से कुछ तरूण लोगों का मोह भंग हो गया। इन तरूण लोगों का विचार था कि कांग्रेस को याचना पद्धति का मार्ग त्यागकर अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए और ब्रिटिश शासन पर दबाव डालकर शासन व्यवस्था में मौलिक परिवर्तन करवाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये। 1892 का भारत परिषद अधिनियम भारतीयों को संतुष्ट न कर सका था। ब्रिटिश सरकार द्वारा लगातार अपनायी जाने वाली उपेक्षापूर्ण नीति ने कांग्रेस के युवा नेताओं को उत्तेजित कर दिया था। धार्मिक तथा सांस्कृतिक पुर्नजागरण के कारण कुछ ऐसे वर्ग का उदय हुआ जिन्होंने अपनी सभ्यता और संस्कृति को पाश्चात्य संस्कृति से श्रेष्ठ माना। 1876 से 1900 तक के 25 वर्षों में भारत करीब 18 अकालों के चपेट में आ चुका था जिससे भीषण जन-धन की हानि हुई। इसमें सबसे अधिक भीषण अकाल 1896-97 का था। अकाल की यातना से अभी मुक्ति भी नहीं मिली थी कि बम्बई प्रान्त के दक्षिणी भाग में प्लेग फैल गया। सरकार ने प्लेग का सामना करने में निर्दयता की नीति का परिचय दिया। रामगोपाल के अनुसार- "सारा काम इस ढंग का था जैसे किसी दुश्मन द्वारा जीते गये शहर को फूका जा रहा हो।"[1] जनता में रोष इतना अधिक था कि चापरेकर बन्धुओं ने रैण्ड और उनके साथी एमर्स्ट को गोली से उड़ा दिया। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा किए जा रहे आर्थिक शोषण तथा शिक्षित भारतीयों को रोजगार से दूर रखने की नीति ने भी उग्रराष्ट्रवाद को प्रोत्साहन दिया। ए0आर0 देसाई के अनुसार- "भारत में उग्र राष्ट्रवाद के उदय का प्रमुख कारण शिक्षित भारतीयों में बेकारी से उत्पन्न राजनीतिक असंतोष था।"[2]

---

1. Ram Gopal, Lokmanya Tilak, P.137
2. A.R. Desai Op.Cit., P.183.

अंग्रेजों का भारतीयों के प्रति अहंकार युक्त व्यवहार ने भी उग्र राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन दिया। ब्रिटिश उपनिवेशों में भी भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता था। 1903 में दक्षिण अफ्रीका से लौटकर वी0एस0 मुंडो ने दुखपूर्वक कहा था– ''हमारे शासक इस बात पर विश्वास ही नहीं करते कि हम भी मनुष्य हैं।''[1] इसके अतिरिक्त पश्चिम के क्रान्तिकारी विचारों एवं इथोपिया द्वारा इटली पर तथा जापान द्वारा रूस पर विजय ने भी उग्रराष्ट्रीयता के विकास को आधार शिला प्रदान की। लार्ड कर्जन के प्रतिक्रिया वादी शासन जैसे– कलकत्ता कारपोरेशन अधिनियम, भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम, प्रशासकीय गुप्तता अधिनियम, दिल्ली दरबार, बंगाल विभाजन आदि की भारतीय युवा मन पर कड़ी प्रतिक्रिया हुई। इन्द्र विद्या वचस्पति के शब्दों में– ''1898 से 1905 तक भारत के गर्वनर जनरल के रूप में नौकरशाही के साक्षात प्रतिरूप लार्ड कर्जन ने ब्रिटिश साम्राज्य के लिए वही कार्य किया जो मुगल साम्राज्य के लिए औरगंजेब ने किया था।''[2] इन सभी कारणों के परिणामस्वरूप उग्रवाद का उदय नितान्त स्वाभाविक था।

कांग्रेस में फूट का आरम्भ : उदारवादी एवं उग्रवादी -

उग्रवाद के उदय ने कांग्रेस संगठन को प्रभावित किया। 1905 के बनारस अधिवेशन में तिलक ने ''राजनीतिक भिक्षावृत्ति'' की तीव्र निन्दा की और जोर दिया कि संगठित निष्क्रिय प्रतिरोध के मार्ग को अपनाकर ही भारत से विदेशी शासन का अन्त किया जा सकता है परन्तु उदारवादी इस विचारधारा को अव्यवहारिक मानते थे क्योंकि इससे राष्ट्रीय प्रगति अवरूद्ध हो जाने का खतरा था। 1906 के कलकत्ता अधिवेशन में यह मतभेद काफी हद तक उभरकर सामने

---

1. Dr. B.S. Muonje Quoted from Dr. Pattabhi, History of I.N.C. Vol.I P.47
2. इन्द्र विद्यावाचस्पति, भारतीय स्वाधनीता संग्राम का इतिहास, पेज–10

आया। परन्तु दादा भाई नौरोजी के योग्य नेतृत्व ने कांग्रेस में होने वाली फूट को बचा लिया। मतभेद समाप्त तो नहीं हुए लेनिक दब अवश्य गये जिसका परिणाम 1907 में सूरत के कांग्रेस अधिवेशन में दिखा। उग्रवादी दल इस अधिवेशन (1906) में 4 प्रस्ताव (1) स्वराज की प्राप्ति (2) राष्ट्रीय शिक्षा को अपनाना (3) स्वदेशी आन्दोलन को प्रोत्साहन (4) विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार आदि पास करवाने में सफल रहा। 1907 का सूरत अधिवेशन अनेक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस अधिवेशन में अध्यक्ष पद के चुनाव के लिए दोनों दलों में काफी मतभेद था। उग्रवादी जहां लाला लाजपत राय को इसका अध्यक्ष बनाना चाहते थे वहीं उदारवादी इस पद के लिए रास बिहारी घोष का समर्थन कर रहे थे। परन्तु मतभेद का मूल कारण 1906 के अधिवेशन में पास किए गए चारों प्रस्ताव थे जिसको पुनः पारित करवाने के लिए उग्रवादी जोर दे रहे थे। स्थिति इतनी गम्भीर हो गयी कि दोनों दलों में भयंकर मारपीट हुई जिसके कारण कांग्रेस विधिवत दो वर्गों में बंट गयी, उदारवादी और उग्रवादी।

भारतीय राजनीति में उग्रवाद का यह नया दौर दो रूपों में प्रकट हुआ– (1) कांग्रेस के भीतर उग्रवादी दल (2) देश में क्रान्तिकारी दल का उदय।

चार प्रमुख कांग्रेसी नेताओं– लोकमान्य गंगाधर तिलक, अरविन्द घोष, लाला लाजपत राय, विपिन चन्द्रपाल ने नये दल की नीतियों और ढंग को परिभाषित किया।

तिलक ने कहा– ''स्वराज मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा।'' उन्होंने कहा था– ''स्वराज अथवा स्वशासन, स्वधर्म के लिए आवश्यक है। स्वराज के बिना कोई सामाजिक सुधार नहीं हो सकते, न कोई औद्योगिक प्रगति, न कोई उपयोगी शिक्षा और न ही राष्ट्रीय जीवन की परिपूर्णता। यही हम चाहते हैं और इसी के लिए ईश्वर ने मुझे इस संसार में भेजा है।''

विपिन चन्द्र पाल ने इस दल की मांगों को इन शब्दों में व्यक्त किया– देश में नया सुधार नहीं, अपितु पुर्नगठन की आवश्यकता है। उनके अनुसार– "भारतीय लोग चालाक नहीं थे अतएव उन्होंने अपने शासकों के शब्दों पर विश्वास कर लिया। उन्हें यह कहा गया था कि भारतीय लोग अपने काम काज को स्वयं चलाने में समर्थ नहीं है। उन्हें यह कहा गया कि लोग निःशक्त है और सरकार शक्तिशाली। उन्हें यह कहा गया कि भारत मानवता के निम्न स्तर पर है और अंग्रेज इन अर्धबर्बर को सभ्य बनाने आए है। इन राष्ट्रवादी लोगों ने इन सभी कपटों का भण्डा फोड़ दिया। उन्होंने इस जादू के उल्टे मंत्र पाठ करने आरम्भ कर दिए और लोग जाग उठे और उन्हें अपनी शक्ति का आभास हो आया और अपनी संस्कृति में नया विश्वास उत्पन्न हो गया।"[1]

अरविन्द घोष के अनुसार– "राजनीतिक स्वतन्त्रता एक राष्ट्र का जीवन श्वास है। बिना राजनीतिक स्वतन्त्रता के सामाजिक तथा शैक्षणिक सुधार, औद्योगिक प्रसार, एक जाति की नैतिक उन्नति की बात सोचना मूर्खता की चरम सीमा है।"

लाला लाजपत राय के अनुसार– "जैसे दास की कोई आत्मा नहीं होती उसी प्रकार दास जाति की कोई आत्मा नहीं होती और आत्मा के बिना मनुष्य केवल एक पशु है। इसलिए एक देश के लिए स्वराज परम आवश्यक है और सुधार अथवा उत्तम राज्य इसके विकल्प नहीं हो सकते।"

उग्रवादियों की विचारधारा उदारवादियों से भिन्न थी। उग्र राष्ट्रवादियों का ब्रिटिश न्यायप्रियता में तनिक भी विश्वास नहीं था। लाला लाजपत राय ने स्वयं कहा था व्यापारियों का यह राष्ट्र ब्रिटेन केवल दबाव और शक्ति की

---

1. B.C. Pal : The spirit of Indian Nationalism, P.42.

भाषा समझता है। इन नेताओं का विचार था कि ब्रिटिश शासन में सुधार नहीं किया जा सकता। उसका केवल अन्त किया जाना चाहिये।

रामगोपाल ने लिखा है– "उग्रवादी भारत में सब प्रकार से मुक्त और स्वतन्त्र राष्ट्रीय शासन प्रणाली की स्थापना करना चाहते थे।"[1] उनका उदारवादियों के औपनिवेशिक स्वराज में विश्वास नहीं था, वे तो पूर्ण स्वराज की बात कहते थे।

विचारधारा ही नहीं, बल्कि साधनों की दृष्टि से भी उग्रवादी उदारवादियों से भिन्न थे। नेविल्स ने तिलक को यह कहते हुए उद्धत किया है कि– "अपने उद्देश्य के कारण नहीं वरन उसे प्राप्त करने के उपायों के कारण हमें उग्रवादियों की उपाधि मिली है।"[2] उग्रवादियों ने संवैधानिक साधनों को आत्म प्रंवचना मात्र माना। उनका तर्क था कि इंग्लैण्ड जैसे स्वतन्त्र और लोकतन्त्रात्मक देश में तो वैधानिकता के आधार पर परिवर्तन किए जा सकते है लेकिन भारत जैसे पराधीन राष्ट्र में संवैधानिक आन्दोलन के आधार पर स्वतन्त्रता प्राप्त करने का स्वप्न देखना स्वयं को ही धोखा देना है। उन्होंने संवैधानिक साधनों को "राजनीतिक भिक्षावृत्ति" की संज्ञा दी। लाला लाजपत राय ने कहा था– "एक अंग्रेज सबसे अधिक घृणा भिखारी से करता है। मेरा विचार है भिखारी है भी इस घृणा योग्य कि उससे घृणा की जाय। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम अंग्रेजों को दिखा दे कि हम भिखारी नहीं है। तिलक उग्रवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहते थे कि– "हमारा आदर्श दया याचना नहीं आत्मनिर्भरता है।" उग्रवादी सहयोग की नीति अपनाने के स्थान पर "निष्क्रिय प्रतिरोध" के कार्यक्रम को अपनाने के पक्ष में थे। उग्र राष्ट्रवादियों का साधन था– बहिष्कार, स्वदेशी,

---

1. रामगोपाल, भारतीय राजनीति, पृष्ठ 97
2. तिलक (Quoted by Nevinson, The New sprit in India). P.226.

राष्ट्रीय शिक्षा। उन्होंने स्वदेशी को स्वदेश के मुक्ति का मार्ग समझा। सांस्कृतिक दृष्टि से गुलाम बनाने वाली पाश्चात्य शिक्षा का विरोध कर राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का समर्थन किया। इसी उद्देश्य से तिलक ने दक्षिण शिक्षा समाज की स्थापना की।

बहिष्कार एवं स्वदेशी आन्दोलनों को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। कलकत्ता के ऐंग्लो इण्डियन समाचार पत्र ''दि इंग्लिश मैन'' ने लिखा है– ''यह बिल्कुल सत्य है कि कलकत्ता के गोदामों में कपड़ा इतना भरा हुआ है कि यह बेचा नहीं जा सकता। अनेक मारवाड़ी फर्मे नष्ट हो गई हैं और कई बड़ी से बड़ी यूरोपीय निर्यात दुकानों को या बन्द करना पड़ा है या उनका व्यापार बहुत ही मन्द गति पर आ गया है। बहिष्कार के रूप में राज के शत्रुओं ने देश में ब्रिटिश हितों पर कुठाराघात करने का अत्यन्त प्रभावशाली शस्त्र पा लिया है।''[1] कुछ क्षेत्रों में तो यह आन्दोलन इतना लोकप्रिय था कि इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता हे कि ''परीक्षार्थियों ने विदेशी कागज की कापियां छूने से इन्कार कर दिया। बच्चों ने विदेशी जूते पहनने या ज्वर में विदेशी दवा लेने से इन्कार कर दिया और विवाह में मिली ऐसी विदेशी भेंटे भी अस्वीकार की जाने लगी जो भारत में भी बन सकती थी।''[2]

बहिष्कार आन्दोलन ने भारतीय उद्योगों विशेष रूप से कपड़ा उद्योग को प्रोत्साहन दिया। कपड़ा बुनकर उद्योग को सहायता देने के लिए एक राष्ट्रीय कोष जमा किया गया जिसमें एस0एन0 बनर्जी को एक ही सार्वजनिक सभा में 70 हजार रूपये एकत्रित करने में सफलता प्राप्त हुई। बहिष्कार आन्दोलन का ही परिणाम था कि 1911 में बंगाल विभाजन रद्द कर दिया गया।

---

1. Quoted by A.R. Desai, Social Background of Indian Nationalism, P.308.
2- Surendra Nath Banerjee, A Nationa in the Making. P.196.

उग्र राष्ट्रवादी आंदोलन का मूल्यांकन :

उग्रवाद के उदय ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर गहरा प्रभाव छोड़ा उदारवादी यद्यपि देश से प्रेम करते थे लेकिन उनके द्वारा अपनाया गया साधन प्रभावशाली न था। उग्रवादियों ने इस बात को समझा और प्रभावशाली तथा रचनात्मक कार्यक्रमों को अपनाया। उनकी एक मुख्य देन यह थी कि उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को जनता तक पहुंचाया। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन के कार्य क्षेत्र को व्यापक बनाया। उन्होंने एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की योजना बनाई जो राष्ट्र द्वारा नियन्त्रित होने के साथ–साथ देश के हितों के अनुकूल हो तथा नवयुवकों में राष्ट्रीयता की भावना का संचार करो। उन्हीं के द्वारा चलाये गये आन्दोलन का परिणाम था कि सरकार ने 1909 में मार्ले मिण्टो सुधार पारित किया अन्यथा इन सुधारों को पारित होने में कुछ अधिक समय लग सकता था।

उग्रवादी नेता हर पल त्याग और कष्ट के लिए तत्पर थे। इन नेताओं की लोकप्रियता का प्रमाण इसी बात से लग जाता है कि जब 1908 मे तिलक को गिरफ्तार किया गया तो बम्बई की मिलों में व्यापक हड़ताल हुई जिसे लेनिन ने भारत के श्रमिक वर्ग की पहली राजनीतिक कार्यवाही बताया।

परन्तु इस आन्दोलन के कुछ प्रतिगमनात्मक पक्ष भी थे। यद्यपि उग्रवादियों ने राष्ट्रीयता की भावना का संचार करने के लिए धर्म का सहारा लिया लेकिन राजनीति के साथ धर्म का यह समन्वय निर्दोष नहीं था। इस समन्वय ने मुसलमानों में उदासीनता ला दी। ब्रिटिश शासन ने इस पक्ष का लाभ उठाया और मुस्लिम जनता के कान भरे। यही नहीं उन्होंने (ब्रिटिश सरकार) मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रखने के लिए मुस्लिम लीग के गठन को भी प्रोत्साहन दिया। साधारण मुस्लिम जनता ब्रिटिश शासन के इस बहकावे में आ गई और वह राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति उदासीन और कालान्तर में कुछ अंशों में विरोधी हो गयी। जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है– "उग्र राष्ट्रवाद सामाजिक रूप से निश्चितः प्रतिक्रियावादी था।"

असहयोग आन्दोलन

"अंग्रेजी सरकार शैतान है जिसके साथ सहयोग सम्भव नहीं। बिना स्वराज के पंजाब तथा खिलाफत की भूलों की पुनरावृत्ति को नहीं रोका जा सकता। अंग्रेज सरकार को अपनी भूलों पर कोई दुख नहीं है। अतः हम कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि नवीन व्यवस्थापिकाएं हमारे स्वराज का मार्ग प्रशस्त करेगी। स्वराज की प्राप्ति के लिए हमारे द्वारा प्रगतिशील अहिंसात्मक असहयोग की नीति अपनायी जानी चाहिये।"[1]

असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि :

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात दैनिक जीवन की जरूरतों के दाम तेजी से बढ़ गए थे जिससे आम जनता सबसे अधिक पीड़ित थी। आयात की मात्रा जो कि प्रथम युद्ध के दौरान घट गयी थी युद्ध के अन्त तक फिर बढ़ गयी। राजनीति के क्षेत्र में जब अंग्रेजों ने लोकतन्त्र के नए युग तथा जनता के आत्म निर्णय को लाने के वायदे को पूरा नहीं किया तो राष्ट्रवादियों को मोह भंग हुआ। इससे भारतीय जनता में अंग्रेज विरोधी भावनाएं तीव्र हो गयी। सरकार ने युद्ध काल के बाद भी आतंकवादी गतिविधियों पर नियन्त्रण रखने के लिए "रौलट एक्ट" बनाया। इस एक्ट के अनुसार किसी भी संदेहास्पद व्यक्ति को गिरफ्तार कर उसे मनमाने समय तक नजरबन्द रखा जा सकता था। 18 मार्च 1919 को रौलट एक्ट पारित हुआ जिसने मोतीलाल नेहरू के शब्दों में, "अपील, वकील और दलील की व्यवस्था का अन्त कर दिया।" इस समय तक राष्ट्रीय राजनीति के रंगमंच पर गांधी का आगमन हो चुका था। उन्होंने रौलेट एक्ट के विरूद्ध 'सत्याग्रह' करने का निश्चय किया। सरकार के अविवेकी रवैये ने 'जलिया वाला

---

1. 1920 के कलकत्ता अधिवेशन में महात्मा गांधी द्वारा रखे गये प्रस्ताव का एक अंश

बाग हत्याकांड' करवा दिया। इस घटना का राष्ट्र के मन और मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने 'सर' का खिताब छोड़ दिया। वायसराय की कार्यकारिणी के सदस्य शंकरन नायर ने मार्शल ला जारी रखने के विरोध में कार्यकारिणी से त्यागपत्र दे दिया। हत्याकांड की जांच के लिए गठित हंटर कमेटी ने इस हत्याकांड के लिए उत्तरदायी लोगों को बचाने की कोशिश की। यह जले पर नमक छिड़कने के समान था। प्रथम महायुद्ध के पश्चात ब्रिटिश सरकार ने भारत के मुसलमानों को टर्की के सुल्तान की स्थिति को बनाए रखने का आश्वासन दिया था लेकिन युद्ध के पश्चात वे इस वायदे से मुकर गये। इससे मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंची उन्होंने खिलाफत आन्दोलन शुरू करने का निर्णय लिया। महात्मा गांधी ने इस आन्दोलन का समर्थन किया और हिन्दू–मुस्लिम एकता के आधार पर ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध असहयोग आन्दोलन करने का निश्चय किया।

सितम्बर 1920 में कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ जिसमें गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव रखा। अनेक विरोधों के वावजूद यह प्रस्ताव भारी मत से स्वीकृत हो गया। दिसम्बर 1920 में नागपुर अधिवेशन में गांधी का प्रस्ताव पुनः भारी मत से स्वीकृत हुआ। अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास कर गांधी को शान्तिमय और अहिंसक आन्दोलन शुरू करने के समस्त अधिकारी दे दिए गये।

असहयोग आन्दोलन का कार्यक्रम तथा प्रगति :

असहयोग आन्दोलन का उद्देश्य ब्रिटिश भारत की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक मशीनरी को ठप्प करना था। आन्दोलन के प्रस्ताव के अनुसार इसके कार्यक्रम निम्नलिखित थे–

- सरकारी उपाधि एवं अवैतनिक सरकारी पदों को त्याग
- सरकार द्वारा आयोजित सरकारी एवं अर्द्धसरकारी उत्सवों का बहिष्कार
- स्थानीय संस्थाओं की सरकारी सदस्यता से इस्तीफा
- सरकारी स्कूलों एवं कालेजों का बहिष्कार
- आपसी विवादों को पंचायतों द्वारा निपटाना
- असैनिक श्रमिक और कर्मचारी वर्ग मेसोपोटामिया में जाकर नौकरी करने से इन्कार करें।
- विदेशी सामानों का बहिष्कार

आन्दोलन के दौरान अपनाये गये रचनात्मक कार्यक्रम निम्नलिखित थे–

- शराब का बहिष्कार
- हिन्दू मुस्लिम एकता तथा अहिंसा पर बल
- छूआ–छूत से परहेज
- स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग
- हाथ से कते या बुने खादी कपड़े का प्रयोग
- सविनय अवज्ञा करना, कर न देना।

आन्दोलन शुरू करने से पहले गांधी जी ने ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त कैसर–ए–हिन्द की उपाधि लौटा दी। अन्य लोगों ने भी गांधी के पद चिन्हों पर चलते हुए पदवियों एवं उपाधियों को त्याग दिया। आन्दोलन 1 अगस्त 1920 को आरम्भ हुआ था। विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए अनेक शिक्षण संस्थाएं जैसे काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, बनारस विद्यापीठ एवं अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी। वकालत का बहिष्कार करने वाले वकीलों में प्रमुख थे– बंगाल के देशबन्धु चितरंजन दास, मोतीलाल नेहरू,

जवाहर लाल नेहरू, बल्लभ भाई पटेल इत्यादि। मुस्लिम नेताओं में सर्वाधिक योगदान देने वाले नेता थे– डाक्टर अंसारी, मौलाना अबुल कलाम आजाद, शौकत अली, मुहम्मद अली। गांधी के आह्वान पर असहयोग आन्दोलन के खर्च की पूर्ति के लिए 1921 में 'तिलक स्वराज फण्ड' की स्थापना की गई जिसमें लोगों ने 1 करोड़ से अधिक रूपया जमा किया।

1919 के सुधार अधिनियम के उद्घाटन के लिए ''डयूक ऑफ कन्नौट'' के भारत आने पर विरोध एवं बहिष्कार कया। 1921 में यह आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष पर था। सरकार ने असहयोग आन्दोलन को कुचलने का हर सम्भव प्रयास किया। 4 मार्च 1921 को ननकाना के एक गुरूद्वारे में, जहां पर शान्तिपूर्ण ढंग से सभा का संचालन किया जा रहा था, पर सैनिकों द्वारा गोली चलाने से 70 लोगों की जानें गई। 1921 में रीडिंग के भारत के वायसराय बनने पर दमन चक्र कुछ और ही कड़ाई से चलाया गया। नवम्बर, 1921 में 'प्रिंस आफ वेल्स' के भारत आगमन का बहिष्कार किया गया। राजकुमार के इस अपमान का बदला लेने के लिए कठोर दमन नीति का सहारा लिया गया। परिणामस्वरूप स्थान–स्थान पर लाठी चार्ज मारपीट, गोलीकाण्ड आम बात हो गई। करीब 60000 लोगों को इस अवधि में बन्दी बनाया गया। इस बीच दिसम्बर 1921 में अहमदाबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जहां पर असहयोग आन्दोलन को तीव्र करने और सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने की योजना बनी। इस आन्दोलन की एक अन्य विशेषता थी– 'हिन्दू मुस्लिम एकता'। दुर्भाग्यवश 5 फरवरी 1922 को चौरी चौरा काण्ड हो जाने से गांधी ने 12 फरवरी 1922 को इस आन्दोलन को स्थगित करने का निर्णय लिया।

आन्दोलन के आकस्मिक स्थगन से अन्य नेताओं का अंसतुष्ट हो जाना स्वाभाविक था। मोती लाल नेहरू तथा लाजपत राय ने जेल से ही लम्बे

पत्र लिखकर गांधी को– "किसी एक स्थान के पाप के कारण सारे देश को दण्ड देने के लिए आड़े हाथों लिया।"[1] सुभाष चन्द्र बोस ने सामान्य भावना को व्यक्त करते हुए कहा– "ठीक उस समय जबकि जनता का उत्साह चरमोत्कर्ष पर था, वापस लौटने के आदेश दे देना राष्ट्रीय दुर्भाग्य से कम न था।"[2] आन्दोलन के स्थगित होने से हिन्दू–मुस्लिम एकता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

असहयोग आन्दोलन का मूल्यांकन :

असहयोग आन्दोलन का एक दुर्बल पक्ष राजनीति में धर्म का प्रवेश था। खिलाफत का प्रश्न एक धार्मिक प्रश्न था जिसका राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ समन्वय करना घातक था। इसका भारतीय समाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। राजनीति में धार्मिक कट्टरता प्रवेश कर गई जिसका परिणाम था हिन्दु–मुस्लिम एकता में तनाव। इसके अतिरिक्त जनमानस पर इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी अच्छा न था। बोस ने लिखा है– "एक वर्ष में स्वराज प्राप्त करने का वचन न केवल अविवेकपूर्ण बल्कि बालक सदृश भी था।"[3]

किन्तु इन आलोचनाओं के बाद भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि असहयोग आन्दोलन भारतीय स्वतन्त्रता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। इसने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक जन आंदोलन का रूप प्रदान कर दिया। जनता में त्याग और साहस की भावना प्रस्फुटित हुई। राष्ट्रीयता अब जन–जन की वस्तु बन चुकी थी। कूप लैण्ड ने लिखा है– "उन्होंने (गांधी जी) ने वह काम कर दिया जो तिलक भी न कर सके थे। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को

---

1. Dr. Pattabhi, History of the Congress, pp. 399-400
2. Subhash Chand Bose, Indian Struggle, P.208
3. Subhash Chand Bose, Indian Struggle, P.208

एक क्रान्तिकारी आन्दोलन और एक जन आन्दोलन के रूप में परिवर्तित कर दिया।"[1] कांग्रेस द्वारा अपनाए गये रचनात्मक कार्यक्रमों से देश को भारी लाभ हुआ। सुभाष चन्द्र बोस ने आन्दोलन की सफलताओं को स्वीकार करते हुए लिखा है– "1921 के वर्ष ने निःसन्देह एक सुव्यवस्थित दलीय संगठन प्रदान किया। इसके पूर्व कांग्रेस मुख्यतः एक वैधानिक दल और मुख्यतया बात करने वाली संस्था थी। महात्मा जी ने इसे नया विधान दिया और देश व्यापी बनाया। उन्होंने इसे एक क्रान्तिकारी संगठन के रूप में भी परिवर्तित कर दिया।"[2]

---

1. Coupland, Indian Restatement, P.119.
2. Subash Bose, Indian Struggle, P.112.

1923-1928 की भारतीय राजनीति

इस काल में भारतीय राजनीति में तीन महत्वपूर्ण घटनाएं हुई– प्रथम स्वराज दल की स्थापना, द्वितीय साइमन कमीशन, तृतीय सर्वदलीय सम्मेलन और नेहरू रिपोर्ट।

स्वराज दल :

असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के पश्चात कांग्रेस के नेताओं का उत्साह भंग हो चुका था। अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि 1919 के सुधारों के अन्तर्गत कांग्रेस को व्यवस्थापिका सभाओं में स्थान प्राप्त करना चाहिए या नहीं। कांग्रेस का बहुमत कौसिलों में प्रवेश करने के पक्ष में न था। परन्तु मोतीलाल नेहरू और चिरंजन दास इस निर्णय के विरूद्ध थे। उनका तर्क था कि वे कौसिलों में प्रवेश सरकार से सहयोग करने के लिए बल्कि असहयोग को कौसिलों तक ले जाने के लिए चाहते हैं। जब कांग्रेस इस तर्क से सहमत न हुई तब उन्होंने एक नवीन दल स्वराज दल की स्थापना 1 जनवरी 1923 को की और 1923 के चुनावों में भाग लिया। बाद में महात्मा गांधी और कांग्रेस भी स्वराज दल से सहमत हो गए और उन्होंने भी चुनावों में स्वराज दल का समर्थन किया। इस प्रकार यह दल कांग्रेस का एक अंतरंग बन गया।

1923 के चुनावों में इस दल को आशा से अधिक सफलता प्राप्त हुई। केन्द्र की विधानसभा की 101 सीटों में से उन्होंने 42 सीटें प्राप्त की। मध्य प्रान्त में इन्हें स्पष्ट बहुमत मिला। बम्बई, उत्तर प्रदेश और असम में भी उसके सदस्य प्रायः बहुमत में रहे। दुर्भाग्यवश 1925 में सी0आर0 दास के निधन और कुछ राजनीतिक घटनाक्रमों से इन्हें 1926 के चुनावों में अपेक्षित सफलता न मिल सकी। यद्यपि यह दल कोई महत्वपूर्ण कार्य न कर सका परन्तु तब भी भारतीय

राजनीति में उसका महत्व इसलिए है कि असहयोग आन्दोलन के पश्चात जनता में जनजागृति बनाये रखा तथा द्वैत शासन के दोषों को स्पष्ट किया। इसके अतिरिक्त गोलमेज परिषद की मांग, मुंडीमैन समिति की नियुक्ति और उसके दो वर्ष पश्चात भारतीय विधान में परिवर्तन के लिए ''साइमन कमीशन'' की नियुक्ति भी उसी की मांगों के परिणाम थे।

साइमन कमीशन :

1927 में शासन ने नवीन सुधारों की रूपरेखा का निर्माण करने के लिए एक पूर्ण श्वेत सदस्यों के कमीशन की नियुक्ति की जिसके अध्यक्ष सर जान साइमन थे। जिस कमीशन को भारत का भविष्य तय करना हो और उसमें एक भी भारतीय सदस्य न हो, यह निश्चय ही भारतीयों के लिए असम्मान की बात थी। 1 जनवरी 1928 में जैसे ही साइमन और उनके साथी भारत में आये विरोध शुरू हो गया। उस दिन सभी प्रमुख नगरों में हड़ताल रही, सामूहिक प्रदर्शन किये गये, काले झण्डे दिखाये गये। लाला लाजपत राय, पं0 जवाहरलाल नेहरू, गोविन्द बल्लभ पन्त को लाठियों की चोटे आयी। विपिन चन्द्र ने लिखा है– ''लखनऊ में खलीकुज्जमा ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। इस आयोग के सदस्यों के स्वागत का आयोजन कैसरबाग में तालुकेदारों ने किया। इस अवसर पर पतंगो और गुब्बारों को उनके ऊपर साइमन वापस जाओ लिखकर आकाश में तैरा दिया गया।''[1] इस कमीशन का विरोध करते हुए लाला लाजपत राय को लाठियों की भारी चोटें आई और नवम्बर 1928 में उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु का बदला लेने के लिए भगत सिंह तथा उनके साथियों ने गोरे पुलिस अधिकारी साण्डर्स की गोली मारकर हत्या कर दी।

---

1. विपिन चन्द्र– भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पेज–231

सविनय अवज्ञा आन्दोलन :

जिस समय साइमन कमीशन का पूरे देश में विरोध किया जा रहा था उसी समय सरदार बल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में वारदोली सत्याग्रह चल रहा था। इसी समय दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया गया और पंडित मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में एक समिति की नियुक्ति की गयी। इसका कार्य भारत के लिए एक संविधान की रूपरेखा का निर्माण करना था। इस समिति ने जो रिपोर्ट तैयार की उसे नेहरू रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है। इसमें सरकार से मुख्य रूप से ''डेमोनियन स्ट्टेस'' की मांग की गयी थी। सरकार से 31 दिसम्बर 1929 तक इस बात को स्वीकार कर लेने की मांग की गई। साथ ही यह भी कहा गया कि यदि सरकार इस मांग को स्वीकार नहीं करती तो कांग्रेस अपना लक्ष्य पूर्ण स्वराज घोषित कर देगी और उसकी प्राप्ति के लिए आन्दोलन प्रारम्भ करेगी। इस समय देश की राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति बहुत उत्तेजनापूर्ण थी। राजनीति में नवयुवक वर्ग अधिक सक्रिय था। विश्व के दूसरे देशों के साथ भारत भी आर्थिक मंदी का शिकार हुआ था। पोलाक के अनुसार– ''कृषि सम्बन्धी उपज के भाव 50 प्रतिशत से अधिक गिर गए थे और किसानों की हालत इतनी तंग थी कि वे एक गज कपड़ा और एक बोतल लैम्प का तेल भी नहीं खरीद सकते थे। सीदा सादा तथ्य यह था कि वे कर, ऋण और लगान अदा करने में असमर्थ थे।''[1]

इसी समय सरदार भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त के क्रान्तिकारी कार्यों और लाहौर षड़यन्त्र अभियोग के कारण भी भारत का राजनीतिक वातावरण अत्यन्त उत्तेजनापूर्ण हो गया था।

---

1. Palak, Mahatma Gandhi, P.173.

तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन ने गोलमेज परिषद का आयोजन करने और राजनीतिक बन्दियों को छोड़ने का आश्वासन मात्र दिया था जिससे कांग्रेस संतुष्ट न थी। 31 दिसम्बर 1929 को लाहौर के अधिवेशन में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव पारित कर दिया। इस अधिवेशन की अध्यक्षता जवाहर लाल नेहरू ने की थी और प्रत्येक 26 जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस मनाया जाना निश्चित हुआ।

कांग्रेस कार्यकारिणी की एक बैठक 14 से 19 फरवरी 1930 तक साबरमती में हुई। कांग्रेस कार्यकारिणी ने स्थिति का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया और एक प्रस्ताव पारित कर महात्मा गांधी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने का अधिकार दे दिया।

यद्यपि गांधी जी को कार्यकारिणी ने आन्दोलन प्रारम्भ करने के अधिकार दे दिए थे। किन्तु शान्ति और समझौते में विश्वास करने वाले गांधी जी ने वायसराय को एक और मौका दिया। अपने साप्ताहिक पत्र "यंग इण्डिया" के एक लेख में उन्होंने वायसराय से 11 मांगे प्रस्तुत की और यह आश्वासन दिया कि यदि सरकार इन मांगों को मान ले तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया जायेगा। लेकिन वायसराय द्वारा सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त न होने पर अब उनके सामने आन्दोलन प्रारम्भ करने के अलावा अन्य विकल्प नहीं था।

कांग्रेस की कार्यकारिणी ने गांधी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करने की आज्ञा प्रदान कर दी। 12 मार्च 1930 को गांधी ने अपने 78 समर्थकों के साथ दांडी के लिये पदयात्रा आरम्भ कर दी और 6 अप्रैल 1930 को दांडी पहुंचकर उन्होने स्वयं नमक तैयार किया। गांधी जी, पटेल, नेहरू आदि सभी नेता गिरफ्तार कर लिये गये। विभिन्न स्थानों पर भारतीयों ने नमक कर को तोड़ा, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया और शराब की दुकानें बन्द करायीं।

सरकार का भी दमन चक्र प्रारम्भ हो गया। इस आन्दोलन में खान अब्दुल गफ्फार खां और उनके समर्थक "खुदाई खिदमतगार" सबसे आगे रहे। आन्दोलन प्रारम्भ होने के एक माह के अन्दर ही 200 पटेल और पटवारियों ने त्याग पत्र दे दिया। अकेले दिल्ली में करीब 1700 महिलाएं शराब की दुकानों पर धरना देने के अपराध में गिरफ्तार की गयी। प्रदर्शनों और सार्वजनिक सभाओं को निर्दयतापूर्वक तितर–बितर किया जाने लगा। बेव मिलर ने लिखा है– "जमीन पीड़ा से कराहते हुये आदमियों से पट गयी थी। किसी का कन्धा टूट गया था और किसी की खोपड़ी। लोगों के सफेद कपड़े खून से तर थे। स्वयंसेवकों का अनुशासन आश्चर्यजनक था। लगता था कि उन्होने गांधी के अहिंसा को घोलकर पी लिया हो।"1

इस बीच सरकार ने ब्रिटेन में प्रथम गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया लेकिन कांग्रेस ने उसमें भाग नहीं लिया। दमन चक्र उसी प्रकार चलता रहा। परन्तु 1931 के आरम्भ में सरकार ने अचानक राजनीतिक कैदियों को छोड़ना प्रारम्भ कर दिया। इस बार तेज बहादुर सप्रू, डा0 जयकर तथा भोपाल के नबाव के प्रयत्नों से 5 मार्च 1931 को गांधी–इर्विन पैक्ट हो गया। इसमें सरकार ने यह वायदा किया कि हिंसात्मक अपराधियों के अतिरिक्त सभी राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायेगें। इधर गांधी जी की भी तरफ से यह आश्वासन दिया गया कि कांग्रेस द्वितीय गोल मेज परिषद में भाग लेगी।

यह समझौता भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। जिस पर परस्पर विरोधी मत प्रकट किये गये हैं। फिशर ने लिखा है– "एक राष्ट्र के नेता ने बराबरी के स्तर पर दूसरे राष्ट्र के नेता से वार्ता की और यह स्पष्ट हो गया कि इंग्लैण्ड द्वारा भारत पर गांधी जी की इच्छा के विरूद्ध शासन नहीं किया

---

1. Web Miller, Quoted by Tendulkar, Mahatma. Vol. III P.48.

जा सकता। परन्तु इस समझौते के विरोध में रजनीपामदत्त ने लिखा है– "कांग्रेस की मांगे पूरी न हुई यहां तक कि नमक कानून भी नहीं हटाया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया गया और कांग्रेस ने उस गोलमेज सम्मेलन में भाग लेना स्वीकार कर लिया। जिसका बहिष्कार करने की उसने शपथ ली थी। स्वराज्य की दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया।"[1]

---

1. Quoted by L.P. Sharma- Modern India, Page- 438

भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास

रिवोल्यूशन शब्द का हिन्दी अनुवाद क्रान्ति है। जिसका तात्पर्य है आकस्मिक परिवर्तन। इस प्रकार क्रान्ति का मूल तत्व परिवर्तन है। परन्तु प्रत्येक परिवर्तन को क्रान्ति नहीं कहा जा सकता, साधारण परिवर्तनों को क्रान्ति नहीं सुधार कहा जा सकता है। मौलिक परिवर्तनोंा के माध्यम से ही पुरानी प्रतिगामी सामाजिक व्यवस्था समाप्त की जा सकती है। क्रान्ति से जनता में रचनात्मक स्फूर्ति जागृत होती है और लोग सक्रिय रूप से सामाजिक जीवन के क्रियाकलापों में भाग लेते हैं। इससे सामाजिक विकास की गति तेज होती है। इसलिए कार्ल मार्क्स ने क्रान्ति के इतिहास को रेल का इन्जन कहा है।''

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के संदर्भ में क्रान्तिकारी आतंकवादी आन्दोलन की परिभाषा को विकृत रूप नहीं लेना चाहिये। वास्तव में यह एक तरीका था जिसका प्रयोग क्रान्तिकारियों ने साम्राज्यवादी हुकूमत के विरूद्ध लड़ने के लिये किया।

भारत में ब्रिटिश शासन के विरूद्ध जो राजनीतिक जागृति उत्पन्न हुई थी। वह कई धाराओं में विभक्त थी। इनमें सबसे कमजोर धारा अपनी मांगों को पूरा करने के लिये संवैधानिक साधनों में विश्वास रखती थी। दूसरी धारा अपेक्षाकृत मजबूत थी जो अंहिसात्मक संघर्ष की नीति में विश्वास रखाती थी लेकिन नवयुवकों का एक ऐसा भी वर्ग था जो इन दोनों विचारधाराओं के विपरीत हिंसा तथा आतंक के साधनों द्वारा ब्रिटिश शासन को समाप्त करने में विश्वास रखता था। नवयुवकों के इसी वर्ग ने भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात किया।

क्रान्तिकारी आन्दोलन के उदय के वही कारण थे जो उग्र राष्ट्रवाद के थे। अन्तर सिर्फ यह था कि आतंकवादी शीघ्र परिणाम चाहते थे। इसके अतिरिक्त अधिकांश क्रान्तिकारी तथा चिन्तनशील व्यक्तियों ने इतिहास की पुस्तकों का अध्ययन किया और उन्होने यह महसूस किया कि किसी वंश को संवैधानिक मार्ग या अहिंसात्मक संघर्ष द्वारा मुक्ति नहीं दिलायी जा सकती। अतः उन्होने देश को अंग्रेजी दासता की बेड़ियों से आजाद कराने के लिये हिंसा का रास्ता अख्तियार किया। ब्रिटिश शासन के दमनकारी कानूनों और उसके क्रियान्वयन से जनता से निरन्तर दुर्व्यवहार किया जा रहा था। सरकार जनता को आतंकित करने में कोई कसर नहीं छोड़ रही थी। अतः इन तरूण युवकों ने इसे अपने स्वाभिमान का प्रश्न मानकर ब्रिटिश शासन के विरूद्ध अस्त्र उठा लिया।

क्रान्तिकारी चाहते थे कि राष्ट्रीय जीवन के सभी तत्व जैसे धार्मिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रताएं नैतिक मूल्य तथा भारतीय संस्कृति सभी को विदेशी शासन से मुक्त किया जाये। यद्यपि भारत के भिन्न भिन्न भागों में क्रान्तिकारी राजनैतिक दर्शन का वर्णन करना सम्भव नहीं है। फिर भी भगत सिंह ने 4 जून 1929 को सेशन जज के सम्मुख जो बयान दिया था उसमें क्रान्तिकारी आन्दोलन के उद्देश्य बहुत कुछ मात्रा में स्पष्ट हो जाता है। उन्होने कहा था "क्रान्ति का अभिप्राय केवल बम एवं पिस्तौल नहीं है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है आज की वस्तु स्थिति और समाज व्यवस्था को जो स्पष्ट रूप से अन्याय पर आधारित है को बदला जाये। क्रान्ति व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण को समाप्त करने और हमारे राष्ट्र के लिये पूर्ण आत्म निर्णय का अधिकार प्राप्त करने हेतु है।"

साधनों में क्रान्तिकारियों का विश्वास था कि ब्रिटिश साम्राज्य को नष्ट करने के लिये पश्चिम के हिंसक साधनों का प्रयोग करना आवश्यक है। अतः उन्होने बम और पिस्तौल का प्रयोग किया। उन्होने तरूण लोगों में क्रान्तिकारी

विचारों को प्रोत्साहित किया और देश पर न्यौछावर हो जाने की भावना भरी। हथियार बांटे, हथियार चलाने का प्रशिक्षण दिया। गुप्त सभाएं बनायी। उन्होने यूरोपीय प्रशासकों की हत्या कर उनके मनोबल को कम करने तथा प्रशासन को ठप्प करने के भी प्रयास किये। उनके लिये हत्या करना, बैंकों, डाकघरों तथा रेलगाड़ियों को लूटना सब कुछ बैद्य था। भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन का अध्ययन दो चरणों में किया जाता।

प्रथम चरण (1897–1914)

द्वितीय चरण (1919–1932)

प्रथम चरण (1897-1914) :

बंगाल :

क्रान्तिकारी आतंकवादी गतिविधियों में बंगाल सबसे आगे था। यहां क्रान्तिकारी आन्दोलन को बंकिम चन्द्र चटर्जी की रचनाओं तथा स्वामी विवेकानन्द और अरविन्द घोष के वक्तव्यों से प्रेरणा मिली थी। यहां की प्रारम्भिक क्रान्तिकारी समितियों में अनुशीलन समिति प्रमुख थी। इसकी स्थापना वीरेन्द्र कुमार घोष और भूपेन्द्र नाथ दत्त के नेतृत्व में स्थापित की गई थी। इसी तरह की अन्य गुप्त संस्थाएं भी स्थापित की गई जैसे कि आत्योन्नति समिति, मायमेन सिंह की सुहृद समिति और साधना समिति, वारीसाल की स्वदेशी वाघव समिति और फरीदपुर की व्रती समिति। अनुशीलन समिति ने समाचार पत्र युगान्तर प्रकाशित किया जिसमें अंग्रेजों के विरूद्ध खुले सशस्त्र विद्रोह किये जाने का प्रचार किया। आर0सी0 मजूमदार के शब्दों मे– युगान्तर और संध्या जैसी नियकालिक पत्रिकाओं के जरिये उन्होने सशस्त्र विद्रोह करने का प्रचार किया।"[1]

---

1. R.C. Majumdar, Struggle for Freedom, P.169.

इन गतिविधियों से बंगाल में वातावरण उत्तेजनापूर्ण हो गया। 30 अप्रैल 1908 को बिहार के मुजफ्फरनगर जिले के प्रधान दण्ड नापक किंग्सफोर्ड की हत्या का प्रयास किया। उन पर तरूण लोगों को छोटे छोट अपराधों पर बड़ी–बड़ी सजाएं देने का आरोप था। बम फेंकने का जिम्मा खुदीराम बोस तथा प्रफुल्लचन्द्र चाकी को सौंपा गया था। गलती से यह बम श्री कैनेडी की गाड़ी पर जा लगा और इसमें दो महिलाओं की मृत्यु हो गयी। प्रफुल्ल चन्द्र चाकी ने तो आत्म हत्या कर ली पर खुदीराम बोस पकड़े गये। उन पर हत्या का मुकदमा चलाया गया और उन्हें फांसी दे दी गई। 18 वर्ष के इस बालक ने खुशी से गीता को हाथों में लेकर फांसी के फन्दे को चूम लिया तथा पूरे बंगाल के लिये राष्ट्रीय वीर तथा शहीद बन गया।

भारत सरकार अंग्रेजी अफसरों पर हमले से चिन्तित हो गई। इसके शीघ्र बाद अरविन्द घोष सहित युगान्तर समूह के 34 क्रान्तिकारियों को गिरफ्तार कर अलीपुर षड़यंत्र काण्ड में उन पर मुकदमा चलाया गया। मुकदमें की सुनाई के दौरान नरेन्द्र गोसाई जो सरकारी गवाह बन गये थे, कन्हाई लाल दत्त और सत्येन्द्र बोस ने गोली मारकर हत्या कर दी। अलीपुर षड़यंत्र केस में बरीन्द्र घोष को आजीवन कारावास की सजा हुई लेकिन अरविन्द घोष को उचित साक्ष्य के अभाव में रिहा कर दिया गया। आर0सी0 मजूमदार ने लिखा है– "यद्यपि वरीन्द्र को कोई स्पष्ट सफलता नहीं मिल सकी, पर बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन की एक सुदृढ़ नींव डालने और उसका एक निश्चित रूप तथा दिशा प्रदान करने का श्रेय उन्हीं को है। आन्दोलन का यह रूप और दिशा अन्त तक कायम रहे।"[1] पूर्ण स्वतंत्रता के लिये प्रयासरत क्रान्तिकारियों के लिय प्रथम विश्व युद्ध का छिड़ जाना एक स्वर्णिम अवसर था। 1915–16 में बंगाल में राजनैतिक डकैतिया तथा हत्याएं

---

1. R.C. Majumdar, Struggle for Freedom, P.169.

अपनी चरम सीमा तक पहुंच गयी। अधिकांश क्रान्तिकारी गुट, बाघा जतिन के नाम से प्रसिद्ध जतिन्द्र नाथ मुखर्जी के नेतृत्व में एक जुट हो गये। 9 सितम्बर 1915 को बालासोर में पुलिस द्वारा घेर लिये जाने पर भी जतिन ने मरते दम तक अत्यन्त वीरतापूर्वक मुकाबला किया। इन क्रान्तिकारियों की विशुद्ध वीरता तथा निःस्वार्थ शहादत ने उनके नाम की महिमा को बढ़ाया। इन्होने युवकों में देश प्रेम की भावना का संचार किया।

महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी आन्दोलन :

1918 के विद्रोह समिति की रिपोर्ट में कहा गया था कि भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन का आरम्भ सर्वप्रथम महाराष्ट्र में देखने को मिलता है। प्रारम्भिक आतंकवादी गतिविधियों में चापरेकर बन्धुओं–दोमोदर एवं बालकृष्ण द्वारा रैजु एवं एमर्स्ट नामक पुणे के दो कुख्यात अंग्रेज अधिकारियों की हत्या करना था। बाद में उन्हें गिरफ्तार कर मृत्यु दण्ड दे दिया गया। चापरेकर बन्धुओं का सम्बन्ध क्रान्तिकारी समिति हिन्दू धर्म संघ से था। तिलक की प्रेरणा से गठित आर्य बान्धव समिति एक अन्य क्रान्तिकारी संस्था थी। उन्होने 15 जून, 1897 के 'केसरी' में लिखा था– "श्री कृष्ण का गीता में यह उपदेश है कि अपने गुरूजनों तथा बन्धुओं की भी हत्या कर दो। यदि कोई व्यक्ति कर्म फल की इच्छा के बिना अथवा कर्म में लिप्त न होकर, कर्म करता है तो उसे कोई दोष नहीं लगता– ईश्वर ने विदेशियों को भारत का साम्राज्य तामपत्र पर लिखकर नहीं दिया है.... अपनी दृष्टि को कूप मण्डूप की नाई सीमित मत करो..... दण्ड संहिता की परिधि से बाहर आओ तथा श्रीमत भगवत गीता के उत्तम वातावरण में प्रवेश करो तथा महान आत्माओं के कार्यों का ध्यान करो।"[1] महाराष्ट्र के क्रान्तिकारी संघों में अभिनव भारत का प्रमुख स्थान था जिसकी स्थापना 1904 में बी0डी0 सावरकर ने

---

1. तिलक, केसरी (Quted by B.L. Grover, P. 434).

की थी। इसकी संस्थाएं महाराष्ट्र और मध्य प्रान्त के कई इलाकों में सक्रिय थी। इस संस्था के मुख्य सदस्य अनन्त लक्ष्मण करकरे ने नासिक के जिला मजिस्ट्रेट जैक्सन की हत्या कर दी। इस हत्याकांड से जुड़े लोगों पर नासिक षड़यंत्र केस के तहत मुकदमा चलाया गया जिसमें सावरकर के भाई गणेश भी शामिल थे। उन्हें आजीवन कारावास की सजा दी गई।

पंजाब :

पंजाब में क्रान्तिकारी आन्दोलन का उदय बार-बार पड़ने वाले अकाल तथा भू-राजस्व एवं सिंचाई करो में वृद्धि के परिणामस्वरूप हुआ। यहां पर अजीत सिंह, सूफी अंबा प्रसाद, लाला लालपतराय जैसे नेताओं ने आतंकवाद को प्रोत्साहन किया। अमेरिका में गदर पार्टी की स्थापना के पश्चात पंजाब क्रान्तिकारी गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बन गया। अजीत सिंह तथा अम्बा प्रसाद ने भारत माता सोसाइटी नामक संस्था गठन किया। कुछ समय पश्चात असन्तोष इतना अधिक बढ़ गया कि विद्रोह की एक व्यापक योजना बनाई गई। दुर्भाग्यवश सरकार को इस षड़यंत्र का पता लग गया। अजीत सिंह और लाला लालपतराय गिरफ्तार कर लिये गये। अजीत सिंह को छैः महीने का कारावास मिला और वे छूटकर लौटे तो फ्रांस चले गये। लाजपत राय को दण्ड देकर 6 वर्ष के लिये माण्डले जेल भेज दिया गया।

संयुक्त प्रान्त तथा दिल्ली में भी क्रान्तिकारी गतिविधियां सक्रिय रही। इन क्षेत्रों में क्रान्तिकारियों को संगठित करने का कार्य रास बिहारी बोस ने किया। उनके अन्य साथी शचीन्द्र सन्याल, लाला हनुमन्त राव तथा मास्टर अमीर चन्द्र। इन लोगों ने दिसम्बर 1912 में, वायसराय लार्ड हार्डिंग पर दिल्ली में बम फेंका। परन्तु वायसराय बच गये। क्रान्तिकारियों की धरपकड़ शुरू हो गई। रासबिहारी बोस भाग गये। किन्तु उनके साथी पकड़े गये और उन्हें फांसी दे दी

गई। इस प्रकार राजस्थान में क्रान्ति की दिशा में पहल अर्जुन सेठी, बरहत केशरी सिंह और उनके पुत्र प्रताप सिंह और खरका के ठाकुर राव गोपाल सिंह ने की थी।

विदेशों में क्रान्तिकारी आन्दोलन :

भारत के बाहर भी क्रान्तिकारी गतिविधियों का प्रसार हुआ। भारत से बाहर गये क्रान्तिकारी ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, अफगानिस्तान तथा जर्मनी में सक्रिय हुये। विदेशी धरती पर स्थापित सबसे पुरानी क्रान्तिकारी संस्था इण्डियन होमरूल सोसाइटी थी जिसकी स्थापना श्याम जी कृष्ण वर्मा ने 1905 में की थी। इसे इण्डिया हाउस के नाम से भी जाना जाता है। इसके प्रमुख सदस्यों में वी०डी० साबरकर, हरदयाल, मदनलाल ढींगरा आदि थे। इस संस्था का प्रमुख उद्‌देश्य भारत के लिये स्वशासन प्राप्त करना था। इस संस्था ने ''इण्डियन सोसिआलाजिस्ट'' नामक पत्रिका निकाली। उन्होने विदेश आने वाले योग्यता प्राप्त भारतीयों के लिये एक–एक हजार रूपये की 6 फेलोशिप भी आरम्भ की। शीघ्र ही यह संस्था लन्दन में रहने वाले भारतीयों के लिये आन्दोलन का एक केन्द्र बन गई। इण्डिया हाउस के सदस्य मदनलाल ढींगरा ने 1 जुलाई 1909 को भारत सचिव के राजनीतिक सलाहकार विलियम हट कर्जन बाइली की गोली मारकर हत्या कर दी। शीघ्र ही ढींगरा को फांसी पर लटका दिया गया। भारत के कई नेताओं– वी०सी०पाल, सुरेन्द्र नाथ वनर्जी, गोखले इत्यादि ने ढींगरा की कड़े शब्दों में निन्दा की मगर कई अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने उनकी प्रशंसा की।[1] आयरलैण्ड के अखबारो ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये लिखा– ''मदनलाल ढींगरा को, जिन्होने अपने देश की खातिर अपना जीवन न्यौछावर कर दिया,

---

1. See in "Revolution any Movement in the Punjab"- Published in Teaching Politics, Vol II, No. 324, 1976.

आयरलैण्ड अपनी सच्ची श्रद्धांजलि व्यक्त करता है। डब्लू.एस.ब्लण्ट ने अपनी डायरी में लिखा है– "लोग इसे राजनैतिक हत्या कहते हैं जबकि ऐसा कहना उनकी ही लक्ष्य–सिद्धि के लिये घातक है पर यह बकवास है। यह तो बस स्वार्थी शासकों को इस बात कर विश्वास दिलाने के लिये चौंका देने वाली कार्यवाही थी कि स्वार्थ में भी निर्लज्जता की एक सीमा होती है। यह बात इस कपोल कल्पना जैसी ही है कि मानो कोई कहे कि इंग्लैण्ड ने झापड़ पड़ने पर ही माफी मांगी, इससे पहले नहीं।"[1] श्याम जी कृष्ण वर्मा की ही एक अन्य सहयोगी मैडम भीकाजी रूस्तम के0आर0 कामा जिन्हें Mother of Indian Revolution भी कहा जाता है, ने 1902 में भारत के स्वतंत्रता का संदेश यूरोप के विभिन्न देशों तथा अमेरिका आदि में प्रचार के लिये भारत को छोड़ दिया। 1907 के स्टुटगार्ट (जर्मनी) में होने वाले "द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस" के सम्मेलन में उन्होने भारतीय प्रतिनिधि के रूप में हिस्सा लिया। इस सम्मेलन में उन्होने ब्रिटिश शासन के दुष्परिणामों के बारे में विचारोत्तेजक भाषण दिया। उन्होने इस सम्मेलन में ही पहली बार हरा, पीला और लाल रंग के राष्ट्रीय झण्डे को फहराया। इसी प्रकार राजा महेन्द्र सिंह ने जर्मनी के सहयोग से अफगानिस्तान के काबुल नगर में दिसम्बर 1915 को अतरिम भारत सरकार की स्थापना की।

गदर पार्टी (1913) –

इस दल की स्थापना लाला हरदयाल ने 1 नवम्बर 1913 को अमरिका के सेन फ्रासिस्को नगर में की थी। रामचन्द्र तथा वरकतुल्लात ने उनकी इस दल की स्थापना में अपना सहयोग किया। लाला हरदयाल इस संस्था के मनीषी पथ–प्रदर्शक थे। वहां उन्होने गदर नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। जो अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, मराठी और गुरूमुखी में था। इसके अंकों में शस्त्र कैसे धारण

---

1. **W.S. Blunt, My Dairies, Part II, P. 228.**

करें, बगावत करने तथा अंग्रेज अधिकारियों की हत्या के लिये प्रोत्साहित करने वाली कविताओं का प्रकाशन होता था। इस आंदोलन ने अमेरिका में भारतीय स्वतंत्रता को जागृत करने में महत्वपूर्ण भाग लिया। 1915 में इस दल के सदस्यों ने भारत पहुंचकर पंजाब में सशस्त्र विद्रोह का प्रयत्न किया। दुर्भाग्यवश सरकार को सूचना प्राप्त हो जाने के कारण यह योजना असफल हो गई। इसके सदस्य करतार सिंह सराभा, विष्णु पिंगले इत्यादि गिरफ्तार कर लिये गये। रास बिहारी बोस भाग गये। सरकारी अत्याचार के कारण कई और सदस्यों ने पार्टी की कई गुप्त वातों और विद्रोह की योजना के बारे में बता दिया। अगस्त 1915 तक बहुत से गदर नेता कैद कर लिये गये।[1]

अंग्रेजी सरकार ने स्थिति से निपटने के लिये 1907 में राजद्रोह सभाओं को रोकने का अधिनियम (The Prevention of Seditions meetings Act 1908) का विस्फोटक पदार्थ अधिनियम (Explosive Substances Act), भारतीय फौजदारी कानून संशोधन अधिनियम, 1908 का समाचार–पत्र (अपराधों के लिये प्रोत्साहन) अधिनियम 1910 का समाचार पत्र अधिनियम तथा अन्य भिन्न भिन्न अधिनियमों को मिलाकर 1915 के भारत रक्षा अधिनियम (Defence of India Rules) बना दिये।

प्रथम विश्व युद्ध के अन्त पर इन क्रान्तिकारी गतिविधियों में कुछ काल के लिये विराम आया, सरकार ने भारत रक्षा अधिनियमों के अधीन पकड़े राजनैतिक बन्दी छोड़ दिये। दूसरे, भारत सरकार अधिनियम 1919 द्वारा दिये गये सुधार लागू किये और एक अनुरंजन का वातारवरण बना। इसके अलावा गांधी राष्ट्रीय नेता के रूप में सामने आये और भारत को स्वतंत्र करवाने का बीड़ा उठाया। इन सभी कारणों से क्रान्तिकारी गतिविधियों में कुछ धीमापन आया।

---

1. F.C. Isemonger and J. Stallery, An Account of the Gadar Conspiracv.

क्रान्तिकारी और आतंकवादी आन्दोलन (द्वितीय चरण)

1922 के बाद असहयोग आन्दोलन के स्थगन और देश में किसी भी प्रकार की राजनीतिक गतिविधि के अभाव से बहुत क्षमतावान राष्ट्रवादी युवकों का मोह भंग हो गया। ये गांधी के नेतृत्व और अहिंसात्मक संघर्ष की रणनीति से भी असंतुष्ट थे। ये रूस, चीन, आयरलैण्ड, तुर्की, मिश्र आदि में कही होने वाले क्रान्तिकारी आन्दोलनों और विद्रोह से अनुप्राणित होकर हिंसात्मक माध्यम से ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेकने के लिये प्रयासरत थे। युगान्तर और अनुशीलन समितियों आदि जैसे पुरानी क्रान्तिकारी समितियो का पुनः प्रादुर्भाव हुआ। क्रान्तिकारी नेताओं ने जिनका प्रादुर्भाव उत्साही तथा निराश असहयोगियों के समूह द्वारा कुछ नये क्रान्तिकारी संगठनों की स्थापना की गयी। पंजाब, दिल्ली, संयुक्त प्रान्त तथा बंगाल इस पुनजीर्वित क्रान्तिकारी आन्दोलन के मुख्य केन्द्र बन गये।

उत्तर भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन :

इस चरण के क्रान्तिकारी आन्दोलन का स्वरूप कुछ भिन्न था। नौजवान सभा ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसकी स्थापना 1926 में भगत सिंह, छवीलदास और यशपाल आदि युवकों ने की थी। इस चरण के क्रान्तिकारियों में सचीन्द्र सन्याल, रामप्रसाद विस्मिल तथा चन्द्रशेखर आदि का नाम उल्लेखनीय है। सन्याल ने अपनी पुस्तक ''बंदी जीवन'' में अनेक युवाओं को क्रान्ति के प्रति आकर्षित किया। अक्टूबर 1924 में इन क्रान्तिकारियों ने कानपुर में एक संस्था ''हिन्दुस्तान रिपब्लिकिन एसोसिएशन'' की स्थापना की जिसका उद्‌देश्य सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा ब्रिटिश सत्ता को समाप्त कर एक संघीय गणतन्त्र की स्थापना करना था जिसे संयुक्त राज्य भारत कहा जाये। 1928 में यह संगठन

"हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपलब्लिकन एसोसिएशन" के रूप में तब्दील हो गया। इसमें क्रान्तिकारियों ने पहली बार आजादी के बाद समाजवादी राज्य स्थापित करने की घोषणा की। इसके घोषणा पत्र में लिखा था– "आतंकवाद पूर्ण क्रान्ति नहीं है और क्रान्ति आतंकवाद के बिना पूर्ण नहीं होती। आतंकवाद शोषण कर्ताओं के दिल में डर बैठा देता है, यह शोषित जनता के मन में बदला लेने और मुक्ति की आशाएं जगा देता है और यह डावाडोल मनः स्थिति वालों में साहस और आत्म विश्वास भर देता है। यह शासन वर्ग की श्रेष्ठता के जादू को तोड़ डालता है और दुनिया की नजरों में आम जनता की हैसियत को ऊंचा उठा देता है क्योंकि यही राष्ट्र को स्वतंत्र कराने की लालसा का सबसे अधिक विश्वासोत्पादक प्रमाण है।"[1]

मगर इन लोगों का विश्वास था कि आतंकवाद क्रान्ति में बदल जाये। इनका नारा था– "हम दया की भीख नहीं मांगते हैं। हमारी लड़ाई आखिरी फैंसला होने तक की लड़ाई है– यह फैंसला है जीत या मौत।"[2]

इस संगठन ने 9 अगस्त, 1925 को उत्तर रेलवे के लखनऊ सहारनपुर संभाग के काकोरी नामक स्थान पर 8 डाउन ट्रेन पर डकैती डालकर सरकारी खजाने को लूट लिया। यह घटना काकोरी काण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुई। सरकार ने समूचे षड़यंत्र का पता लगाकर 29 लोगों को गिरफ्तार किया। इस काड में रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला, रोशन लाल, राजेन्द्र लहड़ी आदि पर मुकदमा चलाकर फांसी दे दी गयी। काकोरी काण्ड क्रान्तिकारियों के लिये एक आघात अवदूत था। परन्तु ऐसा नहीं था कि इस आन्दोलन की मौत हो गई हो। अक्टूबर 1928 में साइमन कमीशन के विरोध के समय लालाजी पर

---

1. Ajai Kumar Ghose, Articles and Speeches (Moscow, 1962), P. 16
2. H.S. RA Manifesto, Freedom unit tiles No. R-3-35 and R-11, P.6

लाठियों से प्रहार करने वाला सहायक पुलिस अधीक्षक साडर्स को भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद ने गोलियों से भून डाला। इसके बाद एच.एस.आर.ए. ने विभिन्न स्थानों पर पोस्टर लगाएं जिस पर लिखा था– "लाखों लोगों के चहेते नेता की एक सिपाही द्वारा मौत पूरे देश के लिये अपमान था। इस अपमान का बदला लेना भारतीय युवकों का कर्तव्य था। सांडर्स की हत्या का दुःख हमें भी है, परन्तु वह उस अन्यायी व्यवस्था का अंग था जिसे समाप्त करने का हम प्रयत्न कर रहे हैं।"

H.S.R.A. के दो सदस्यों भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने 8 अप्रैल 1929 को केन्द्रीय विधानमण्डल में जिस समय ट्रेड डिसप्यूट बिल और सेफ्टी बिल पर बहस चल रही थी, बम फेंका। जिसका उद्देश्य सरकार को डराना मात्र था यह एक मामूली बम था। इन लोगों ने सदन के भीतर जो पर्चे फेंके उस पर लिखा था– "बहरे कानों तक अपनी आवाज पहचानने के लिए।" इन क्रान्तिकारियों ने नारा लगाया– क्रान्ति जिन्दाबाद, साम्राज्यबाद मुर्दाबाद। जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है कि "यह बम देशवासियों का ध्यान आकर्षित करने के लिये एक बहुत बड़ा धमाका था।"[1] बम का उद्देश्य अपने को गिरफ्तार करवाना था ताकि वे अदालतों के माध्यम से अपने विचारों का प्रचार कर सकें और जनता को अपने राजनीतिक दर्शन से परिचय करा सकें।

चूंकि विधान सभा पर बम फेंकने के आरोप में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। अतः इस काण्ड को लाहौर हत्याकांड से जोड़ दिया गया। भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरू को इस प्रकरण में 23 मार्च 1931 को फांसी दे दी गई। फांसी के तख्ते पर ये नौजवान क्रान्तिकारी गा रहे थे।

---

1. Jawahar Lal Nehru, Glimpses of World History (Bombay 1965),P.65

''दिल से निकलेगी न मरकर भी वतन की उल्फत,

मेरी मिट्‌टी से भी खुशबू–ए–वतन आएगी ।

इनकी मौत की खबर सुनकर पूरा देश रोया। गांधी ने भगत सिंह के देशभक्ति की सराहना की और स्पष्ट रूप से कहा– ''हमारे मस्तक भगत सिंह की देशभक्ति, बलिदान तथा साहस के आगे झुक जाते हैं।'' 18 अगस्त 1929 को कांग्रेस ने समस्त भारत में राजनैतिक पीड़ितों का दिन मनाया। चन्द्रशेखर आजाद फरवरी 1931 में इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में एक पुलिस मुठभेड़ में बचाव का कोई रास्ता न देखकर खुद को गोली मार ली।

बंगाल के नए क्रान्तिकारी संगठनों में सूर्यसेन द्वारा स्थापित ''इण्डियन रिपब्लिकन आर्मी'' का विशिष्ठ स्थान था। सेन ने असहयोग आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया था। आगे चलकर वह एक राष्ट्रीय स्कूल के शिक्षक बन गये और इसलिये वह सामान्यतः ''मास्टर दा'' के रूप में प्रसिद्ध थे।

सेन ने क्रान्तिकारियों के अपने गुट के साथ मिलकर नियमित सैनिक संगठन बना लिया। इसके पश्चात अप्रैल 1930 को उन्होने अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध की घोषणा करते हुये इण्डियन रिपब्लिकन आर्मी के नाम से एक घोषणा पत्र जारी किया। उनके नेतृत्व में इस दल के सदस्यों ने चटगांव में पुलिस शस्त्रागार पर हमला कर दिया और सशस्त्रागार लूटकर हथियारों पर कब्जा कर लिया। इसके तत्काल वाद ही भारत की एक अस्थायी स्वतंत्र सरकार का गठन किया जिसके राष्ट्रपति सूर्यसेन थे।

इस हमले के उपरान्त बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियों में तेजी आई। दो क्रान्तिकारियों ने बंगाल के कारागार महानिरीक्षक के कार्यालय में ही गोली मारकर उनकी हत्या कर दी। दिसम्बर 1931 में कोमिल्ला की दो स्कूली

छात्राओं शांतिघोष और सुनीता चौधरी ने एक जिलाधिकारी को गोली मारकर उसकी हत्या कर दी। फरवरी 1932 में बीनादास ने दीक्षात समारोह में उपाधि ग्रहण करने के समय बहुत नजदीक से गवर्नर पर गोली चलाई। दिसम्बर 1932 में ही एक युवा महिला क्रान्तिकारी प्रीतिलता बाडेकर ने क्रान्तिकारियों के समूह के साथ मिलकर चटगांव पहाड़तली के रेलवे संस्थान पर हमला कर दिया। इसमें वे गंभीर रूप से घायल हुई और गिरफ्तारी से बचने के लिये आत्महत्या कर ली।

यहां पर प्रश्न उठना सहज स्वाभाविक है कि क्या ये क्रान्तिकारी विद्रोही अथवा समाज विरोधी तत्व थे। इसका सीधा उत्तर होगा नहीं। अंग्रेजों ने इन्हें हत्यारे, डाकू या लुटेरे की संज्ञा दी परन्तु अंग्रेज प्रशासकों का ऐसा कहना स्वाभाविक था क्योंकि इन क्रान्तिकारियों का लक्ष्य भारत से अंग्रेजी शासन को समाप्त करना था, चाहे इसके लये बम और पिस्तौल का ही प्रयोग क्यों न किया जाये। इन्हें क्रान्तिकारी कहना ही अधिक उचित है क्योंकि इनका मूल उद्देश्य एक वास्तविक क्रान्ति को जन्म देना था। ये क्रान्तिकारी भारत से उस अंग्रेजी शासन को समाप्त करना चाहते थे जो अन्याय एवं शोषण पर आधारित था। इनका मूल उद्देश्य बम या पिस्तौल की संस्कृति नहीं थी। बम और पिस्तौल तो इनके लिये आवश्यकतानुसार अपनाये गये साधन थे। ये भारत को अंग्रेजी दासता की बेड़ियों से मुक्त कराकर एक सच्चे लोकतंत्र (यूनाइटेड स्टेट्स आफ इण्डिया) की स्थापना करना चाहते थे जिसमें साधारण जनता, किसानों, मजदूरों का हित निश्चित हो। उन्होने उन्हीं यूरोपीय प्रशासकों की हत्या की या फिर हत्या करने का प्रयत्न किया जिन्होने मानवीयता से नीचे गिरकर भारतीय जनता पर अत्याचार किया था। इन्होने बर्बर प्रशासकों को मारकर राष्ट्रीय अपमान का बदला लिया और आत्म सम्मान को बनाए रखा।

क्रान्तिकारी आन्दोलन की विफलता के कारण :

यद्यपि क्रान्तिकारियों ने राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में उल्लेखनीय योगदान दिया पर ये लोग अपने मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रहे। इसकी विफलता का एक मुख्य कारण यह था कि इनमें एक केन्द्रीय संगठन का अभाव था। केन्द्रीय संगठन के अभाव में इन क्रान्तिकारियों में परस्पर सहयोग, समन्वय तथा सम्बन्ध स्थापित न हो सका। यह आन्दोलन केवल शिक्षित नवयुवकों को ही प्रभावित कर सका। इसे जनसाधारण विशेष तौर पर सहयोग नहीं मिल सका। इसके अतिरिक्त साम्राज्यवादी हुकूमत ने इन क्रान्तिकारियों के प्रति अत्यन्त कठोर नीति का अवलम्बन किया। 1907 में सभाएं करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और 1908 में विद्रोही सभा अधिनियम भी पारित किया गया। 1911 में राजद्रोहात्मक सभा निवारण अधिनियम पारित किया गया। क्रान्तिकारियों पर अभियोग चलाते हुये ऐसे जूरी की व्यवस्था की गयी जिसमें यूरोपीय सदस्यों का बहुमत होता था। उनके पास अस्त्र शस्त्र का भी अभाव था। जिसके कारण उन्हें बहुत कठिनाई पड़ती थी और गुप्त रूप से कार्य करना पड़ता था। इन सब कारणों से यह आन्दोलन अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल न हो सका।

क्रान्तिकारी आन्दोलन का मूल्यांकन :

यद्यपि यह आन्दोलन अपने लक्ष्य की पूर्ति में असफल रहा परन्तु तब भी इसने राष्ट्रीय आन्दोलन में अपूर्व योगदान दिया। कांग्रेस का अहिंसात्मक आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आन्दोलन ने आजादी की लड़ाई में एक दूसरे का पूरक होकर कार्य किया। इन्होने समूचे देश को झकझोर दिया। इन्होने युवकों को देश प्रेम और निष्ठा, त्याग और बलिदान का पाठ पढ़ाया, केवल उपदेशों के द्वारा ही नहीं अपितु इसका उदाहरण प्रस्तुत करके भी इन्होने हंसते हंसते फांसी के फन्दे को चूम लिया और राष्ट्र पर सब कुछ न्यौछावर कर देने की भावना का

संचार किया। एम0एन0 दास ने लिखा है'– ''कांग्रेस ने सरकार को चितातुर बना दिया था परन्तु असली समस्याएं अराजकतावादियों ने ही खड़ी की। यदि उनकी एक के बाद एक लहर आती ही चली जाती तो इस उपमहाद्वीप पर बिखरे हुये मुटठी भर अंग्रेज इन अराजकता वादियों के हमले को अधिक समय तक नहीं रोक पाते और आजादी वास्तव में जिस समय मिल सकी उससे बहुत पहले मिल गई होती।''1 परन्तु सरकार की दमनकारी नीति के कारण ऐसा न हो सका। जन साधारण ने भले ही प्रत्यक्ष रूप से क्रान्तिकारियों के कार्यों का समर्थन नहीं किया पर अन्दर ही अन्दर उन्हें भी इन क्रान्तिकारियों के प्रति सहानुभूति थी। खुदीराम बोस को जिस दिन फांसी दी गयी थी उस दिन बंगाल के पूरे घर में शोक मनाया गया। भगत सिंह की फांसी की खबर सुनकर हजारों ओंखे रोई। इन्हीं क्रान्तिकारियों के भय से सरकार ने अनेक राजनीतिक भागो को स्वीकार कर लिया। राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष में इनका योगदान अमूल्य है। इनकी भूमिका पर टिप्पणी करते हुये विपिन चन्द्र ने लिखा है– ''राष्ट्रवाद के उद्देश्य के बजह से ही क्रान्तिकारियों को देश को जागृत करने और अपने देशवासियों का प्यार और आदर प्राप्त करने में सफलता मिली। यह कोई मामूली सफलता नहीं थी पर इस सफलता का लाभ परम्परागत कांग्रेसी नेताओं ने बटोर लिया जबकि क्रान्तिकारियों ने उन्हें बुर्जुआ और मध्य वर्ग कहकर उनकी निंदा की थी और यह आशा की थी कि उनका स्थान कोई नई शक्ति लेगी।''2 आज भी भारत की आजादी के लिये लड़ने वाले ये क्रान्तिकारी उन शहीदों के रूप में याद किये जाते हैं। जिन्होने मातृभूमि के लिये अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया।

---

1. M.M. Das, Quted by Staya Rai, Nationalism in India, p. 141.
2. Bipin Chandra, "Ideological Development of the Revolutionary Terrorists in the 1920's". Nationlaism and Calonialism in Morthern India (New Delhi), PP 243-44.

शहीदों की चिताओं पर लगेगें हर बरस मेले,

बतन पर मरने वालों का यही नामों निशा होगा ।

इनका अनन्य राष्ट्रप्रेम, अदम्य साहस, अटूट प्रतिबद्धता और गौरवमय बलिदान भारतीय जनता के लिये प्रेरणा स्रोत बने।

****

भगत सिंह की पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं प्रारम्भिक जीवन

(1907 – 1922)
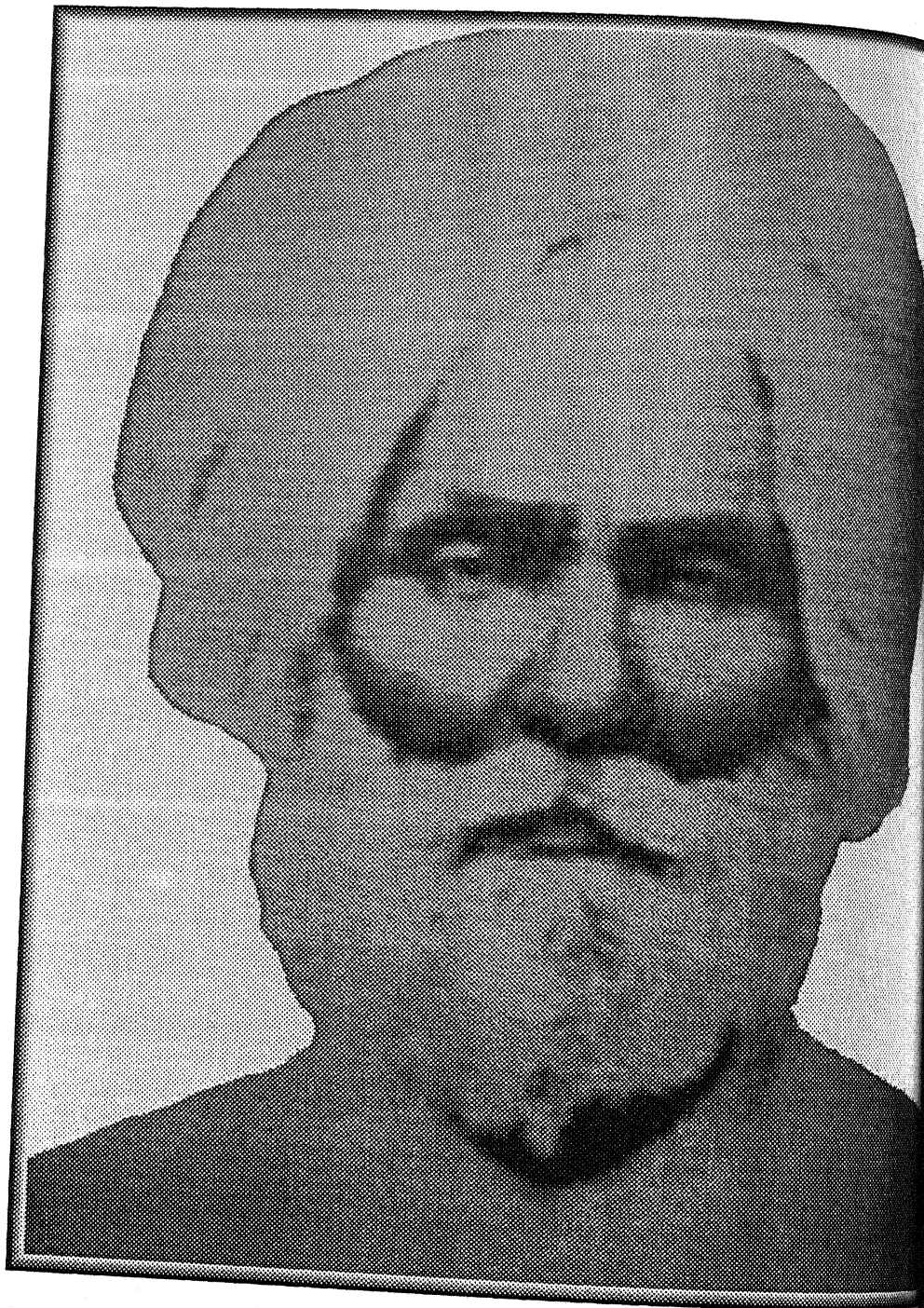
सरदार अर्जुन सिंह

पारिवारिक पृष्ठभूमि

भगत सिंह के बाबा सरदार अर्जुन सिंह :

"पंजाब की उर्वरभूमि ने जहां तलवारों के धनी शूरवीरों को जन्म दिया, वहां उसे महान चिन्तकों, विचारकों, सिद्धान्तकारों, कवियों और कलाकारों की जननी होने का भी गौरव प्राप्त है।"[1]

मनुष्य का व्यक्तित्व विकास प्रिय होता है। यह विकास स्वाधीनता से ही सम्भव है। इसलिये पराधीन राष्ट्र के मन में स्वाधीनता की भावना का अंकुरित होना स्वाभाविक है। उसे किसी भी दमन से मिटा देना सम्भव नहीं। देशभक्ति और स्वाधीनता की भावना को मिटा पाना मुमकिन नहीं।[2]

1870 ई0 के आसपास स्वाधीनता की भावना देश के कोने–कोने में फिर अंकुरित हुई और गदर के बाद का सन्नाटा सिर्फ पंजाब में ही नहीं समूचे देश में टूटा। इस समय जिस नवीन चेतना का उद्‌भव हुआ उसने समाज सुधार संगठनों का रूप धारण किया। इतिहास का कितना अद्‌भुत संयोग है कि कांग्रेस की स्थापना के दिनों में ही आर्य समाज की स्थापना हुई और इस प्रकार देश में नवजागरण काल का आरम्भ हो गया। आर्य समाज का पंजाब से और भगत सिंह के जीवन से विशेष सम्बन्ध है।

सरदार खेमसिंह के तीन बेटे थे– सुर्जन सिंह, अर्जुन सिंह, और मेहरसिंह। छोटे बेटे मेहर सिंह ने तो सामान्य किसान का जीवन बिताया और वे

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 12
2. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 21

उस युग के उफानों से अछूते रहे। सुर्जन सिंह और अर्जुन सिंह सार्वजनिक कार्य में एक साथ सक्रिय रहे। फिर एक ऐसी घटना घटी कि दोनों के रास्ते अलग–अलग हो गये। गांव में प्लेग फैला। अंग्रेज कलेक्टर ने हुक्म दिया कि जिन घरों में प्लेग के केस हैं, उन्हें ढहा दिया जाये। अर्जुन सिंह ने इस तानाशाही हुक्म का विरोध किया। उनका कहना था कि घरों को ढहाने से पहले सरकार यह आश्वासन दे कि वह बाद में उन्हें बनवा देगी। कलेक्टर इस पर तैयार न था। सरदार सुर्जन सिंह इस मामले में कलेक्टर के समर्थक हो गये और फिर इस धारा में ऐसे बहे कि सरकार परस्ती ही उनका धर्म बन गया। इसका उन्हें फल भी मिला, ऊंचे पदों पर बैठे और पैसे में खेले उनके बेटे सरदार बहादुर दिलबाग सिंह ने सरकार परस्ती का उस युग का सबसे बड़ा तोहफा ओ0बी0ई0 (आर्डर ऑफ बिट्रिश एम्पायर) का खिताब पाया और उनका बांया हाथ बनकर रहे।

इस प्रकार एक ही वंश दो शाखाओं में बंट गया और दोनों वंश विपरीत दिशाओं में चले गये। एक शाखा राजभक्ति की दलदल में जाकर खो गई और दूसरी देशक्ति और बलिदारों के गौरवमय इतिहास का अंग बन गयी।

सरदार अर्जुन सिंह ने ऋषि दयानन्द के दर्शन किये और मुग्ध हो गये और उनका भाषण सुना तो नव जागरण की सामाजिक सेना में भर्ती होकर आर्य समाजी बन गये। वे उन थोड़े से लोगों में थे, जिन्हें ऋषि दयानन्द ने दीक्षा दी थी। यज्ञोपवीत अपने हाथ से पहनाया था। यह सरदार अर्जुन सिंह का पुनर्जन्म था। उन्होंने मांस खाना छोड़ दिया। शराब की बोतल नाली में फेंक दी। इस प्रकार हवन कुंड उनका साथी तथा संध्या प्रार्थना सहचरी बन गयी। उनका जीवन बदल गया और यह बदलाव एक क्रांतिकारी छलांग थी। उस युग में सरदार अर्जुन सिंह का आर्य समाजी होना एक क्रांतिकारी कदम था।

सरदार अर्जुन सिंह के व्यक्तित्व की दो विशेषतायें थी, पहली परिश्रमशीलता और दूसरी सामाजिक सुधार की दृष्टि। वे जीवन की जड़ता के घोर विरोधी थे और प्रगति के पूरे समर्थक। उन्होंने अपने ही परिश्रम से संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी और गुरूमुखी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था तथा कचहरी और आर्य समाज का काम करते हुये वे यूनानी हिमकत में सफल हकीम बन गये थे। सन् 1900 ई0 में वे जालन्धर से लायलपुर जिले के बंगा गांव में बस गये और खेती के साथ चिकित्सा का भी काम करने लगे।

लायलपुर की जमीन सोना उगलती थी। अर्जुन सिंह की मेहनत और लगन में भी कमी नहीं थी। अतः वे आर्थिक दृष्टि से काफी आगे बढ़े और भी आगे बढ़ सकते थे। पर धन कमाना उनके जीवन का लक्ष्य नहीं था। उनकी मूलवृत्ति परिग्रह की नहीं, त्याग की थी। उनका अधिकांश समय सार्वजनिक कार्यों में और आमदनी का अधिकांश भाग परोपकार में खर्च होता था। बंगा में उन्होंने दो कुंए, एक सराय और एक गुरूद्वारा बनवाया।

जब उनके दोनों पोतों जगत सिंह और भगत सिंह का यज्ञोपवीत हुआ तो दोनों के सिर पर बाल थे। हिन्दू प्रथा के अनुसार उनका मुण्डान होना था। उनकी पत्नी श्रीमती जय कौर की आस्था सिख धर्म में थी। केशों के प्रति उनके मन में सहज भावना थी। उन्होंने पति से आग्रह किया कि और चाहे जो करो, पर केश मत कटवाओ। वे मान गये बोले "अच्छा रहने दो, असली बात तो विश्वास है।"[1] उनकी सहिष्णुता और उदारता ने उन्हें लोकप्रिय बना दिया था और बंगा गांव को सिख धर्म और आर्य समाज का संगम।

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 24

वे अध्ययनशील और मननशील व्यक्ति थे। उनकी रूचि लिखने की थी। काम से फुर्सत पाते ही वे लिखने बैठ जाते। उन्होंने कई पुस्तकें लिखी। उनका बहुत सा साहित्य बाद की तलाशियों में पुलिस उठा ले गई। जो सुरक्षित था वह बंटवारे की भेंट हो गया। उनकी एक पुस्तक का नाम था– ''हमारे गुरू साहबान वेदों के पेरू थे।''

उनका संकल्प था कि वे कुछ वर्ष बाद सन्यास धारण करके शेष जीवन ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों को प्रसारित और राष्ट्रीय चरित्र निर्माण करने में लगा देंगे। मगर बेटे जवान हुये तो देश में क्रांति की ऐसी प्रबल धारा उठी, जो उन्हें अपने साथ बहा ले गई। बेटों को क्रांति के पथ पर चलते देखकर उन्हें प्रसन्नता हुई उन्होंने गृहस्थी संभाली और खतरों को भी झेला यही उनका सन्यास था जो उनके संकल्प को साकार बनाता था।

जब आपका सबसे छोटा बेटा स्वर्ण सिंह भरी जवानी में शहीद हो गया, मझंला बेटा अजीत सिंह गिरफ्तारी से बचकर विदेश चले गये और सबसे बड़े बेटे किशन सिंह जेल में थे। इसके बाबजूद जगत सिंह और भगत सिंह का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तो उन्होंने एक को दाई भुजा और दूसरे को बाई भुजा में उठाकर संकल्प किया– ''मैं अपने दोनों वंशधरों को यज्ञवेदी पर खड़े हो, देश की बलि बेदी के लिये अर्पित करता हूं। इसके थोड़े दिनों बाद जगत सिंह ज्वर से बीमार पड़े। ज्वर सन्निपात में बदल गया। वे हकीम थे, दवा दी। उसने काम नहीं किया और जगत सिंह की मृत्यु हो गयी। उन्हें इतना दुख हुआ कि हिकमत छोड़ दी।

उनकी जीवन लीला के अंत में उन पर फालिज का आक्रमण हुआ। किशन सिंह डाक्टर बोधराज को बुला लाए। लेकिन उन्होंने लिखकर बताया कि इस उम्र में फालिज ठीक नहीं होता आदमी लटकता रहता है। जिन्दगी तभी तक जिन्दगी है, जब तक काम में लगे, नहीं तो वह बोझ है। उन्होंने दवा नहीं ली।

भगत सिंह जब दूसरी मर्तबा गिरफ्तार हुए। मुकद्दमा चला, फांसी निश्चय थी। इस सम्भावना ने उन्हें तोड़ दिया। फांसी से 20–22 दिन पहले जब भगत सिंह से मुलाकात के लिये घर के लोग गये, तो वे भी साथ थे। वे वहां कोई बात न कर सके, कुछ दूर खड़े आंसू बहाते रहे।

आखिर वे भी मनुष्य थे। बलिदानों की आहुतियों देते–देते थक गये थे। भगत सिंह की शहादत के लगभग सवा साल बाद जुलाई 1932 ई0 में उनकी मृत्यु हो गयी।

भगत सिंह की दादी श्रीमती जयकौर सिंह :

सरदार अर्जुन सिंह राष्ट्रीय क्रांति के दीपकों में से एक है, पर दीपक क्या बिना बाती के जल सकता है। उनकी जीवन बाती थी, उनकी पत्नी श्रीमती जयकौर सिंह। सरदार भगत सिंह की दादी व सरदार अर्जुन सिंह की पत्नी श्रीमती जयकौर एक आदर्श महिला थी। आप ही ने अपने पुत्रों व अपने पौत्रों का पालन पोषण किया। आप एक वीर महिला थी। आप प्रसिद्ध देशभक्त सूफी अंबा प्रसाद के विषय में अपने उद्गार प्रकट किया करती थीं। सूफी अंबा प्रसाद, अर्जुन सिंह के यहां आये हुये थे, पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने के लिये आ धमकी, किन्तु इस वीर महिला ने बड़ी बुद्धिमानी से उन्हें बचा लिया।

उन्होंने उस युग की नारी होकर भी, जिसमें दीवार से बाहर झांकना भी साहस का काम समझा जाता था, अपने को पति के क्रान्तिकारी जीवन के साथ खड़ा किया और संघर्ष की लपटों के लिये अपने को तेयार किया। उनकी देह पतली–दुबली थी, पर मन बेहद तेजस्वी था। थकना वे जानती ही नहीं थी। उनमें नयी परिस्थितियों में ढल जाने की अद्भुत क्षमता थी। इसलिये बदलती हुई परिस्थितियां उन्हें झकझोरती नहीं थी। बल्कि नयी चमक देती थी।
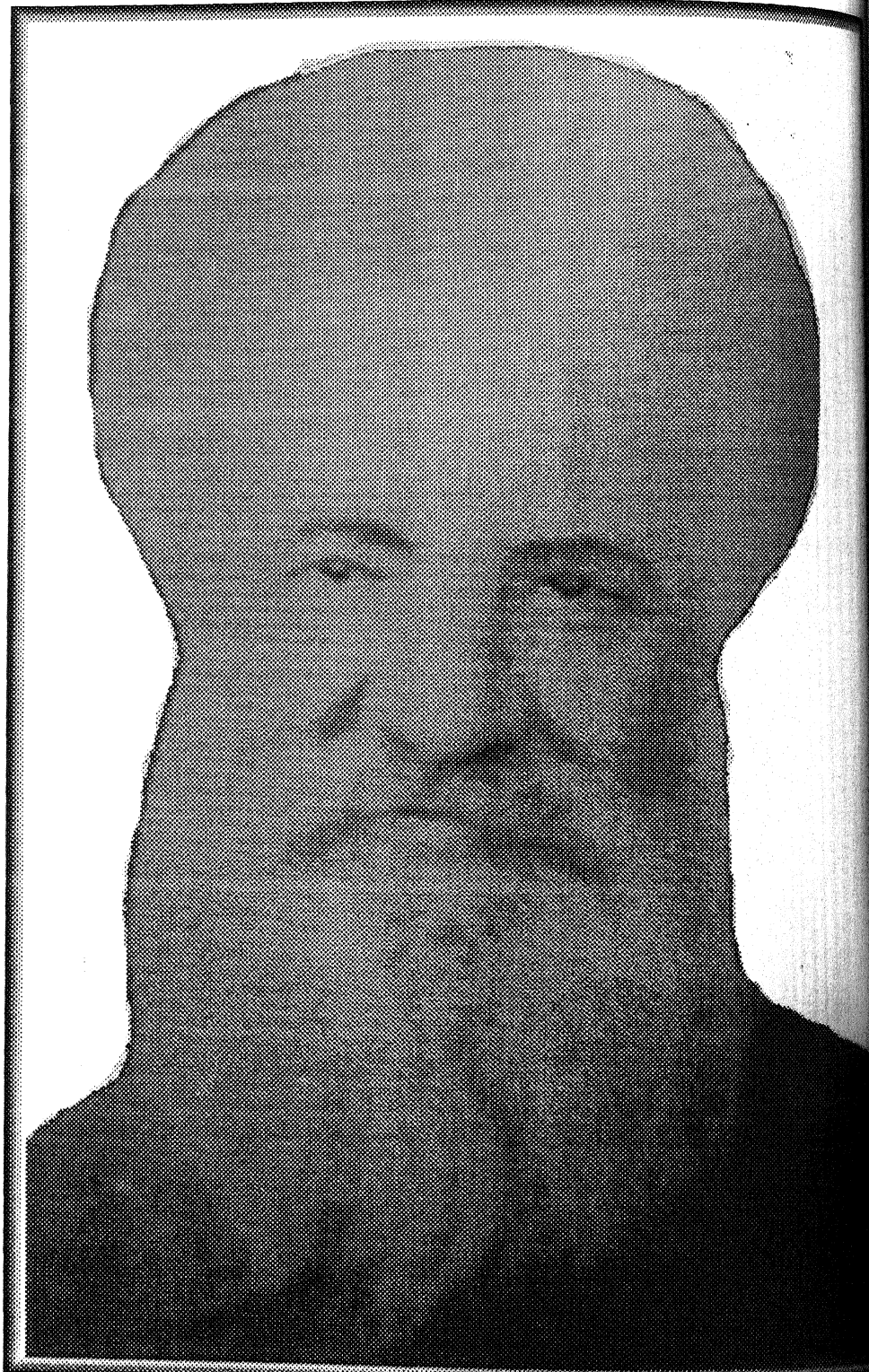
सरदार किशन सिंह

व्यक्तित्व की इस विशिष्टता ने उन्हें एक सामाजिक क्रान्तिकारी की पत्नी, क्रान्तिकारी पुत्रों की जननी और क्रान्तिकारी पोतो की दादी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ वे अपने पति के साथ भारतीय राष्ट्र के उस बेजोड़ वंश की प्रवर्तक हुई, जिसकी तीन पीढ़ियां गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिये जान की बाजी लगाकर लड़ती रही और बाद में भी अन्याय के विरूद्ध न्याय की पताका फहराना जिसका रक्त धर्म हो गया।

मई 1940 में उनकी मृत्यु बंगा में हुई इस प्रकार सरदार अर्जुन सिंह के साथ ही 'अपने पति के लिये समर्पित जीवन' भी क्रांति के इतिहास में स्मरणीय है। सरदार अर्जुन सिंह क्रांति के ध्वज थे, तो वे उस ध्वज की सुदृढ़ दण्ड थी।[1]

भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह :

सरदार अर्जुन सिंह के तीन पुत्र थे– सरदार किशन सिंह, सरदार अजीत सिंह और सरदार स्वर्ण सिंह। ये तीनों भाई अपने सच्चे देश प्रेम के लिये पंजाब में प्रसिद्ध है। कैद, निर्वासन और दरिद्रता के द्वारा इनकी देशभक्ति की कड़ी परीक्षा हो चुकी है।

भगत सिंह के दादा अर्जुन सिंह ने समाज सेवा और देश सेवा का जो मार्ग प्रशस्त किया था उसी मार्ग पर भगत सिंह के पिता किशन सिंह भी साई दास ऐंग्लों संस्कृत हाई स्कूल, जालंधर से शिक्षा समाप्त करके चल पड़े।[2] सन् 1898 में बरार (विदर्भ) में भीषण अकाल पड़ा और महामारी का प्रकोप फैला। किशन सिंह की आयु उस समय बीस वर्ष की थी। आर्य समाज ने बरार सहायता

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–3
2. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 27

समिति बनायी। किशन सिंह को बरार भेजा गया। यहां से सामान भेजा जाता वहां से उस सामान को अकाल पीड़ितों में वितरित करते थे। अकाल का प्रकोप समाप्त होने तक उन्होंने इस कार्य को कुशलतापूर्वक किया और जब लौटे तो पचासों अनाथ बच्चे उनके साथ थे। वापस पहुंचते ही उन्होंने फिरोजपुर में अनाथालय खुलवाया, जिसमें इन बच्चों का पालन पोषण और शिक्षण की व्यवस्था की गयी। यह काम भी उन्हें सौंपा गया।

दो वर्ष बाद अर्थात 1900 में ऐसा ही भीषण अकाल गुजरात में पड़ा तो किशन सिंह का कैम्प अहमदाबाद में खुल गया। वहां से लौटे तब भी बहुत अनाथ बच्चे उनके साथ थे। उनकी भी व्यवस्था की गयी। वर्ष 1904 में कांगड़ा में भूकम्प आया, सहायता समिति बनी किशन सिंह उसके मंत्री चुने गये। वर्ष 1905 में झेलम नदी की बाढ़ से कश्मीर की घाटी कराह उठी। किशन सिंह वहां भी पहुंचे और सेवा कार्य आरम्भ किया।[1] इस प्रकार किशन सिंह की लोकप्रियता आकाश को छूने लगी। उन्होंने अपने आप से पूछा– जनता की यह दुर्दशा क्यो? आज यह तो कल वह, दुख उनके द्वार पर क्यों खड़ा रहता है? इन प्रश्नों से उन्हें देश की गुलामी का बोध हुआ और यह बोध धीरे–धीरे उनके मन का कडुआ बोझ बन गया। और यही बोझ उन्हें राजनीति में ले आया। भारत की स्वतन्त्रता को ही वे समस्त रोगों की दवा मानने लगे।

सरदार किशन सिंह अपने छोटे भाई सरदार अजीत सिंह के साथ गरम क्रान्तिकारी आंदोलन में आ गये। सूफी अंबा प्रसाद इस आंदोलन की आत्मा थे, सरदार अजीत सिंह हृदय, प्राण और सरदार किशन सिंह भुजायें और लाला हरदयाल सिंह मस्तिष्क थे। लाला स्वर्ण सिंह, सरदार करतार सिंह केसर गढ़िया,

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–13

लाला लालचन्द्र फलक, महाशय घसीटाराम मेहता, नन्द किशोर मेहता, जियाउल हक, केदार नाथ सहगल, लाला पिण्डीदास आदि इसमें साथी थे।

उस समय 'सहायक' नाम राजनैतिक दैनिक पत्र के सम्पादक सरदार किशन सिंह थे। भारत माता सोसाइटी के जलसों में भाषण का कार्य सरदार अजीत सिंह तथा गांव गांव में प्रचार लायक बनाने का कार्य सरदार किशन सिंह तथा गांव गांव में प्रचास करने का कार्य सरदार स्वर्ण सिंह किया करते थे। इस प्रकार ये तीनों भाई इस क्रान्तियज्ञ के ब्रह्मा, विष्णु और महेश थे।

सरदार किशन सिंह स्वयं एक क्रांतिकारी थे। इसके अतिरिक्त उस युग में अन्य क्रांतिकारियों को अंग्रेजी सरकार से छिपाने तथा बचाने का भी कार्य करते थे। उदाहरणार्थ– उस युग के महान क्रांतिकारी नेता रास बिहारी बोस, बाबा गुरूदत्त आदि थे। उनके व्यक्तित्व में बेहद भोलापन था वे किसी चालाकी से काम कर रहे हैं या कोई षड़यंत्र रच रहे हैं, यह विश्वास उन्हें देखकर किसी को भी नहीं होता था। उनमें सूझ–बूझ तथा चतुरता पूर्णतया व्याप्त थी। और वे अपना साहस तथा सन्तुलन कभी भी नहीं खोते थे।

सरदार किशन सिंह के खानदानी कागजों से पता चलता है कि नेपाल सरकार से उनके पहले से सम्पर्क थे। वे वहां पर शाही मेहमान बनाकर उसी भवन में ठहराये गये जहां कभी लार्ड किचनर को ठहराया गया था। प्रधानमंत्री महाराज चन्द्र शमशेर जंग बहादुर राणा उनके व्यक्तित्व से प्रभावित थे और अपने पुत्र को ज्ञान व प्रेरणा की शिक्षा के लिये इनके पास भेजते थे। वहां पर वे नेपाल सरकार से भारत की क्रांति के लिये सेना व शस्त्र की बात कर रहे थे। जिसका पता अंग्रेजों को चल गया और नेपाल सरकार से अंग्रेजों ने इन लोगों को वापिस करने के लिये जोर डाला। नेपाल सरकार डर गयी और उसने इन्हें पालकी में बैठाकर सम्मान तथा शान के साथ नेपाल की सीमा तक भेजा।

सरदार किशन सिंह को उनके साथ सूझ–बूझ का बादशाह कहते थे क्योंकि इसी समझदारी और अपनी संगठन शक्ति के द्वारा उन्होंने इस युग में अंग्रेजी पहरेदारों के बीच से सरदार अजीत सिंह, सूफी अंबा प्रसाद जिया उल हक तथा कई साथियों को करांची से ईरान पहुंचवाया।

सरदार किशन सिंह में बेपनाह योग्यता तथा धन कमाने की असीम शक्ति थी। अपने जीवन में उन्होंने एक बार अवसर प्राप्त होने पर बीमे के काम से इतने रूपये कमाये कि लखपति हो गये। जमीन खरीद कर परिवार को समृद्धि दी इसके अतिरिक्त उन्होंने व्यापार किया तो उसमें भी सफल हुये। परन्तु इतनी योग्यता होते हुये भी वे धन के लालच से बचे रहे। इस प्रकार वे आज के शाह थे तो कल के फकीर। उनके संतुलन में कोई कमी नहीं थी। भगत सिंह के मुकदमों के दिनों में उन्हें खर्चे के लिये मकान के राहतीर और किबाड़ भी बेचने पड़े।

वे संघर्ष के पुजारी थे वे जेल में रहे या उससे बाहर रहे, उनका संघर्ष चलता ही रहता था। एक बार जेल में उन्होंने धर्म के लिये जेल आंदोलन किया। उस समय कैदी को सिर में ओढ़ने के लिये टोपी मिलती थी। उन्होंने उसके लिये इन्कार करके पगड़ी की मांग की। इसके लिये उन्हें अनेकों जेल की यातनायें सहनी पड़ी। जेल के अफसरों ने उन्हें डराया, धमकाया और बात न मानने पर किशन सिंह को नंगा करके धूप में बांध दिया। यह आंदोलन एक जेल से दूसरी जेल तक पहुंचा। परन्तु अंग्रेजों के अनेकों अत्याचारों के सामने भी उन्होंने सिर नहीं झुकाया और अंत में उन पर फांलिज का आक्रमण हो गया। इससे जेलों में पगड़ी का आंदोलन पूरे जोर से भड़क उठा और अंत में अंग्रेजी सरकार को सिख कैदियों को ढाई गज का परना देने की बात माननी पड़ी। इस प्रकार इस आंदोलन के आदि प्रवर्तक सरदार किशन सिंह ही थे।

श्रीमती विद्यावती

इस प्रकार सरदार किशन सिंह के व्यक्तित्व के दो पहलू थे। एक वे क्रांति के पोषक पिता थे और दूसरे अपनी सन्तति के पिता पोषक थे। वे मोह और द्रोह के तीर्थ राज थे। उनमें त्याग, सहनशीलता तथा बलिदान का अपूर्व संगम था। भगत सिंह की फांसी के दिन भीड़ देखकर उन्होंने अपनी पत्नी विद्यावती जी से वहां से चलने के कहा। क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि एक भगत सिंह के साथ उन्हें कई भगत सिंह देने पड़े। और जब फांसी का समाचार उन्हें मिला तो उन्होंने भीड़ को रोका और कहा कहा– सब अपनी–अपनी जगह पर बैठे रहे, कोई भी जेल की तरफ न जाये, कहीं ऐसा न हो कि हम एक भगत सिंह को लेने जाये और और सैकड़ों भगत सिंह देकर आये।[1]

इस प्रकार वे पंजाब की क्रांति के वटवृक्ष थे। जिसकी जड़ें दूर–दूर तक फैली हुयी थी और सबको उसके नीचे शांति विश्राम और सहयोग मिलता था। 1939 में उन्हें दूसरी बार फालिज हुआ और उनका एक हिस्सा बेकार हो गया। परन्तु वे अपनी इच्छा शक्ति के सहारे वे इस भयंकर आक्रमण को भी झेल गये और बेंत की लम्बी लाठी के सहारे धीरे–धीरे चलने लायक बने। इस प्रकार अपने जीवन में अनेकों उतार–चढ़ाव देखने के पश्चात वर्ष 1951 में सरदार किशन सिंह की हृदयगति रूक जाने से मृत्यु हो गयी।

भगत सिंह की माता श्रीमती विद्यावती जी :

एक व्यक्ति तभी एक महान पुरूष बनता है जब उसकी जीवन संगिनी का साथ अच्छा हो और वह हर परिस्थिति में अपने पति तथा परिवार का साथ दे। ऐसी ही महान नारी विद्यावती जी थी। सरदार किशन सिंह से इनका विवाह वर्ष 1998 के लगभग हुआ था। विद्यावती जी मोरांवाली स्थान की रहने

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–3

वाली थी। विवाह के समय इनकी अवस्था ग्यारह वर्ष की थी और इनका नाम इन्दी था। सरदार किशन सिंह और विद्यावती जी दोनों के ही परिवार सिक्ख थे। किन्तु आर्य समाज का विशेष प्रभाव होने के कारण इनका विवाह आर्य समाजी परम्परा से हुआ था।

सरदार किशन सिंह का जीवन संघर्ष में बीता और विद्यावती जी ने हर संघर्ष में अपने पति का साथ दिया। वे साहस व धैर्य की प्रतिमा थी। ऐसी महान नारी को सरदार भगत सिंह की माता होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भारत माता की स्वतन्त्रता के लिये देश के तरूणों ने बहुत कुछ किया पर यह क्या कम महत्वपूर्ण है कि माताओं ने सीने पर पत्थर रखकर अपने बेटों को अथाह कष्टों और यातनाओं से गुजरते देखा।

23 मार्च 1931 में भगत सिंह को फांसी दे दी गयी। उन्हीं के शब्दों में– ''सुनते ही मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हो गया। भीतर से आसुओं का समुद्र उमड़ता पर आंखों तक आते–आते मेरी बुद्धि उसे रोक देती। हंसते–हंसते प्राण न्यौछावर करने वाले मेरे बेटे भगत के कहे अंतिम शब्द मेरे कानों में बार–बार गूंज रहे थे– ''बेबे जी रोना मत। ऐसा न हो आप पागलों की तरह रोती फिरे। लोग क्या कहेगें कि भगत सिंह की मांग रो रही है।'' इस प्रकार उस समय की देह में दो मातायें एक साथ थी। एक थी एक बेटे की मां और एक थी एक शहीद की मां। बेटे की मां रोने के लिये उमड़ रही थी और एक शहीद की मां रोने से रोक रही थी।

सन! 1939–40 में उसके दो बेटे कुलवीर सिंह और करतार सिंह जेलों में पहुंच गये और उनके पति फालिज से अपंग हो गये। ऐसे में उन्होंने घर सम्भाला, खेती का कार्य भी किया और साथ ही जलसों में अध्यक्षता भी की। अगस्त 1947 में देश आजाद हुआ और पाकिस्तान बना, पूरा परिवार एक हुआ परन्तु दो तीन सालों में ही परिवार के सभी लोगों ने अपने–अपने ठिकानों की

व्यवस्था कर ली इस प्रकार उसी गांव में खटकड़कला में वे और उनके पति सरदार किशन सिंह जी रह गये।

23 मार्च 1963 में खटकड़कला गांव में सरदार भगत सिंह जी की भव्य मूर्ति का अनावरण श्रीमती विद्यावती जी के कर कमलों द्वारा हुआ। जिसकी न्यूजरील बनी और जब उसे बटुकेश्वर दत्त जी ने देखा तो उनके मुख से निकला– "मां अभी जिन्दा है।" 9 सितम्बर 1963 को श्री बटुकेश्वर दत्त जी आपसे मिलने गांव पहुंचे। दोनों का भाव विभोर मिलन हुआ।

9 मार्च 1965 में उज्जैन (मध्यप्रदेश) के नागरिकों के आग्रह पर विद्यावती जी की अध्यक्षता में जलसा हुआ। जिसमें भगत सिंह के लिखे गीत व कवितायें गायी गयी और इसमें सरदार भगत सिंह महाकाव्य के प्रणेता श्री श्रीकृष्ण सरल ने अपना अंगूठा चाकू से चीर कर पुस्तक पर खून छिड़का और उस खून का टीका माता विद्यावती जी के मस्तक पर लगाया। 1965 में ही श्री बटुकेश्वर दत्त जी गम्भीर रूप से रोगगस्त हो गये। और उन्होंने उसी हालत में मां पुकारा। विद्यावली जी को वहां ले जाया गया। 20 अगस्त 1965 को श्री बटुकेश्वर दत्त जी की मृत्यु हो गयी। उनकी अंतिम इच्छा पूर्ण करने के लिये उनका शव फिरोजपुर में सतलज नदी के किनारे लाया गया। जहां भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव जी का दाह संस्कार हुआ था। विद्यावती जी भी श्री बटुकेश्वर दत्त जी के दाह संस्कार के लिये साथ आयी और उनके मुख से ये शब्द निकले– "तुम चारो तो यहां पर इकटठे हो गये, अब मुझे भी अपने पास बुला लो।"[1]

इस प्रकार वे बड़े विश्वास के साथ कहती थी। "जब तक मैं जीवित हूं भगत सिंह हर दम मेरे साथ है और जब मंरूगी तो मैं भी उनके पास चली जाऊंगी।"

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–57

भगत सिंह के चाचा सरदार अजीत सिंह :

भारत की स्वतन्त्रता की वेदी में सरदार किशन सिंह के छोटे भाई सरदार अजीत सिंह का योगदान भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिन्होंने जीवन भर संघर्ष करके भारत माता की स्वतन्त्रता के लिये स्वयं को अर्पण कर दिया। 23 फरवरी 1881 को खटकड़कलां (जालन्धर) में सरदार अजीत सिंह का जन्म हुआ। इन्होंने गांव में प्राइमरी परीक्षा पास की व बंगा के गवर्नमेण्ट स्कूल से मिडिल पास किया।[1]

1894 ई0 में अजीत सिंह ने सांई दास ऐंग्लों संस्कृत हाईस्कूल से मैट्रिक पास किया इसके बाद कानून की पढ़ाई के लिये बरेली कालेज में गये। किन्तु बीमार होने के कारण वहां से लौट आये। किन्तु यही पर कुछ महीने व्यतीत करने के पश्चात आपमें राजनैतिक चेतना की प्रथम चिंगारी जागृत हुयी। इसके बाद डी.ए.वी. कालेज लाहौर में छात्र के रूप में प्रवेश किया और यहां पर पढ़ते हुये इन्होंने सामाजिक कार्य किये तथा राजनैतिक अध्ययन किया। इन्हीं दिनों गोपाल कृष्ण गोखले का लाहौर में इन्होंने भाषण सुना परन्तु इनके भाषण से ये प्रभावित नहीं हुयी क्योंकि इनका विचार था कि– चमकदार भाषणों से स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती, इसके लिये तो कठिन लड़ाई लड़नी पड़ेगी।''

इसके पश्चात ये कांग्रेस के सदस्य बन गये। 1896 ई0 में इण्टर पास करके स्कूल में अध्यापक हो गये। और इसी के साथ इन्होने अंग्रेजों की जड़े उखाड़ने के लिये धीरे–धीरे तैयारी शुरू कर दी। 1906–07 ई0 में यूनियन बनाई। जिसमें चपरासी से लेकर बड़े अफसर तक शामिल थे और अंग्रेजों के गुप्त रहस्यों को जानकर अखबारों में बयान देने लगे। इसके साथ ही आर्य समाज के बहुत से पैम्पलेट व ट्रेक्ट लिखे। जिसमें विधवा की पुकार प्रसिद्ध है।

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–59

एक बार सरकार किशन सिंह के बीमार हो जाने के कारण अनाथालय के कार्य से सरकार अजीत सिंह बंगाल गये और वहां कुछ क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आ गये। वे रूढ़ियों, जाति बंधन आदि के विरोधी थे। और इसलिये इन्होने श्री धनपतराय के पालिका पुत्री हरनामकौर से विवाह किया। जिसकी वंशावली अज्ञात थी। 1905–06 ई0 में अंग्रेजों की कूटनीति के द्वारा बंगाल में दो भागों में विभाजित कर दिया गया। स्वदेशी प्रचार और विदेशी वहिष्कार का सार्वजनिक आंदोलन हुआ। कलकत्ता में दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। जिससे सरदार किशन सिंह और अजीत सिंह सम्मिलित हुये और वहीं पर गरम तथा नरम दल हो गये। गरम दल का नेतृत्व लोकमान्य तिलक के हाथों में आया और अजीत सिंह इसी दल में शामिल हो गये। इसके बाद 'भारत माता सोसाइटी' की स्थापना हुई जिसमें सूफी अम्बा प्रसाद,तीनों भाई किशन सिंह अजीत सिंह स्वर्ण सिंह, लाला हरदयाल फलक, मेहता नन्द किशोर, महाशय घसीटा राम, केदार नाथ सहगल आदि थे।

इस सोसाइटी के अन्तर्गत भाषण और प्रकाशन का कार्य किया गया। तथा प्रकाशन के लिये 'भारत माता बुक एजेन्सी की स्थापना की गयी। सरदार अजीत सिंह भाषण देने का कार्य करने लगे जिससे वर्तमान के अत्याचारों दुर्दशा आदि का वर्णन करते थे। वे एक कुशल वक्ता थे। जब बोलते थे तब एक भी श्रोता अपने से नहीं हटता था। चाहे कड़ी धूप या वर्षा क्यों न हो। इसमें देहातों के दौरे का कार्यक्रम भी बना ताकि किसानों को लगानबंदी के लिये तैयार किया जा सके। भगत सिंह की कलम से– ''बंगाल विभाजन के विरूद्ध जो शक्तिशाली आंदोलन उठ खड़ा हुआ और स्वदेशी प्रचार तथा विदेशी के बहिष्कार की जो हलचल प्रारम्भ हुयी, उसका पंजाब के औद्योगिक जीवन और साधारण जनता पर भारी प्रभाव पड़ा था। पहले एक बीघे का लगान ढाई रूपया था, वहीं

अब साढ़े सात रूपये देने पड़ते थे। इससे किसानों पर भारी बोझ आ पड़ा और वह एकदम हतबुद्धि से रह गये।''

इस प्रकार शहरों से देहातों तक और बाबुओं से किसानों तक अजीत सिंह के ओजस्वी भाषणों का प्रभाव देखकर अंग्रेजों ने जनता को अजीत सिंह के भाषणों को न सुनने की चेतावनी दी, जिससे अजीत सिंह के भाषणों का आकर्षण और बढ़ गया। एक पत्रकार के शब्दों में– ''सरदार अजीत सिंह ने जिस तरह उन दिनों जनता का मन जीत लिया था उसका अब कोई विश्वास ही नहीं करेगा।''

इसके पश्चात इन्होने पंजाब में स्थान–स्थान पर जल से किये। 14 मार्च 1907 में लाहौर में 'हिन्दुस्तान हमारा है' विषय पर भाषण दिया। 17 मार्च 1907 को लाहौर में स्वदेशी पर भाषण दिया। इसके बाद आर्य सेवक होटल के मैदान में भाषण दिया। इस प्रकार किसानों के आंदोलन आदि प्रवर्तक के रूप में अजीत सिंह सामने आये। इस जलसे में 1400 छह फुटे लट्ठबंद किसानों ने उपस्थित होकर अपना अंगूठा लगाकर पंजाब सरकार के मार्फत भारत मंत्री को इंग्लैण्ड में समुद्री तार भेजा।

''अंग्रेज हिन्दुस्तान छोड़ जायें, तो बेहतर है वर्ना अहिंसात्मक और शान्त ढंग से करबन्दी आंदोलन बड़े जोरों से शुरू कर दिया जायेगा।''

इस जलसे में सूफी अम्बा प्रसाद 'इण्डिया' के सम्पादक लाला पिण्डीदास आदि शामिल हुये। अन्त में सरदार किशन सिंह स्वर्ण सिंह, लाला लालचन्द्र फलक आदि क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया। 22 मार्च को लायलपुर में भारत माता सोसाइटी का जलसा हुआ जिसमें इसके कार्यकर्ता श्री बांकेदयाल में अपन कविता 'पगड़ी सम्भाल जट्ठा, पगड़ी सम्भाल' पहली बार

पढ़ी। कविता सुनकर लोग झूम उठे और यह प्रसिद्ध हो गयी। इस जलसे में जब लाला लालपतराय आये तो अजीत सिंह बोल रहे थे और उनकी एक–एक बात पर जनता तालियां बजा रही थी।

इसके पश्चात अजीत सिंह जी ने अनेकों सभाओं में भाषण दिये जिसमें 27 मार्च लायलपुर, 29 मार्च अमृतसर, 1 अप्रैल लाहौर, जिसमें अंग्रजों के वध को उचित बताया और खुले आम आतंकवाद का समर्थन किया। इसके पश्चात वे लगातार जलसों में शामिल होते रहे। इस प्रकार सरकार अजीत सिंह पगड़ी सम्हाल जट्ठा के किसान आंदोलन को अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा राजनैतिक क्रांति का रूप दे दिया। लाला लालपतराय ने एक भाषण में अजीत सिंह के लिये कहा था कि वे क्रांतिकारी आंदोलन के द्वारा अंग्रेजों से समझौता नहीं चाहते हैं बल्कि अंग्रेजी राज्य का मुकम्मल खात्मा चाहते हैं।"

अंग्रेजी राज्य का गुप्तचर विभाग सरदार अजीत सिंह की सभी गतिविधियों पर पूर्ण रूप से नजर रखने लगा और उसके लिये रिपोर्ट देने लगा। 5 मई 1907 ई0 को एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की गयी जिसमें दो महीने से मीटिंग करने, राजद्रोह फैलाने, बड़े जलसों में अंग्रेजों का बध करने तथा सिख समाज, सिख सैनिकों आदि को भड़काने के विषय में कहा गया। यह रिपोर्ट पंजाब के लेफ्टीनेंट गर्वनर के पास भेजी गयी। पंजाब के गर्वनर मि0 इब्टसन ने वायसराय लार्ड हार्डिग्ज को लिखा कि "पंजाब में गदर होने वाला है और उसका नेतृत्व सरदार अजीत सिंह और उनकी पार्टी करेगी। बगावत को रोकने का प्रबन्ध करें।

7 मई 1907 को लाला लाजपतराय और सरदार अजीत सिंह के नाम वारन्ट निकाला गया। जिस पर भारत सरकार के गृह सचिव श्री एच0एच0 रिजले के हस्ताक्षर थे। 9 मई 1907 को लाला लालपतराय गिरफ्तार हुये किन्तु

अजीत सिंह जी 2 जून 1907 को पकड़े गये। और उनको कड़ी सुरक्षा के साथ ले जाया गया। माण्डला के किले में अजीत सिंह को रखा गया। यहीं पर लाला जी भी थे। किन्तु दोनों को मिलने पर पाबन्दी थी। माण्डले के किले में एक साफ–सुथरे बंगले में उन्हें रखा गया। वे वहां पर दोनों समय व्यायाम करके मस्त रहने लगे और अपना समय क्रान्तियों के नेतृत्व करने वाले वीरों का चरित्र चित्रण पढ़ने में व्यतीत करने लगे और इसी साहित्य से प्रेरणा लेकर जेल से छूटने के पश्चात 'मुहिब्बाने वतन' नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसकी भूमिका सूफी अम्बा प्रसाद ने लिखी। यह लोकप्रिय हुयी। किन्तु सरकार ने इसे जब्त कर ली। आगे चलकर इसका अनुवाद पर्शियन भाषा में हुआ और घर–घर पढ़ी गयी। 11 नवम्बर 1907 को सरदार अजीत सिंह रिहा कर दिये गये।

12 नवम्बर 1907 ई0 को स्टीमर से उन्हें भेजा गया और 18 नवम्बर 1907 को स्पेशल ट्रेन से लाहौर पहुंचे। समाचार पत्रों में उनका नाम सुनहरे अक्षरों से लिखा गया। और पूरे पंजाब में खुशियां मनायी गयी। अंग्रेजों ने उन्हें छोड़ने का कारण जार्ज पंचम के राज्याभिषेक की खुशी में बताया।

कांग्रेस में नरम और गरम दल की दरार कलकत्ता अधिवेशन 1906 में पड़ गयी थी। दिसम्बर 1907 में सूरत में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमें बहुमत नरम दल का था। इसमें अजीत सिंह भी शामिल हुये। यहां लोकमान्य तिलक, अजीत सिंह जी से प्रभावित हुये। किसी कारणवश झगड़ा होने के कारण इस दिन अधिवेशन स्थगित कर दिया गया। दूसरे दिन गरम दल की सभा में लोकमान्य तिलक ने भाव विभोर होकर कहा कि– "सरदार अजीत सिंह एक विलक्षण व्यक्ति हैं वे इस लायक हैं कि उन्हें स्वतंत्र भारत का प्रथम राष्ट्रपति बनाया जाये। हमारे पास उन जैसा कोई दूसरा नहीं है।" और उन्होने एक ताज भी अजीत सिंह के सिर पर रखा।

1908 ई0 में लोकमान्य तिलक गिरफ्तार हो गये। अजीत सिंह जी भी उनके व्यक्तित्व से इतना प्रभावित थे कि उन्होंने साधु के वस्त्र धारण कर लिये और प्रतिज्ञा की कि जब तक तिलक जी नहीं छूटेगें, वे इसी वेश में रहकर स्वतंत्रता की ज्योति जगाते रहेगें। इसके पश्चात वे भारत माता सोसाइटी के कामों में जुट गये। क्रांतिकारियों ने अपना एक कोड बनाया और उसी के द्वारा वे एक दूसरे से सम्पर्क करने लगे। जब अजीत सिंह विदेश चले गये तब भी इसी कोड के सहारे अपने साथियों से सम्पर्क करते रहे। पजाब का 'पेशवा' नामक दैनिक पत्र राजद्रोह फैलाने का पत्र कहा गया।

इस प्रकार भारत माता सोसाइटी की गूंज सारे देश में फैल रही थी। बंगाल के क्रांतिकारी श्री चन्द्रकुमार चक्रवर्ती अजीत सिंह से मिले और उन्हें गुप्त संगठन में सहयोग देने लगे। अजीत सिंह जी ने इनका नाम फरिश्ता रखा। इन्होने एक बार लाहौर के ब्रेडला हाल में भीड़ से उठकर मंच पर आकर भाषण दिया जिसमें कहा कि– हिन्दुस्तान का कुत्ता इंग्लैण्ड के ईश्वर से श्रेष्ठ है। और यह कहकर भीड़ में कूंद कर गायब हो गये। अंग्रेज इन्हें पकड़ न सके और अजीत सिंह जी भी अंजान बन गये कि पता नहीं कौन था। बाद में इन्होने ही मदद करके उनको सुरक्षित बाहर भेज दिया।

इस प्रकार अजीत सिंह जी भाषणों, पेशवा अखबारी, पुस्तकों आदि के माध्यम से जनता को खुले रूप से और गुप्त रूप से क्रांति दल को संगठित कर रहे थे। गुप्त चर विभाग ने बहुत ही उग्र रिपोर्ट पंजाब सरकार को भेजी। जिस पर केश तैयार किया गया जिससे अजीत सिंह जी को फांसी पर लटकाया जा सके किन्तु इसका पता इनके बडे भाई सरदार किशन सिंह को लग गया और उन्होने तुरन्त अजीत सिंह को विदेश जाने की राय देकर तैयार की और अजीत सिंह को बाहर भेज दिया।
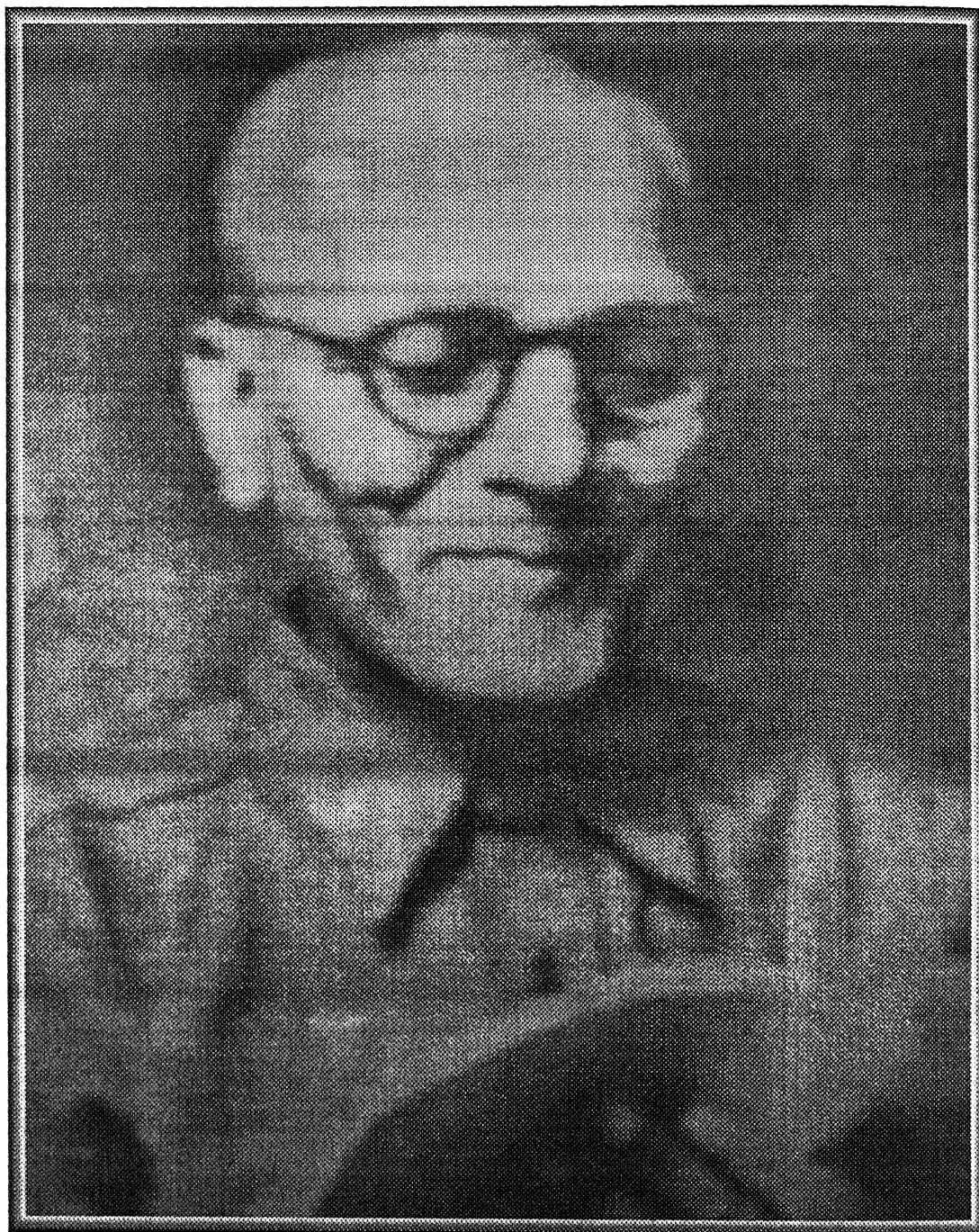
सरदार अजीत सिंह

जहाज द्वा
क्रांतिकारी
ने फारसी
की आजा
नजरों में
शक्ति कम

पहुंचे औ
की स्थाप
विदेशों में
मुसोलनी,
हुयी। इस

वर्ष रहे।
के रूप
रहें। 193
और वे
विदेशों
मुलाकात
अजीत सि
ई0 में
रखकर भ

सरदार अजीत सिंह जी मिर्जा हसन खां के नाम से करांची से जहाज द्वारा ईरान चले गये और इसके पश्चात वे कई स्थानों पर गये। ईरान में क्रांतिकारी लोग रूस तथा अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष कर रहे थे। अजीत सिंह जी ने फारसी में 'हयात' नामक पत्र निकाला। इसमें ईरान के हित तथा हिन्दुस्तान की आजादी के संघर्ष के बारे में प्रकाश डाला। अपने इस कार्य से वे अंग्रेजों की नजरों में आ गये और उन्हें ईरान छोड़ना पड़ा वे टर्की गये। जहां वे उभरती हुई शक्ति कमाल पाशा से मिले।

इसके पश्चात वे वियना गये और फिर जर्मनी गये। जर्मनी से पेरिस पहुंचे और वहां पर अध्यापन का कार्य करते हुये वहीं पर भारतीय क्रांतिकारी संघ की स्थापना की। पेरिस से स्विजरलैण्ड और फिर लुसेन में गये। इस प्रकार विदेशों में भ्रमण करते हुये वे विश्व की महान हस्तियों के सम्पर्क में आये। लेनिन, मुसोलनी, जर्मनी का शासक केसर विलियम द्वितीय आदि से उनकी मुलाकात हुयी। इस समय प्रथम विश्व युद्ध का वातावरण शुरू हो चुका था।

प्रथम विश्व युद्ध समाप्त होने के पश्चात वे ब्राजील में जाकर 16 वर्ष रहे। वहां कुछ समय प्रोफेसर कुछ समय एक कपड़े की फर्म में मैनेजर आदि के रूप में कार्य किये। इस दौरान वे भारतीय क्रांतिकारियों को संगठित करते रहें। 1932 ई0 के बाद इस भ्रमण के दौरान वे हिटलर, मुसोलिनी सभी से मिले और वे रोम में रहने लगे और नेपल्स में फारसी के प्रोफेसर हो गये। उन्होने विदेशों में भ्रमण के दौरान चालीस भाषायें सीख ली थी। विदेश में उनकी मुलाकात नेता जी सुभाष चन्द्र बोस से भी हुयी। द्वितीय विश्व युद्ध के समय अजीत सिंह रेडियो के द्वारा प्रसारण का कार्य कर रहे थे। यह कार्य उन्होने 1939 ई0 में रोम रेडियो द्वारा शुरू किया। उन्होने 'आजाद हिन्दुस्तान रेडियो' नाम रखकर भाषण देने का कार्य किया।

1938 ई0 में स्विजरलैंड में रहते हुये ही उन्होने भारत आने के प्रयास शुरू कर दिये परन्तु अंग्रेजों ने अनेकों चाले चलीं। 1946 ई0 में भारत सरकार ने अजीत सिंह के भारत प्रवेश पर विचार किया किन्तु वे उस समय गिरफ्तार हो चुके थे और जर्मनी के एक कैम्प में नजरबन्द थे। अंग्रेज अजीत सिंह से इतना चिढ़े हुये थे कि उन्होने कूटनीति का सहारा लिया और उन्हें कैम्प से निकलवाकर टी0बी0 अस्पताल में रखवा दिया ताकि उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाये और उनकी मृत्यु हो जाये।

भारत का लोकमत बहुत उग्र होता जा रहा था और पंडित जवाहरलाल नेहरू पर अजीत सिंह के भतीजे कुलवीर सिंह और कुरतार सिंह तथा भारत के समाचार पत्रों द्वारा भी जोर डाला गया कि अजीत सिंह को छुड़ाकर भारत लाया जाये। अंत में आंदोलन ने जोर पकड़ा और जवाहरलाल नेहरू ने भी वायसराय से कहा। इस प्रकार परिस्थितियों वश मजबूर होकर अजीत सिंह को मुक्त कर दिया गया। 1947 ई0 में वे करांची आये और 1 अप्रैल 1947 को उन्होने देश के नवयुवकों के नाम संदेश प्रसारित किया। इस तरह से वे बड़ी मुसीबतों के बाद भारत आये और पंडित जवाहरलाल नेहरू के मेहमान थे। दिल्ली में ही उनकी पत्नी श्रीमती हरनामकौर को बुलवाया गया और 39 वर्षों के वियोग के पश्चात उनका मिलन हुआ। इसके बाद वे लाहौर गये और वहां उनके स्वागत में अनेकों जलसे किये गये।

इसके बाद ही सरदार अजीत सिंह जी की तबियत खराब हो गयी और वे अपने गांव नहीं पहुंच पाये। उन्हें डलहौजी ले जाया गया और उनकी पत्नी को भी वहीं पर जाना पड़ा। इसके पश्चात अंग्रेजों ने घोषणा कर दी कि 15 अगस्त 1947 ई0 को अंग्रेजी राज्य भारत के बटबारे के साथ समाप्त हो जायेगा। इस घोषणा से वे अत्यन्त गम्भीर हो गये। 14 अगस्त 1947 ई0 की शाम

को अजीत सिंह ने पाकिस्तान की स्वतंत्रता का समाचार रेडियो पर सुना। सब कुछ प्रसन्न व स्वस्थ रूप से सुनकर वे सो गये और सुबह 4 बजे उन्होंने अपनी पत्नी को आवाज लगाकर कहा कि ''लो मेरा आखिर ब्यान लिख लो। दुनिया भर से मेरे दोस्त फैले हुये हैं। वह सब शिकायत करेगें कि बिना हम से कुछ कहे हुये ही चला गया।''

उसी समय डाक्टर को बुलाया गया लेकिन उसने कहा कि वे स्वस्थ्य हैं। उनका ब्यान न लिखा जाये अन्यथा दिल का दौरा पड़ सकता है। इसलिये उनका ब्यान नहीं लिखा गया। अन्त में उन्होने अपनी पत्नी से माफी मांगी और इस दुनिया से विदा ले ली। इस प्रकार आजादी की पहली किरण के साथ ही सरदार अजीत सिंह की मृत्यु का समाचार देश को मिला।

भगत सिंह की चाची श्रीमती हरनाम कौर :

''वे अकेली थी पर उनके साथ हरदम एक दिव्य पुरूष रहता था, जो उनसे हजारों मील दूर था। अंधेरे जीवन में यह लौ थी, प्रतीक्षा वे आयेगें कब आयेगें।''1

श्रीमती हरनाम कौर जिनको एक महान क्रांतिकारी अजीत सिंह की पत्नी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। परन्तु पूरे जीवन भर कितना मानसिक कष्ट सहना पड़ा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। क्रांतिकारियों के इतिहास में यदि ऐसी महान नारियों का स्मरण न किया जाये, तो यह अन्याय होगा। अपना सम्पूर्ण जीवन इन्होने एक ऐसे रूप में बिताया जिसे क्या नाम दिया जाये, इन्हें न ही विधवा कहा जा सकता है और न ही सधवा।

श्रीमती हरनाम कौर के अपने माता पिता कौन थे। यह उन्हें भी

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–102

ज्ञात नहीं था। उनका जन्म कहां पर हुआ यह भी उन्हें न ही मालूम था। सिर्फ दो, तीन वर्ष की उम्र तक वे अपने माता पिता के साथ रहीं और उनसे विछुड़ गयीं किन्तु कैसे बिछड़ी यह भी उन्हें ज्ञात नहीं था। इनका पालन पोषण कसूर के प्रसिद्ध वकील श्री धनपतराय जी के यहां पर हुआ था। और वे ही इनके धर्म पिता थे। श्री धनपतराय जी गौरक्षा के दीवाने थे। गाय की उपयोगिता तथा उसकी रक्षा आदि पर इनकी विशेष दिलचस्पी थी। वे इसके विषय में लिखते थे परन्तु उस युग में इनके इन गुणों को किसी ने भी नहीं पहचाना। वे सामाजिक क्रांति की प्रचंड हुंकार थे इसलिये हिन्दू होते हुये भी इन्होने अपनी बेटी का विवाह एक सिक्ख नवयुवक सरदार अजीत सिंह से कर दिया। श्री धनपतराय जी ने विवाह क आडम्बरों आदि को छोड़कर बड़े ही सादगी से अपनी बेटी का विवाह अजीत सिंह से कर दिया। उन्होने अपनी बेटी को अजीत सिंह के पास बैठाया और उसका हाथ वर के हाथ में दे दिया और कहा कि – "संसार की हर वस्तु तभी आगे बढ़ती है जब एक शक्ति का रूप ग्रहण करती है और दूसरी वस्तु के साथ मिल जाती है। जीवन में आगे बढ़ने के लिये, उन्नति के पथ पर चढ़ने के लिये मैं तुम दोनों को मिलाता हूं।"[1]

सरदार अजीत सिंह एक क्रांतिकारी थे और उनके लिये विवाह बड़ों की खुशी तथा परिस्थितियों के कारण एक कर्तव्य था परन्तु श्रीमती हरनाम कौर जी के विवाह बंधन के रूप में अनेकों सपने थे। विवाह के बाद अजीत सिंह दो दिन घर में रहते और उसके बाद चले जाते और कब आयेगें यह पता नहीं रहता था। इस प्रकार हरनाम कौर जी का जीवन प्रतीक्षा में ही बीतने लगा। और उसके बाद अजीत सिंह को अंग्रेजों ने गिरफ्तार करके माण्डले भेज दिया। इस प्रकार हरनाम कौर का जीवन प्रतीक्षा के कष्ट में बीतने लगा। माण्डले से अजीत सिंह

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–103

जी की रिहाई हुई जिससे वे अत्यन्त प्रसन्न हुयी, लेकिन यह प्रसन्नता भी उन्हें ज्यादा दिन नसीब नहीं हुई क्योंकि जेल से छूटने के बाद वे घर पर न रहकर पुनः अपने क्रांतिकारी कार्यों को करने के लिये चले गये और उनको अंग्रेजी सरकार से बचने के लिये देश छोड़कर विदेश जाना पड़ा। इस प्रकार श्रीमती हरनाम कौर जी की प्रतीक्षा का कोई अंत नहीं था।

उन्होने अपना जीवन सास–ससुर की सेवा कर घर के कार्यों में लगा दिया। इसके अतिरिक्त मातृत्व के रूप में सरदार किशन सिंह, जगत सिंह और भगत सिंह को पालने में अपना समय व्यतीत करने लगी। परन्तु यह सुख भी उन्होने ज्यादा दिन नहीं देखा। जगत सिंह की अकाल मृत्यु हो गयी और वह अपने मे ही गुम हो गयी। श्रीमती हरनाम कौर, सरदार भगत सिंह को बहुत प्यार करती थी। वे भी जब उनकी आंखों में आंसू देखते वो आंसुओं को पोंछते हुये कहते थे– "चाची जी मैं जरूर चाचा जी को वापिस लाऊंगा।"

इस प्रकार जीवन भर पति की प्रतीक्षा, भगत सिंह की फांसी इन सभी दुखों में वह जीवित रही और सोचती रही कि कभी तो उनके पति वापिस आयेगें और 39 वर्षों के पश्चात जब वे वृद्ध हो गयीं तब 1947 ई0 में अजीत सिंह वापिस भारत आये। इतने सालों के बाद प्रतीक्षा की घड़ी समाप्त हुयी और वे अपने पति अजीत सिंह जी से मिली और उनके साथ रही। लेकिन यह सुख भी उन्हें ज्यादा दिन नसीब नहीं हुआ और 15 अगस्त 1947 की सुबह ही अजीत सिंह की मृत्यु हो गयी। मरने के पहिले उन्होने श्रीमती हरनाम कौर जी के पैर छूकर माफी मांगी। वे पीछे हट गयीं लेकिन अजीत सिंह को यह आभास था कि एक पति के रूप में उन्होने हरनाम कौर जी को कोई सुख नहीं दिया। इस प्रकार से वे एक पत्नी के रूप में पुनः अकेली हो गयी।

श्रीमती हरनाम कौर जी की इच्छा थी कि मरने के बाद उनका दाह संस्कार भगत सिंह की समाधि के पास किया जाये और 1962 ई0 में संयोग से वह फिरोजपुर में थी वहीं पर उनका देहान्त हो गया और उनकी इच्छानुसार उनका दाह संस्कार शहीद भगत सिंह की समाधि के पास ही किया गया। इस प्रकार श्रीमती हरनाम कौर जी भारतीय नारियों में एक महान उपलब्धि हैं।

भगत सिंह के चाचा सरदार स्वर्ण सिंह :

सरदार अर्जुन सिंह के तीन बेटों में सबसे छोटे बेटे का नाम सरदार स्वर्ण सिंह था। जिस परिवार में पिता व दो बड़े भाई भारत माता के लिये समर्पित थे। ऐसे परिवार के होते हुये भला सरदार स्वर्ण सिंह किस प्रकार से क्रांति के पथ से अछूते रह सकते थे। स्वर्ण सिंह जी का जन्म जिला जाल–घट के खटकड़ कलां में 1887 में हुआ था। जब ये मात्र 16–17 वर्ष के हुये उसी समय राजपूताना में जबर्दस्त अकाल पड़ा और सरदार किशन सिंह जी सेवा के उद्देश्य से पहुंचे। उन्होने अकाल पीडितों की सेवा की और जिन बच्चों के मां बाप मर गये थे ऐसे अनाथ बच्चों को वे अपने साथ लाये और लाला लाजपत राय की सलाह लेकर लाहौर के मोरी दरवाजा पर एक अनाथालय खोला।

सरदार स्वर्ण सिंह को उस अनाथालय का सुपरिटेण्डेन्ट बनाया। स्वर्ण सिंह जी ने अनाथ बच्चों की देखभाल के साथ उन्हें देशभक्ति की चिनगारियां देने का कार्य किया तथा देश की गुलामी से अवगत कराया। इस अनाथालय की गिनती लाहौर की सफल संस्थाओं में होने लगी। जिसकी सफलता 6 अप्रैल 1919 ई0 में रौलेट ऐक्ट के विरोध में लाहौर के एक जलसे में सामने आयी। जिसमें खुशीराम और उनके साथी फकीरचन्द्र ने पुलिस को ललकारते हुये गोली खायी। यह सरदार स्वर्ण सिंह द्वारा अनाथालय के बच्चों को देशभक्ति का पाठ पढ़ाने का प्रभाव था।

सरदार स्वर्ण सिंह 'भारत माता सोसाइटी' के प्रचार मंत्री थे। 1905–06 में जब सरदार अजीत सिंह ने पगड़ी सम्भाल जट्ठा आंदोलन चलाया उनको व्यापक रूप देने के लिये सरदार स्वर्ण सिंह चुपचाप गांव गांव के चक्कर काटे और इसे संगठित करने में दिन रात लगे रहे। इस प्रकार स्वर्ण सिंह जी प्रचार कार्य के आचार्य थे। उस समय में चुपचाप बात को फैलाना, कनस्तर पीटकर भीड़ करना तथा उर्दू की पत्रकारिता को खुली चिट्ठियों का प्रकाशन करना भी उन्हीं की देन है। उनके पत्रों की भाषा इतनी तीखी होती थी कि पाठकों का मन जीत लेती थी। अंग्रेजी सरकार भड़कती थी किन्तु उन्हें या सम्पादकों को कानून की पकड़ में नहीं ले पाती थी।

इन्हीं दिनों सरदार अजीत सिंह जो माण्डले भेज दिये गये और बड़े भाई किशन सिंह फरार होकर नेपाल चले गये। सरदार स्वर्ण सिंह ने अजीत सिंह के निवासिन पर गर्भ लेख लिखे और उन्हें गुप्त रूप से छिपाकर जनता में बांटे। उसी समय एक मामूली से घटना घटित हुयी। एक अंग्रेज पुलिस सुपरिडेण्टेन्ट ने सुअर का शिकार करके बैरा से उठाने को, वह मुसलमान था इसलिये इस्लाम से सुअर हराम होता है। जिस पर अंग्रेज आफीसर ने बैरा को गोली मार दी यह समाचार पत्रों में छप गया। 'पंजाबी' नामक अंग्रेजी अखबार के मालिक श्री जसबन्त राय व सम्पादक श्री के0के0 उथावले पर मुकद्दमें चले जिससे उन्हें दो दो साल की कैद हो गयी। इससे जनता में जोश आया। जलसे हुये व जुलूस निकाले गये। लाहौर में जुलूस का नेतृत्व स्वर्ण सिंह जी ने किया।

20 जुलाई 1907 ई0 में सरदार स्वर्ण सिंह व उनके साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें 1 व 1½ वर्ष की सजा दी गयी। सरदार स्वर्ण सिंह को बोर्स्टस जेल लाहौर में रखा गया। उन्हें तरह–तरह की यातनायें दी गयी। बाद में अपील करने पर चीफ कोर्ट ने उन्हें जमानत पर रिहा कर दिया।

वहां से छूटकर वे पुनः भारत माता सोसाइटी के कार्यों में लग गये। सरदार स्वर्ण सिंह क्रांति के नेता नहीं थे वे तो उसे एक राजदूत थे। अंग्रेजी सरकार यह भली प्रकार समझती थी कि जो भी क्रांतिकारी गुप्त साहित्य छापता है और गांव गांव में पहुंचाया जाता है उसके पीछे सरदार स्वर्ण सिंह का हाथ है किन्तु जहां भी छापा मारा गया और जो भी साहित्य अंग्रेजों की पकड़ में आया उसमें कहीं भी स्वर्ण सिंह जी का नाम नहीं आया।

अंत में अंग्रेजी सरकार ने विशेषज्ञों को सरदार स्वर्ण सिंह के खिलाफ मुकदमा बनाने और उन्हें फंसाने का कार्य सौंपा। इस प्रकार सरदार स्वर्ण सिंह उनके साथी लालचन्द्र फलक पर कई मुकदमें एक साथ चलाये गये। और उन्हें जेल में डाल दिया गया। जेल में स्वर्ण सिंह जी को बहुत ही खराब खाना दिया जाने लगा। एक बार एक पेशी में सरदार किशन सिंह घर से स्वर्ण सिंह के लिये खाना लेकर गये। सरदार स्वर्ण सिंह ने मजिस्ट्रेट से कहा कि मैं भूखा हूं, पहले मुझे खाना खाने दो फिर बाद में मुकदमें की बात होगी। सरकारी वकली पिटमैन ने गुर्राकर कहा कि पहले मुकदमें की कार्यवाही होगी बाद में तुम खाना खा सकते हो।[1] सरदार स्वर्ण सिंह अड़ गये और खाना खाने लगे। इस पर पिटमैन बहुत नाराज हो गया। सरदार स्वर्ण सिंह को 1½ वर्ष की सख्त कैद की सजा दी गयी। जेल के अधिकारी यह समझ गये कि स्वर्ण सिंह जी का मन पत्थर का है परनतु तन बहुत कोमल है। उन्होने स्वर्ण सिंह को काल कोठरी में रखा तथा उन्हें चक्की व कोल्हू में काम करवाया तथा इसके साथ ही बहुत ही कम व गंदी खुराक दी इससे पहले उन्हें कमजोरी और फिर बुखार व खांसी आने लगी और फिर खांसी में थूक के साथ खून आने लगा। जेल में ही डाक्टर बुलाया गया। जांच के बाद उसने बताया कि इन्हें तपेदिक हो गया है और भी सेकेण्ड

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–116

स्टेज का। उनका बचना असम्भव है। इस पर जेल ने प्रस्ताव किया कलेक्टर ने समर्थन किया। और गवर्नर ने छोड़ने की अनुमति प्रदान कर दी।

जेल से छूटकर वह घर पर आ गये। घरवालों ने बहुत इलाज कराया। उनकी पत्नी ने बहुत सेवा की। लगभग 1½ वर्ष तक स्वर्ण सिंह जी रोग शैय्या पर पड़े रहे। और 1910 ई0 में 23 वर्ष की भरी जवानी में वे अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गये। इस प्रकार वे अंग्रेजों के अत्याचार के शिकर बने।

भगत सिंह की चाची श्रीमती हुकुम कौर :

श्रीमती हुकुम कौर सरदार स्वर्ण सिंह जी की पत्नी थी। 23 वर्ष की भरी जवानी में सरदार स्वर्ण सिंह श्रीमती हुकुम कौर को अकेला छोड़कर चले गये। और उन्होने पूरा जीवन अकेले बिताया जिसमें कोई अरमान नहीं थे और न ही कोई आस थी। श्रीमती हुकुम कौर एक साधारण परिवार की बेटी थी और कई भाइयों के बीच में अकेली बहिन थी। जब वह 20 वर्ष की थी उस अवस्था में वह विधवा हो गयी। विधवा होने पश्चात वह दूर बैठे अपने भाइयों का स्मरण करके अपने जीवन को ढाढ़स देती थी परन्तु भाग्य ने यहां पर भी उनका साथ नहीं दिया और एक एक करके उनके सभी भाई व भाभियों की मृत्यु हो गयी।

करूणा की प्रतिमा श्रीमती हुकुम कौर जी ने इनते दुखों के बाद भी परिवार के प्रति पूर्ण उत्तरदायित्व निभाया। सुबह 4 बजे उठकर वे घर गृहस्थी के सभी कार्यों को अत्यन्त जिम्मेदारी से करती थी। सरदार स्वर्ण सिंह जी 1½ वर्ष तक रोगग्रस्त होकर रोग शैय्या पर पड़े रहे। इस दौरान हुकुम कौर जी ने उनकी अत्यन्त सेवा की। उन्होने हर पल मौत को नजदीक से नजदीक आते देखा और एक दिन 1910 ई0 में स्वर्ण सिंह जी उनको सदैव के लिये छोड़कर चले गये। इस प्रकार न उन्हें एक पति का पूर्ण सुख मिला और न ही मां के रूप में सुख मिला।

मातृत्व का सुख उन्होने जगत सिंह और भगत सिंह को पालने में पूरा किया परन्तु इससे भी भाग्य ने उन्हें वंचित कर दिया क्योंकि जगत सिंह की मृत्यु बचपन में हो गयी और भगत सिंह को भरी जवानी में फांसी हो गयी। इस प्रकार उनका जीवन पुनः सूना हो गया और इसके पश्चात उन्होंने कुलतार सिंह को अपने बेटे की तरह पाला। अब कुलतार सिंह माण्ट गूमरी जेल में नजरबंद थे तब बहुत दिनों बाद मुलाकात की मंजूरी मिली किन्तु जेल में माता पिता पत्नी भाई बहिन ही मिल सकते थे। और श्रीमती हुकुम कौर कुलतार सिंह की इनमें से कुछ भी न थी। घरवाले उन्हें बहिन बनाकर ले गये और सिखाया कि पूछने पर वे अपना नाम सुमित्रा या शकुन्तला बतायें, किन्तु उन्होने अपना नाम हुकुम कौर ही बता दिया। इससे उनको अंदर जाने से रोक दिया गया। इस पर वह जेल के द्वार पर ही बैठकर जोर जोर से रोने लगी– ''काका कुलतार सिंह मैं बाहर हूं मैने तुम्हें जन्म ही तो नहीं दिया पाल पोषकर तो बडा किया है और फिर मैं गैर कैसे हो गयी उनके विला से व्यथित होकर जेल वालों ने जेल की डयूटी पर कुलतार सिंह को लाकर उनसे मिला दिया।''[1] वे कुलतार सिंह से लिपटकर रोने लगी तथा बोली कुलतार मेरी जिन्दगी तो कट गयी पर सतीन्द्र कौर (श्री कुलतार सिंह की पत्नी) का क्या होगा इस घटना से पता चलता है कि उनमें कितना प्रेम था जो जीवन वे जी रही थी वे नहीं चाहती थी कि वहीं जीवन सतीन्द्र कौर जियें और उनकी तरह ही कष्टों को सहे।

इस प्रकार 1910 में विधवा होने के पश्चात अपना सम्पूर्ण जीवन दुखों और कष्टों में बिताकर 1966 में वह मृत्यु को प्राप्त हो गयी। जनवरी 1966 में लालबहादुर शास्त्री जी की भी मृत्यु हुयी थी जिसका उन्हें गहरा सदमा लगा था क्योंकि एक शहीद की पत्नी की भावना उनसे जुडी हुयी थी।

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–124
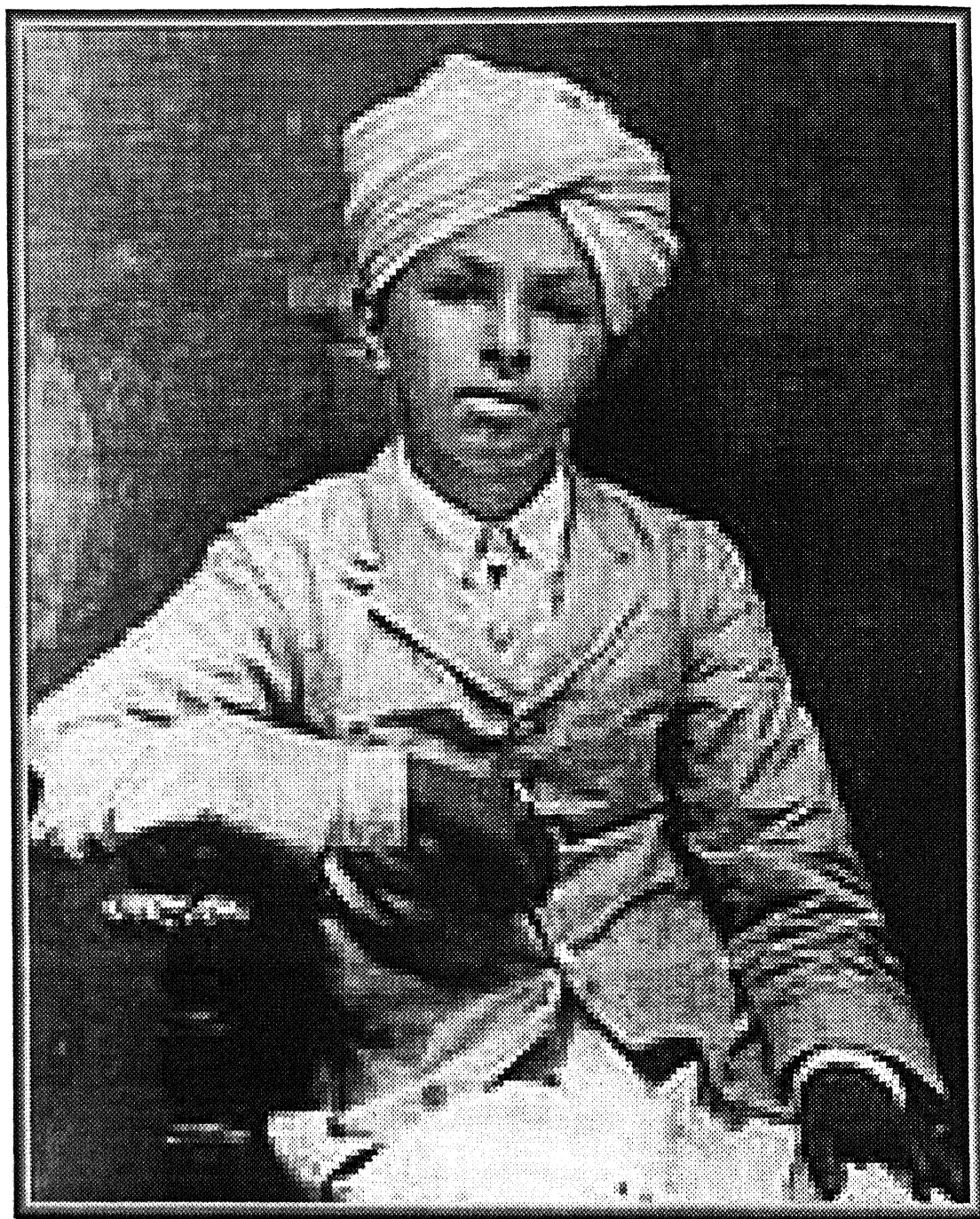
दसवर्षीय भगत सिंह

शहीदों के शहीद अमर क्रांतिकारी सरदार भगत सिंह

प्रारम्भिक जीवन :

"विश्व में हर तिथि को अनेकों बालकों का जन्म होता है परन्तु जिनके जन्म के कारण वह तिथि ही इतिहास में स्मरणीय हो जाती है और स्वयं इतिहास बन जाती है।"

ऐसी ही इतिहास में एक स्मरणीय तिथि 28 सितम्बर 1907 ई0 की मानी जाती है जिस दिन शहीदों के शहीद सरदार भगत सिंह जी का जन्म हुआ था। सरदार भगत सिह ने लायलपुर जिले के एक प्रसिद्ध सिख परिवार में जन्म लिया था[1]। 1907 ई0 में आश्विन शुक्ल त्रयोदशी सम्वत् 1964 विक्रमी शनिवार प्रातः लगभग 9 बजे ग्राम बंगा जिला लायलपुर (पाकिस्तान) में सरदार भगत सिंह का जन्म हुआ था।

जिस दिन सरदार किशन सिंह और सरदार स्वर्ण सिंह जेल से छूटे और उसी दिन सरदार अजीत सिंह के माण्डले से निर्वासन की सूचना आयी। उसी दिन सरदार भगत सिंह का जन्म हुआ था। यह दिन इस परिवार के लिये अत्यन्त ही शुभ था। इसीलिये भगत सिंह की दादी श्रीमती जयकौर ने इन्हें भाग्यों वाला भाग्यवान कहा और इनका नाम भगत सिंह रखा। इनके बड़े भाई का नाम जगत सिंह था इसलिये इनका नाम भगत सिंह उचित था। जन्म से ही उनका व्यक्तित्व रूपवान और बलिष्ठ था। वह बहुत ही आकर्षक व्यक्तित्व के मालिक थे। घर के सभी सदस्य उन्हें बहुत ही प्यार करते थे जिस समय सरदार अजीत सिंह को विदेश जाना पड़ा उस समय भगत सिंह की आयु 2 वर्ष से भी

---

1. अमर शहीद सरदार भगत सिंह, जितेन्द्र नाथ सान्याल, पेज नं0–25

कम थी।[1] अजीत सिंह को भगत सिंह से बहुत प्यार था और भगत सिंह भी उन्हें बहुत चाहते थे। घर में एक झरोखेदार दीवार थी। भगत सिंह झरोखे में से अजीत सिंह को देखकर किलकारी मारते थे और छिप जाते थे। चाचा भतीजा काफी देर तक यह आंख मिचौली का खेल खेलते रहे। भगत सिंह की अवस्था उस समय 1 वर्ष की थी और चाचा अजीत सिंह से यह उनकी आखिरी मुलाकात थी।[2]

जिस समय भगत सिंह की उम्र 2 या 3 वर्ष की थी उस समय खेतों में नये बाग लग रहे थे और पौधे रोपे जा रहे थे। एक दिन उनके पिता अपने एक मित्र नंदकिशोर मेहता के साथ बाग देखने गये तो अपने पुत्र भगत सिंह को भी साथ ले गये। वहां पहुंच कर भगत सिंह अपने पिता से उंगली छुड़ाकर जमीन पर बैठ गये और खेत में पौधों की तरह तिनके रोपने लगे पिता ने आश्चर्य से पूछा कि ''क्या कर रहे हो भगत, वे बोले कि बंदूके बो रहा हूं।'' यह सुनकर दोनों मित्र आश्चर्य चकित हो गये।

भगत सिंह की दोनों चाचियां श्रीमती हरनाम कौर और श्रीमती हुकुम कौर उनको बहुत प्यार करती थी। वह भगत सिंह को गोद में लिटा लेती थी और वात्सल्य का अनुभव करती थी। तथा कई बार उन्हें प्यार करते हुये रोने लगती थी। इस पर भगत सिंह श्रीमती हरनाम कौर जी के आंसुओं को पोंछते हुये कहते कि– ''चिन्ता न करो चाची मैं बड़ा होकर अंग्रेजों को मार भगाऊंगा और चाचा जी वापिस आ जायेगें।'' तथा दूसरी चाची श्रीमती हुकुम कौर के आंसू पोंछकर कहते थे कि ''मैं बड़ा होकर अंग्रेजों से चाचा जी की मौत का बदला लूंगा।'' और कभी कभी वह अपने चाचियों के आंसू पोंछते–पोंछते स्वयं भी रोने लगते थे।

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–128
2. भगत सिंह का एक ज्वलंत इतिहास, हंसराज रहवर, पेज सं0–42

इस प्रकार उनका बचपन अपने बाबा सरदार अर्जुन सिंह के संरक्षण में तथा माता पिता दादी, चाचियों की छत्रछाया में बीता। घर में क्रांतिकारी वातावरण होने के कारण उनमें समय से पहिले ही गंभीरता आ गयी। और बचपन से ही उनका मस्तिष्क क्रांति की दिशा की ओर जाने लगा।

भगत सिंह की प्रारम्भिक शिक्षा एवं स्वतन्त्रता आंदोलन में सम्मिलित होने की प्रेरणा

भगत सिंह जी की प्रारम्भिक शिक्षा बंगा गांव में ही प्राइमरी स्कूल से प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ से ही वह पढ़ने लिखने में बहुत योग्य थे। तथा स्कूल में एक श्रेष्ठ विद्यार्थी के रूप में ही उभर कर सामने आये। उनकी लिखाई बहुत ही सुन्दर थी। अध्यापकों के लिये वह बहुत शालीन थे और अपने साथ पढ़ने वाले विद्यार्थियों के हमदर्द के रूप में रहे। इस प्रकार स्कूल उनके व्यवहार से उनके लिये एक परिवार की तरह ही हो गया।

भगत सिंह के दादा अर्जुन सिंह जी धर्म पुरूष और कर्म पुरूष दोनों ही थे। तथा दोनों ही रूपों में राष्ट्रीयता थी। परन्तु भगत सिंह जी ने अपने दादा से कर्म का प्रभाव ग्रहण किया, धर्म का नहीं। धर्म के प्रति वह उदासीन रहने लगे। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व लौह व्यक्तित्व के रूप में उभरने लगा। वह बचपन से ही सबको अपना मित्र कहते थे, चाहे वह उनकी कमीज सिलने वाला दर्जी ही क्यों न हो।

तीसरी कक्षा तक पहुंचने पर भगत सिंह क्रांति का थोड़ा बहुत स्वरूप समझने लगे और चौथी कक्षा तक पहुंचने पर अपने साथियों से पूछने लगे कि बड़े होकर तुम क्या बनोगे, कोई नौकर कोई किसानी तथा शादी आदि के लिये कहता परन्तु भगत सिंह का जबाब होता कि ''मैं तो बड़े होकर अंग्रेजों को भगाऊंगा।'' चौथी कक्षा में ही इन्होने अपनी पढ़ाई के साथ–साथ सरदार अजीत सिंह, सूफी अम्बा प्रसाद, लाला हरदयाल की लिखी किताबें तथा घर में रखे हुये पुराने समाचार पत्रों का अध्ययन कर लिया और तब उन्हें चाचा अजीत सिंह के निर्वासन, अंग्रेजों की नीति आदि की जानकारी हुई। इस प्रकार लोकप्रियता के चरम शिखर पर वे अंत में पहुंचे किन्तु उसका शिलान्यास बचपन में ही हो गया था।

इसके बाद प्राईमरी शिक्षा अपने दादा अर्जुन सिंह के पास से प्राप्त करने के बाद भगत सिंह लाहौर अपने माता पिता के पास चले गये। लाहौर में सिक्ख बालकों के लिये खालसा स्कूल थे। किन्तु उनका प्रबन्ध अंग्रेजी सरकार परस्त लोगों के हाथ में था। और उसमें प्रार्थना 'God Save the King' ईश्वर राजा की रक्षा करें, गाई जाती थी इसलिये अर्जुन सिंह ने बेटों की तरह अपने पोतों को भी डी.ए.वी. में भर्ती करवाया। भगत सिंह ने अपने लेख में नास्तिक क्यों हूं में बताया है– "मैं अपनी प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई समाप्त करके लाहौर के डी.ए.वी. स्कूल में दाखिल हो गया और बोर्डिंग हाउस में पूरा एक साल बिताया। वह सुबह शाम की संध्या प्रार्थना के अतिरिक्त घंटों गायत्री मंत्र का जाप किया करता था। मैं उन दिनों पूरा श्रद्धालु था फिर मैने अपने पिता के साथ रहना शुरू किया। उनका धार्मिक दृष्टिकोंण उदार था। उनसे प्रेरणा पाकर मैने अपना जीवन आजादी के आदर्श के लिये समर्पित किया।"[1]

इस प्रकार वे उस अवस्था में ना ही क्रांतिकारी थे और न ही नास्तिक। ये दोनों ही वे बाद में हो गये।

जब भगत सिंह पांचवी कक्षा में पढ़ रहे थे तो उनकी उचित शिक्षा के लिये सरदार किशन सिंह ने ट्यूशन का प्रबन्ध किया। और एक दिन उनके अध्यापक से पूंछा कि "आप का शिष्य ठीक पढ़ रहा है।" इस पर अध्यापक ने उत्तर दिया कि– "वह तो शिष्य क्या स्वयं गुरू है। मैं उसे क्या पढ़ाऊं लगता है कि वह पहले से ही सब कुछ पढ़ा हुआ है।"[2]

जिस समय प्रथम विश्व युद्ध चल रहा था उस समय 1915 ई0 में गदर पार्टी के नेताओं ने गदर करने की योजना बनायी किन्तु किन्हीं कारणवश

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 45
2. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–132

यह असफल हो गया। और उसके बाद नेताओं की गिरफ्तारी, मुकदमें, फांसी व किसी को काले पानी की सजा आदि की वारदातें हुई। भगत सिंह ने सभी समाचार पत्रों को बड़े ध्यान से पढ़ा और उनका मन इन सब घटनाओं से आंदोलित हो उठा।[1] 22 जुलाई 1918 ई0 को भगत सिंह ने अपने दादा अर्जुन सिंह को एक पत्र उर्दू में लिखा था जो 23 जुलाई 1918 ई0 को उन्हें प्राप्त हुआ। इसकी तारीख का पता डाकखाने की मुहर से लगता है।–

ओउम्

श्रीमान् पूज्य बाबा जी,

नमस्ते

अर्ज यह है कि खत आपका मिला पढ़कर दिल को खुशी हासिल हुई। इम्तहान के बावत यह है कि मैने पहले इस वास्ते नहीं लिखा था, कि हमें बताया नहीं था। अब हमें अंग्रेजी व संस्कृत का बताया है। उनमें मैं पास हूं। संस्कृत में मेरे 150 नम्बरों में से 110 नम्बर हैं। अंग्रेजी में 150 में से 68 नम्बर हैं। जो 150 नम्बरों में 50 नम्बर ले आये वो पास होता है। नम्बर 68 से अच्छा पास हो गया हूं। किसी किस्म की फिकर न करें। बाकी नहीं बताया और छुट्टियां 8 अगस्त को पहली छुट्टी होगी। अब कब आयेगें तहरीर फरमायें।

आपका ताबेदार
भगत सिंह[2]

इस पत्र से भगत सिंह के बात कहने का सलीखा तथा स्वभाव में भोलेपन और चार्तुय को स्पष्ट करता है। 150 में से 50 नम्बर पास बताकर उन्होने यह सिद्ध किया कि उनके बाबा अर्जुन सिंह पर कोई बुरा असर न पड़े। पढ़ाई के साथ–साथ वे खेलों में भी रूचि रखते थे।

---

1. सरदार भगत सिंह– पत्र और दस्तावेज, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–9
2. सरदार भगत सिंह– पत्र और दस्तावेज, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज नं0– 9

भगत सिंह का आंदोलन में सम्मिलित होना एवं प्रारम्भिक कार्य (1922 तक)

1919 ई0 में महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आंदोलन चलाया गया। उस समय वे सातवीं कक्षा में पढ़ते थे। इस आंदोलन के जलसों में वे जाते थे। और उसके जोश भरे भाषणों को सुनते थे। 3 अप्रैल 1919 ई0 में जालिया बाला बाग का हत्याकांड हुआ। उससे बहुत ही अशांति फैली। और ऐसे में इस घटना के ठीक दूसरे दिन भगत सिंह स्कूल से समय पर नहीं लौटे। घरवालों को चिन्ता सताने लगी। भगत सिंह स्कूल से सीधे उस घटना वाली जगह पर पहुंचे और खून से सनी हुई मिट्टी को देखने लगे और एक शीशी में थोड़ी सी खून से लथपथ मिट्टी भकर घर आ गये।

देर से घर पहुंचने पर उनकी बहिन अमर कौर सामने ही मिल गयी और उसने पूंछा कि– ''वीरा जी आज आप इतनी देर से क्या आये'' और उसे आम खाने को कहा लेकिन भगत सिंह बहुत उदास थे जिसे देखकर उसने घबरा कर पूंछा– ''आपकी तबियत खराब है।'' इस पर भगत सिंह ने बड़े ही शांत स्वर में उससे कहा कि ''खाने की बात मत करो मैं तुम्हें एक चीज दिखाता हूं।'' और उस शीशी को दिखाकर कहा कि ''अंग्रेजों ने हमारे बेहद आमदी मार दिये।'' और उस पर श्रद्धा से एक फूल चढ़ा दिया तथा कई दिनों तक उस पर फूल चढ़ाते रहे और यह सिलसिला कई दिनों तक चलता रहा क्योंकि यह उनकी तरफ से बलिदानों के लिये वन्दना थी।

पंजाब में अकाली आंदोलन गुरूद्वारों को राजभक्त महन्तों के हाथों से मुक्त कराने के लिये चला। इसके अन्तर्गत जो भी कांड हुये वह भगत सिंह ने अपनी आंखों से देखे। ''21 फरवरी 1921 ई0 को महन्त नारायण दास ने

ननकाना साहब में 150 सिक्खों की निर्दयता पूर्वक हत्या कर दी। कुछ को खोलते तेल के कढ़ाओं में जिंदा डाल दिया। भगत सिंह ने लाहौर से बंगाल जाते हुये इस दृश्य को अपनी आंखों से देखा।''1

इस घटना से पंजाब में जबरदस्त आंदोलन महन्तों की मदद करने वाली अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध काली पगड़ी पहनने तथा पंजाबी भाषा पढ़ने के लिये चला। सरदार अर्जुन सिंह जो कट्टर आर्य समाजी थे उन्होने भी काली पगड़ी बांधकर इस आंदोलन का समर्थन किया। और भगत सिंह व उनकी बहिन अमृत कौर का पंजाबी पढ़ना लिखना शुरू हो गया। भगत सिंह ने पंजाबी भाषा में पहला पत्र अपनी चाची हुकुम कौर को लिखा जो इस प्रकार है–

5 नवम्बर 1921

मेरी परम प्यारे चाची जी,

नमस्ते

मुझे खत लिखने में देरी हो गयी है सो उम्मीद है कि आप मुआफ करेगी। भापा जी (पिता किशन सिंह दिल्ली गये हुये हैं। बेबे (माता विधावती) मौरों वाली गई हुई हैं। बाकी सब राजी खुशी है। बड़ी चाची जी को मत्था टेकना। माता जी (दादी जयकौर) को भी मत्था टेकना। कुलतार, कुलवीर सिंह को सतश्री अकाल वा नमस्ते।

आपका आज्ञाकारी,

भगत सिंह

सन् 1921 में वे नवीं क्लास में पढ़ रहे थे। उन्हीं दिनों कांग्रेस का असहयोग आंदोलन अपने चरम शिखर पर था। भगत सिंह भी डी.ए.वी. स्कूल से पढाई छोड़कर आंदोलन में भाग लेना चाहते थे। और इसके लिये उन्होने अपने

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 49

मित्र श्री जयदेव गुप्ता के जरिये अपने पिता श्री किशन सिंह से आज्ञा मांगी उन्होने इसकी इजाजत दे दी और पढ़ाई छोड़कर भगत सिंह अपनी साथियों की टोली बनाकर विदेशियों के वहिष्कार के लिये घर घर जाकर विदेशी वस्त्र मांगकर उसका जुलूस निकालकर किसी चौराहे पर होली जलाने लगे। श्री अजय घोष ने भगत सिंह की शहादत के बाद कहा था।–

''जो व्यक्ति भी कभी उनसे मिला, उस पर उनकी असाधारण प्रतिभा तथा बड़प्पन का गहरा प्रभाव पड़ा। इसका कारण यह नहीं था कि वह बहुत अच्छे वक्ता थे, वरन यह कि उनकी बातों में इतना जोश, इतना बल, और ऐसी शालीनता होती थी कि कोई भी व्यक्ति उनसे मिलने पर उनसे प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता था।''[1]

जब यह आंदोलन बहुत ही जोश में चल रहा था। उसी समय 1922 में गोरखपुर जिले में चौरी चौरा कांड हो गया। और कांग्रेस ने असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया। इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय विद्यालय खोलने, कांग्रेस में नये सदस्य बनाने, मरने का प्रचार, मादक वस्तुओं का निषेध, आदि अनेकों योजनायें थी। पंडित मोतीलाल नेहरू तथा लाला लालपत राय इसी आंदोलन के कारण जेल में थे। उन्होने गांधी जी को पत्र भी लिखे। 1922 में महासमिति की दिल्ली की बैठक में डा0 मुंजे तथा अन्य सदस्यों ने भी निंदा का प्रस्ताव रखा।

इन सभी घटनाओं से सरदार भगत सिंह के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा और वे सोचने लगे कि दो चार जगह पर होने वाली हिंसक घटनाओं के कारण देशव्यापी आंदोलन स्थगित कर दिया गया। हम देशवासी आजादी के लिये आंदोलन कर रहे हैं या हिंसा अहिंसा के बाद विवाद कर रहे हैं। अतैव

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–135

हमारे आंदोलन का उद्देश्य क्या है। और इससे उनके विचारों में परिवर्तन आया क्योंकि उसी समय एक 19 वर्ष का युवक सरदार करतार सिंह गदर मचाने की तैयारी में अंग्रेजों के द्वारा पकड़े गये। और फांसी की सजा पाकर हंसते–हंसते शहीद हो गये। इस घटना की गहरी छाप उनके व्यक्तित्व पर पड़ी वे करतार सिंह से बहुत प्यार करते थे और हंसते हुये मृत्यु को गले लगाने की छाप उन पर पड़ी। इस प्रकार आगे चलकर क्राति के मार्ग में जो ऐतिहासिक सफलता भगत सिंह को मिली उसका बीज उन जीवन में इसी स्थान पर पड़ा था। भगत सिंह ने बाद में 'शहीद करतार सिंह सराबा' शीर्षक पर लेख लिखा जो इस प्रकार है–

''रणचण्डी के इस परम भक्त बागी करतार सिंह की उम्र उस समय 20 वर्ष की भी नही हुई थी। जब उन्होंने स्वतन्त्रता की देवी की बलिबेदी पर अपनी कुर्बानी दे दी। आंधी के सदृश्य वे यकायक कहीं से आये। आग भड़काई और सपनों में डूब रणचण्डी को जगाने का प्रयास किया। बगावत का यज्ञ रचाया और आखिर वह खुद उसमें भस्म हो गये। वे क्या थे, किस दुनियां से अचानक आये और चटपट किस घर चले गये, हम कुछ भी न जान सके। 19 वर्ष की आयु में ही उन्होंने इतने काम कर दिखाये कि सब हैरान रह गये। इतना साहस, इतना आत्म विश्वास इतना आत्म त्याग और इतनी लगन कम देखने को मिलती है।''1

जब यह घटना घटित हुई थी उस समय भगत सिंह की अवस्था निर्णय लेने की नहीं अपितु जिज्ञासा की थी और यह बात उनके मन में समा गई कि अहिंसा का मार्ग आजादी को लक्ष्य तक पहुंचाने में सफल नहीं हो सकता

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 47

और इस प्रकार की जिज्ञासा ही उन्हें अपने मार्ग को खोजने के लिये सबसे बड़ी उपलब्धि के रूप में सहायक सिद्ध हुई।

चौरी–चौरा कांड से पहले उन्होंने अपने दादा जी को एक पत्र उर्दू में लिखा था–

ओउम्

लाहौर

मेरे पूज्य दादा साहब जी,

नमस्ते

अर्ज यह है कि इस जगह खैरियत और आपकी खैरियत श्री परमात्मा जी से नेक मतलूब हूं। अहवाल यह है कि मुद्दत से आपका कृपा पत्र नहीं मिला। क्या सबब है। कुलबीर सिंह, कुलतार सिंह की खैरियत से जल्दी मुत्तला फरमाये। बेबे साहबा अभी मौरां वाली से वापस नहीं आयी बाकी सब खैरियत है।

आपका तांबेदार

भगत सिंह[1]

और इस कार्य के पीछे उल्टखाव से छिपाकर जो लाइन लिखी ताकि उनके दादा जी को सूचना मिल जाये वो लाइन यह थी कि– "आजकल रेलवे हड़ताल की तैयारी कर रहे हैं, उम्मीद है कि अगले हफ्ते के बाद जल्दी ही शुरू हो जायेगी।"

---

1. सरदार भगत सिंह– पत्र और दस्तावेज, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–9

भगत सिंह नेशनल कॉलेज में

भग
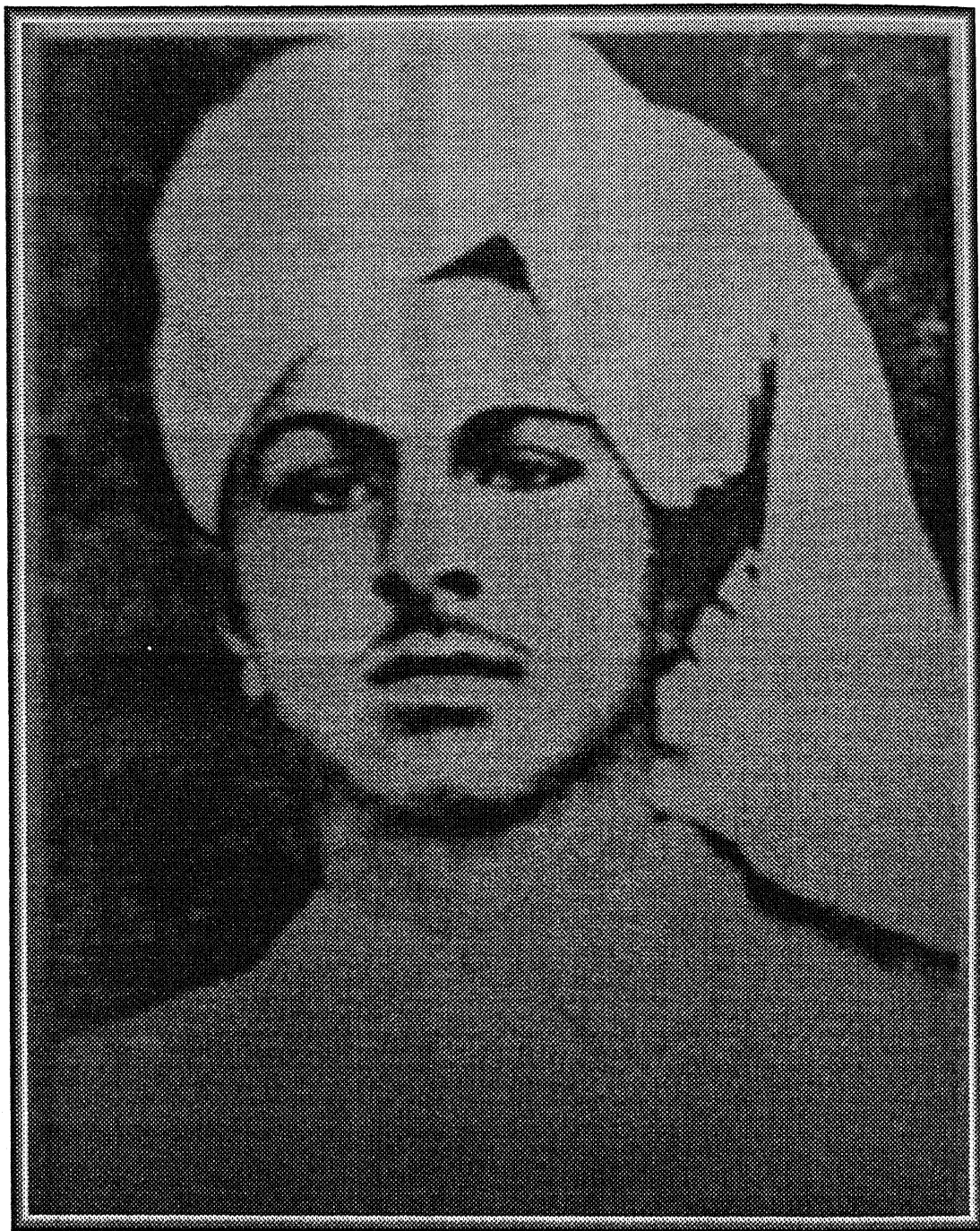
स्कूल कॉलेज

राष्ट्रीय संस्थानों

विद्यापीठ तथा

लाला लाजपत

जिसकी सामान

कॉलेज में उन

छोड़ दी थी,

अध्यापक रखे

तैयार नहीं व

उद्देश्य था

इतिहास के स

होने वाले स

क्रान्तियों का

भाई परमानन्

सभी किसी

आन्दोलन में

कैसे प्रवेश

भगत सिंह का नेशनल कॉलेज में प्रवेश

जिन विद्यार्थियों ने असहयोग आन्दोलन में शामिल होने के लिये स्कूल कॉलेज छोड़ दिये थे। उन विद्यार्थियों के लिये देश के विभिन्न भागों में राष्ट्रीय संस्थानों की स्थापना की गयी। उसमें बनारस में काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ तथा पटना में बिहार विद्यापीठ की स्थापना हुयी। उसी प्रकार लाहौर में लाला लाजपत राय और अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स जिसकी सामान्य भाषा में नेशनल कॉलेज कहते हैं, इसकी स्थापना की। इस कॉलेज में उन विद्यार्थियों को जिन्होंने आन्दोलन में भाग लेने के लिये पढ़ाई छोड़ दी थी, प्रवेश दिया गया और उनमें से एक भगत सिंह भी थे।

नेशनल कालेज की यह प्रमुख विशेषता थी कि इसके अन्तर्गत वे अध्यापक रखे गये जो विद्यार्थियों को पास कराने या सरकारी नौकरी के लिये तैयार नहीं करते थे वरन् राष्ट्रीय नेतृत्व के लिये तैयार करना उनका प्रमुख उद्देश्य था तथा इस कालेज के अन्तर्गत राजनैतिक ज्ञानवर्धक व भारतीय इतिहास के साथ विश्व के इतिहास का भी ज्ञान दिया जाता था। जिसमें भारत में होने वाले स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयत्न और विश्व के अनेकों देशों की राज्य क्रान्तियों का इतिहास पढ़ाया जाता था।

इस कालेज में आचार्य जुगल किशोर प्रिन्सिपल तथा अध्यापकों में भाई परमानन्द व श्री जयचन्द्र विद्यालंकार श्री छबील दास जैसे विद्वान थे। ये सभी किसी न किसी रूप में स्वतन्त्रता की लड़ाई से जुड़े हुये थे।

भगत सिंह जी ने नवी क्लास में ही पढ़ाई छोड़कर असहयोग आन्दोलन में भाग लिया था। वे मैट्रिक पास नहीं थे। इस कारण उन्हें प्रथम वर्ष कैसे प्रवेश मिलता। इसके लिये भाई परमानन्द जी ने भगत सिंह की पूरी मदद

की। उन्होंने उनके ज्ञान की जांच की और वे भगत सिंह के व्यक्तित्व वार्तालाप, आदर्शवादी दृष्टिकोण, बुद्धिमत्ता आदि से प्रभावित हुये और उन्होंने दो महीने का विशेष समय भगत सिंह को तैयारी के लिये दिया तथा उसके बाद कालेज में ले लिया। अपने परिश्रम के बल पर भगत सिंह अपने साथियों के साथ ही गये और उनकी पढ़ाई का कार्य सुचारू रूप से चलने लगा।

नेशनल कालेज की शिक्षा अन्य कालेजों से अलग थी। अतः वहां इतिहास, अर्थशास्त्र व राजनीति शास्त्र पढ़ाये जाते थे, का भी प्रबन्ध उचित था, परन्तु कॉलेज के वातावरण में इतिहास की चर्चा विशेष रूप से होती थी। यहां पढ़ाई हिन्दी भाषा में होती थी परन्तु अंग्रेजी भाषा भी पढ़ाई जाती थी क्योंकि पढ़ाई की सभी किताबे अंग्रेजी भाषा में होती थी। कालेज में विद्यार्थियों के लिये खेल तथा शारीरिक व्यायाम का उचित प्रबन्ध नहीं था परनतु विद्यार्थियों के लिये वाद–विवाद का क्षेत्र नियमित रूप से रखा गया था। क्योंकि यही उनके लिये व्यवहारिक ट्रेनिंग होती थी। कालेज के पाठ्य–क्रम में रालेट कमेटी की रिपोर्ट भी आती थी। जिसमें स्वतन्त्रता के प्रयत्नों का वर्णन था। भगत सिंह के मन में असहयोग आन्दोलन के स्थगन से अनेकों जिज्ञासायें थी और इस पाठ्यक्रम के अध्ययन से वे अहिंसा से दूर हो गये। प्रोफेसर जयचन्द्र विद्यालंकार बंगाल के क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में थे और जिन विद्यार्थियों को राजनैतिक बैचेनी होती थी वे सभी विद्यालंकार जी के पास आ जाते थे। भगत सिंह भी इनके सम्पर्क में आ गये। और वे भी इनके व्यक्तित्व तेजस्वी विचार आदि से बहुत प्रभावित थे। इस समय भगत सिंह का एक ही कार्य था जो भी पुस्तक सामने आये उसका गहन अध्ययन करना।

लाला लालपतराय ने द्वारकादास पुस्तकालय की स्थापना भी नेशनल कालेज के साथ ही की थी। और श्री राजराम शास्त्री इस पुस्तकालय के अध्यक्ष

थे। भगत सिंह की इनसे अच्छी मित्रता हो गयी थी और वे इनसे पढ़ने के लिये पुस्तकें लेते थे। इस पुस्तकालय में राजनैतिक चर्चायें व बहस भी होती थी। श्री राजाराम शास्त्री के शब्दों में–

''इस बहस में सरदार भगत सिंह आतंकवाद और समाजवाद दोनों का समर्थन करते थे। जहां भगत सिंह को एक ओर कार्ल मार्क्स प्रभावित करते थे। वहां दूसरी ओर प्रसिद्ध रूसी अराजकतावादी बार्कानन की भगत सिंह भूरि–भूरि प्रशंसा करते थे।''[1]

इन्हीं दिनों में राजाराम शास्त्री जी ने 'अराजकता' पुस्तक पढ़ी। जिसमें एक अध्याय 'हिंसा का मनोविज्ञान' नाम से था। जिसमें फ्रांस के अराजकतावादी नवयुवक बेला के कई बयान थे जो उसने गिरफ्तार होने के बाद अदालत को दिये थे। इसमें असेम्बली में बम फेंकने के लिये कहा गया कि बहरों को सुनाने के लिये ऊंची आवाज का होना आवश्यक है। यह बयान उन्होंने कई विद्यार्थियों को पढ़ाया और जब भगत सिंह को पढाया तो वह खुशी से उछल पड़े जैसे उनको अपने जीवन के लिये कोई मकसद मिल गया हो और उसी समय उसे कापी पर नोट कर लिया।

प्रोफेसर श्री छबीलदास जी ने ''भगत सिंह और नेशनल कालेज'' नामक शीर्षक में लिखा है।

''भगत सिह जहां एक जोशीला इंकलाबी था, वहां वह एक बहुत अच्छा विद्यार्थी भी था। उसका अध्यापक होने के नाते मैं यह बात दावे से कह सकता हूं कि उसे पढ़ाने में बहुत आनन्द आता था। भगत सिंह को पढ़ने का बेहद शौक था। जब किसी भी किताब का नाम उसके सामने लिया गया तो

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–141

उसने फौरन उसे पढ़ने की फरमाइश की। वैसे तो भगत सिंह ने इतिहास की जाने कितनी किताबें पढ़ डाली होगी, लेकिन मुझे अभी तक याद है कि उसे जो किताब सबसे ज्यादा पसन्द थी, वह 'क्राई फार जस्टिस' (न्याय के लिये पुकार) थी। भगत सिंह ने लाल पेंसिल से इस किताब के बहुत से हिस्सों पर निशान लगाये थे। इससे पता चलता है कि उसके हृदय में बेइंसाफी के खिलाफ लड़ने की भावना किस कदर कूट–कूट कर भरी हुई थी।"1

जब भगत सिंह अपने राजनैतिक दृष्टिकोंण के लिये अध्ययन में लगे हुये थे और साथ ही प्रोफेसर श्री जयचन्द्र विद्यालंकार जी का भी उन्हें साथ मिल गया था। उन्हीं के मकान में एक दिन प्रसिद्ध क्रान्तिकारी 'श्री सचीन्द्र नाथ सान्याल' जी से उनकी मुलाकात हो गयी अैर उनसे बातचीत करके उनके लिये क्रांतिकारी दल के नये द्वार खुल गये। श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल द्वारा लिखे गये लेख में उन्होने कहा कि सरदार गुरूमुख सिंह जो अपना अलग संगठन कर रहे थे, उन्होने भगत सिंह को बहुत समझाया कि बंगाली क्रान्तिकारियों का साथ छोड़ दें इनके साथ में रहकर वे कोई कार्य नहीं कर पायेगें और फांसी पर लटक जायेगें। किन्तु उनके बहुत समझाने पर भी भगत सिंह ने लोगों का साथ नहीं छोड़ा।

इस प्रकार भगत सिंह जी क्रान्तिकारी दल के सदस्य के साथ साथ जनता में गुलामी के कष्ट तथा आजादी की बैचेनी पैदा करने के लिये अभिय में भग लेना शुरू कर दिया इस कालेज में नेशनल नाटक क्लब की स्थापना की गयी। 'राणा प्रताप', 'भारत दुर्दशा' और 'सम्राट चन्द्रगुप्त' नाटक में सफल अभिनय करने के बाद प्रोफेसर परमानन्द जी ने तो मंच पर ही गले से लगाकर

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 52

कहा कि' ''मेरा भगत सिंह सचमुच ही भविष्य में शशिगुप्त सिद्ध होगा।'' इस प्रकार वे नेता अभिनेता तथा प्रणेता के रूप में उभरकर सामने आये। और उनके साथ दूसरे नौजवान भी क्रान्तिकारी दल में उनके साथ उभर कर आये। उनके नाम थे—सुखदेव भगवतीशरण बोहरा रामकिशन और यशपाल।

****

भगत सिंह के क्रान्तिकारी कार्य (1923-1926)

क्रान्ति के पथ पर अग्रसित

भगत सिंह का पहली बार गृह-त्याग :

1923 में भगत सिंह ने एफ.ए. पास करके बी.ए. में प्रवेश किया। उसी समय उनके जीवन में कुछ परिस्थितियां उनके विपरीत हो गयीं। वे अपनी दादी जयकौर के बहुत लाड़ले थे। और वे चाहती थी कि उनकी शादी कर दी जाये। इसके लिये उन्होने अपने बेटे सरदार किशन सिंह पर जोर डाला और वह अपनी मां की इच्छा को न टाल सके, किन्तु सरदार भगत सिंह किसी भी प्रकार से विवाह के बंधन में बंधना नहीं चाहते थे। वीरेन्द्र सिन्धु जी के शब्दों में–

''एक दिन उसी इलाके के एक बहुत अमीर आदमी भगत सिंह को अपनी बहिन के लिये देखने आये। भगत सिंह उस दिन बहुत प्रसन्न रहे। उछलते कूंदते रहे और तांगे में स्वयं घोडी हांककर उन्हें लाहौर तक छोड़ने गये। भगत सिंह उन्हें पसन्द आ गये और वे सगाई की तारीख तय कर गये।''[1]

सगाई की तारीख के लिये श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल के ये शब्द मार्गदर्शक हैं–

''मेरा यह नियम था कि दल के आदमी की परीक्षा करने की गरज से मैं यह देखना चाहता था कि अपने दल का व्यक्ति त्याग करने के लिये कहां तक तैयार है। हम लोग तो उसी को अपने दल का आदमी समझते थे, जो व्यक्ति हर घड़ी इस बात के लिये तैयार हो कि जब कभी कहा जाये तभी घर बार छोड़कर काम करने के लिये मैदान में उतर पड़े। इस नीति के अनुसार मैने

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–145,146

भगत सिंह से कहा कि क्या तुम घर बार छोड़ने को तैयार हो? यदि तुम शादी कर लोगे तो आगे चलकर अधिक काम करने की आशा तुमसे नहीं रहेगी और यदि तुम घर में रहते हो तो तुम्हें शादी करनी पड़ेगी। मैं नहीं चाहता कि तुम शादी करो। इसलिये मेरी इच्छा है कि तुम घर छोड़कर, मैं जहां कहूं वहां रहने लग जाओ। भगत सिंह घर छोड़ने को तैयार हो गये।''

सगाई की निश्चित तिथि से कुछ दिन पहले भगत सिंह घर से लाहैर गये और वहां से जाने कहां फरार हो गये। उनके पिता को अपनी मेज की दराज में रखा यह पत्र मिला–

पूज्य पिताजी, नमस्ते।

मेरी जिंदगी मकसदे आला यानी आजादी ए–हिन्द के उसूल के लिये वक्फ हो चुकी है इसलिये मेरी जिंदगी में आराम और दुनियाबी खाहशात बायसे कशिश नहीं है।

आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था तो बापू जी ने मेरे यज्ञोपवीत के वक्त ऐलान किया था कि मुझे खिदमते–वतन के लिये वक्फ कर दिया गया है। लिहाजा मैं उस वक्त की प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हूं।

उम्मीद है आप मुझे माफ फरमायेगें।

आपका तावेदार

भगत सिंह

लाहौर से कानपुर, अलीगढ़ जाना एवं आन्दोलन में दीक्षा

किसी समाज अथवा देश को पहचानने के लिये उस समाज अथवा देश के साहित्य से परिचित होने की परमावश्यकता होती है, क्योंकि समाज के प्राणों की चेतना उस समाज के साहित्य में भी प्रतिच्छवित हुआ करती है।'',

1924 में पंजाब में भाषा विवाद में पंजाबी भाषा क्या हो, इस पर प्रश्न उठा था। हिन्दी, उर्दू के पक्ष धर खूब बहस कर रहे थे। पंजाब की भाषा और लिपि की समस्या पर यह लेख भगत सिंह ने पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बुलाने पर लिखा था जिसे अब्बल मानकर 50/– का ईनाम भी दिया गया था।

यह लेख सम्मेलन के प्रधानमंत्री श्री भीमसेन विद्यालंकार ने सुरक्षित रखा और भगत सिंह के बलिदान के बाद 28 फरवरी 1933 के 'हिन्दी सन्देश' में प्रकाशित किया।[1]

नेशनल कालेज में ही अध्ययन के दौरान सरदार भगत सिंह जी क्रान्ति के पथ पर चल दिये थे। जब घरवालों ने उस की सगाई करने का निश्चय कर दिया, तब उन्होने भी घर छोड़ने का निश्चय किया क्योंकि उनके मन में मृत्यु सुन्दरी के रूप में घूम रही थी और वे अपने पिता के नाम एक पत्र लिखकर लाहौर से कानपुर चले आये और यहां से उनकी क्रान्ति की यात्रा प्रारम्भ हो गयी। श्री सचीन्द्र नाथ सान्याल के शब्दों में– ''मेरे कहने पर भगत सिंह जी घर छोड़कर कानपुर चले गये थे। पहले पहल कानपुर में मन्नीलाल जी अवस्थी के मकान पर उनके रहने का इन्तजाम किया गया था।''[2]

---

1. भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज : श्री जगमोहन सिंह चमनलाल, पेज नं0–57
2. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–147

उन दिनों कानपुर क्षेत्र का कार्य योगेश चन्द्र चटर्जी देखते थे। भगत सिंह उनके साथ कार्य करने लगे एवं वहीं पर उनका परिचय अन्य क्रान्तिकारियों से हुआ। जिनमें श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य (बाद में प्रताप के सम्पादक) श्री बटुकेश्वर दत्त, श्री अजय घोष तथा श्री विजय कुमार सिन्हा जी थे। इसमें ज्यादातर बंगाली थे और सरदार भगत सिंह सिख। इसलिये सी0आई0डी0 से इनको छिपाना आवश्यक था। अतः श्री गणेश शंकर विद्यार्थी जी ने अपने 'प्रताप' के सम्पादक विभाग में भगत सिंह का नाम बदलकर बलबन्त सिंह के नाम से रख लिया। और प्रताप में वह इसी नाम से लिखने लगे। जब तक यह व्यवस्था नहीं हुई थी, तब तक भगत सिंह जी अखबार बेंचकर अपने खर्चे का प्रबन्ध करते थे।

भगत सिंह जी के पिता तथा गणेश शंकर विद्यार्थी दोनों ही अखिल भारतीय कमेटी के सदस्य होने के नाते एक दूसरे से परिचित थे। और विद्यार्थी जी ने ही भगत सिंह को पत्रकारिता सिखायी। उसी समय दरियागंज दिल्ली में भयंकर दंगा हुआ और भगत सिंह को वहां की ताजी खबरे लेने के लिये भेजा गया–

भगत सिंह 'प्रताप' के संवाददाता के रूप में दिल्ली गये। उन्होंने साम्प्रदायिक दंगे के बारे में तथ्य इकट्ठे किये और कानपुर लौटकर दो कालम में रिपोर्ट लिखी। इसके बाद अखबार में बलवन्त सिंह नाम से काम करने लगे। विद्यार्थी जी का प्रेस क्रान्तिकारियों का केन्द्र था और उसमें गुप्त क्रांतिकारी साहित्य भी छपता था।''1

प्रताप प्रेस मे गुप्त साहित्य छपने का उद्देश्य जनता को **सशस्त्र**

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 65

संघर्ष के लिये तैयार करना था। भगत सिंह ने कई पर्चे और पैम्पलेट भी लिखे जिन्हें भारत माता सोसाइटी की तरह मेलों व ठेलों में बांटा गया। उत्तर प्रदेश में प्रतापगढ़ का मेला मशहूर था। जिसमें आसपास के देहातों तथा कस्बों से हजारों लोग आते थे। भगत सिंह व उनके पांच साथियों ने मिलकर इस मेले में क्रांतिकारी पर्चे बाटे, जो प्रताप प्रेस से हिन्दी में छपा था जिसका शीर्षक था– "जागो मेरे देश के लोग।"

मेले में जब यह लोग पर्चे बांट रहे थे उस समय सफेद कपड़ों में खुफिया पुलिस ने इनमें से दो लोगों को गिरफ्तार कर लिया। भगत सिंह ने इन्हें छुड़ाने के लिये कई पर्चे दूसरी ओर फेंक दिये एवं शोर मचाने लगे कि कांग्रेसी लोग उधर पर्चे बांट रहे हैं। जैसे ही भीड़ में भगदड मची, भगत सिंह ने हमला बोलकर अपने दोनों साथियों को छुड़ाकर भागे और पिस्तौल से तीन–चार हवाई फायर किये ताकि वे डरकर पीछा करना छोड़ दे।

भगत सिंह क्रांतिकारी दल के सदस्य भी थे और उसके काम में जुट गये थे। उस समय पार्टी को चलाने के लिये जो रूपये की आवश्यकता होती थी, वह डकैती डालकर पूरी की जाती थी। परन्तु भगत सिंह को यह पहलू अच्छा नहीं लगता था। क्योंकि डकैती तो किसी नागरिक के घर पर ही डालनी होती थी और यह कार्य क्रांतिकारियों को जनता से दूर करके अलोकप्रिय बनाता था। भगत सिंह ने संसार की अनेकों क्रान्तियों का गहन अध्ययन किया था। और उनकी दृष्टि में जनता को साथ लेना आवश्यक था।

उन दिनों एक बड़े काण्ड की तैयारी हो रही थी और पुलिस की निगाहें कानपुर पर जा टिकी थी। इसलिये पार्टी के सदस्य सर्तकता के लिये इधर– उधर हो गये थे। विद्यार्थी जी ने भगत सिंह को ग्राम शादीपुर तहसील खैर जिला–अलीगढ़ के नेशनल स्कूल में हेड मास्टर बनवा दिया। उन्होंने यह कार्य भी

इतने अच्छे से किया कि यह कहा जा सकता है कि भगत सिंह क्रान्तिकारी न होते तो एक सफल प्रिंसिपल बने होते।

वे क्रांति की राह पर अपने कदम आगे बढ़ा रहे थे। परन्तु जैसे–जैसे समय बढ़ रहा था घरवालों की परेशानी भी बढ़ती जा रही थी कि भगत सिंह कहा चले गये। उन्हीं दिनों भगत सिंह ने अपने मित्र श्री रामचन्द्र जी को पत्र लिखा, जिसके द्वारा अपना पता तो दिया किन्तु उसे किसी को न बताने का आग्रह किया। श्री रामचन्द्र जी ने श्री जयदेव गुप्ता जी को इसके बारे में बताया किन्तु वे भगत सिंह जी का पता बताने को तैयार नहीं थे। बहुत आग्रह होने पर उन्होंने कहा कि मैं पता नही बताऊंगा, किन्तु उस पते पर चल सकता हूं।

भगत सिंह जी की दादी श्रीमती जयकौर बहुत बीमार हो गयी थीं और सिर्फ एक बार भगत सिंह को देखना चाहती थी। क्योंकि उनके मन में यह दुख बैठ गया था कि मेरे द्वारा शादी के लिये आग्रह करने के कारण ही भगत सिंह को घर छोड़ना पड़ा। सरदार किशन सिंह ने 'वन्दे मातरम्' में यह विज्ञापन छपवाया कि "भगत सिंह जहां कहीं भी हो, घर वापिस लौट आये, क्योंकि उनकी दादी सख्त बीमार है।" यह विज्ञापन विद्यार्थी जी ने पढ़ा तथा श्री जयदेव गुप्ता और श्री रामचन्द्र जी विद्यार्थी जी के पास गये और वहां से शादीपुर भगत सिंह के पास गये। ये लोग भगत सिंह से मिलकर तथा आश्वासन पर घर लौट आये।

इस समाचार के ज्ञात होने पर श्री किशन सिंह जी ने कानपुर के कांग्रेसी नेता मौलाना हसरत मोहनी को पत्र लिखा। जिसमें आग्रह किया कि विद्यार्थी जी के द्वारा भगत सिंह से मिलकर घर लौटने को कहे क्यों कि उनकी दादी की तबियत ठीक नहीं है। और साथ ही भगत सिंह के लिये भी एक पत्र भेजा, जिसके द्वारा यह बताया गया कि भगत सिंह को घरवालों द्वारा विवाह के

लिये कोई आग्रह नहीं किया जायेगा। इस प्रकार विद्यार्थी जी तथा मौलाना साहब के द्वारा भगत सिंह को घर की परेशानियों से अवगत कराया गया और साथ ही घर लौट जाने के लिये जोर भी डाला गया। इस तरह भगत सिंह की वापिसी घर हुई। उनके घर पहुंचने से घर का वातावरण खुशहाल हो गया। भगत सिंह जी ने अपनी दादी की सेवा की, दवा व खुराक के साथ उनको खूब हंसाया भी और वे धीरे–धीरे स्वस्थ होने लगी। इसके साथ ही वह बंगा में तो रहते ही थे किन्तु लाहौर भी जाते रहते थे। क्योंकि उस समय उत्तर भारत में जो क्रान्ति का संगठन किया जा रहा था, उसके लिये भगत सिंह भी कार्य कर रहे थे।

भगत सिंह का संगठनात्मक कार्य

"युवावस्था में मनुष्य के लिये केवल दो ही मार्ग हैं– वह चढ़ सकता है, उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर, वह गिर सकता है अधःपात के अंधेरे खन्दक में। अगर रक्त की भेंट चाहिये तो सिवा युवक के कौन देगा। अगर तुम बलिदान चाहते हो, तो तुम्हें युवक की ओर देखना पड़ेगा। प्रत्येक जाति का भाग्यविधाता युवक ही तो होते हैं। आज के युवक कल के देश के भाग्य निर्माता है। वे ही भविष्य के सफलता के बीज हैं।"

16 मई 1925– भगत सिंह द्वारा लिखित 'मतवाला' (कलकत्ता) में जिसे बलबन्त सिंह नाम से लिखा गया था (इसके सूक्ष्म वंश)

'आचार्य शिवपूजन सहाय' (मतवाला के सम्पादकीय कर्म से जुड़े)

की डायरी के अंश, पेज–28[1]

कानपुर से लौटने के पश्चात भगत सिंह ने अपनी दादी की सेवा की और उनकी तबियत सम्भलने के पश्चात् बंगा में, तथा वहां से लाहौर तथा और भी दूसरे शहरों में जाना शुरू किया। इस दौरान उनका प्रमुख कार्य नौजवानों से सम्पर्क बढ़ाना तथा साथ ही उन्हें क्रान्तिकारी संगठन में लाना था। उन्हीं दिनों उन्हें अपने पिता की तरफ से एक कार्य सौंपा गया। जिसमें उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि उनकी संगठन शक्ति में कितनी शक्ति है। वे सिर्फ पिस्तौल का धमाका करनेवाले एक जोशीले नौजवान ही नहीं अपितु पार्टी का नेतृत्व करने की क्षमता भी रखते हैं। क्रान्ति के मार्ग में उनके जीवन में घटित यह घटना 1924 की है।

---

1. भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज– जगमोहन सिंह चमनलाल, पेज–70

भ्रष्ट महन्तों के खिलाफ जो अकाली आन्दोलन तथा सरकार द्वारा दमन चक्र रहा था। वह 1924 में ननकाना साहब से हटकर जैतों में चला गया था। इस काण्ड में गोलीकाण्ड तथा राक्षसी लाठी चार्ज में हुए शहीदों को श्रद्धांजलि देने के लिये शोक दिवस मनाया गया। उस दिन जलसे में लोग काली पट्टी बांध कर शामिल हुये। इस जलसे में नाभा के महाराज रिपुदमन सिंह अपनी बाजू पर काली पट्टी बांधकर जुलूस में शामिल हुये। सरकार की दृष्टि में यह राजद्रोह था। वायसराय उनसे सख्त नाराज हो गये और उन्हें गद्दी से उतारकर देहरादून में नजरबन्द कर दिया। इससे क्रुद्ध होकर अकालियों के जत्थे जैतो (नामा) जाने लगे और वहां जो मोर्चा जमा, वह शहादत और बलिदान की मिसाल बन गयी।

यह जत्थे जब देहातों से गुजरते थे तो गांव–गांव में उनका स्वागत होता था। सरकार की यह धारणा बनी कि स्वागत से आन्दोलन को बल मिलता है। और उनकी व सरकार परस्त जागीरदारों की भी यह कोशिश रहने लगी कि इन जत्थों का कोई स्वागत न हो।

ऐसा ही एक जत्था सरदार किशन सिंह के गांव से भी होकर गुजरना था। जत्थेदार करतार सिंह एवं ज्वाला सिंह जी लाहौर में किशन सिंह जी से मिले। जिससे किशन सिंह द्वारा वहां पर जत्थे के स्वागत का प्रबन्ध किया जाये। सरदार किशन सिंह जी अकाली नहीं थे पर इस आन्दोलन से उनकी सहानुभूति थी। परन्तु उस समय उन्हें बीमें के काम से बम्बई जाना था। अतः उन्होने जत्थे के स्वागत का कार्य भगत सिंह को सौंप दिया।

इस इलाके में सरकार परस्त जागीरदार दिलबाग सिंह थे। जो सरदार किशन सिंह के ही कुटुम्ब भाई थे। यह फर्स्ट क्लास आनरेरी मजिस्ट्रेट भी थे। उन्होने गांव में ढ़िढोरा पिटवा दिया कि कोई भी व्यक्ति न ही जत्थे का

स्वागत करेगा और न ही कोई चीज देगा। तथा वहां के कुंओं से ढ़ोल भी उठवा लिये ताकि जत्थे वाले अपने हाथों से खींचकर भी पानी न पी लें। इस प्रकार एक तरफ सरकार का दाहिना हाथ सरदार दिलबाग सिंह थे जिनका गांव में अत्यन्त रौव तथा दबदबा था। दूसरी तरफ एक सत्रह बरस का नवयुवक सरदार भगत सिंह जी थे। अतः यह एक मोर्चे के रूप में घटना सामने आयी। सरदार बहादुर ने व्यवस्था की और भय का जाल बिछाया। चारों तरफ पुलिस को तैनात कर दिया। और गांव में भी आतंक फैला दिया। दूसरी ओर भगत सिंह की ओर किसी का भी ध्यान नहीं गया, क्योंकि वह ज्यादातर गांव से बाहर ही रहते थे। अतः वह अपने चन्द दोस्तों के साथ ही चुपचाप जत्थे की तैयारी करते रहे।

निश्चित तिथि में ही जत्था आया। और गांव के बाहर एक स्थान पर रूका। इस जत्थे का भगत सिंह ने आगे बढ़कर स्वागत किया और जोरदार भाषण दिया तथा जत्थे के स्वागत में आतिशबाजी छोड़ी, जो पहले से ही उन्होने खरीद रखी थी। उनका भाषण गांव के लोगों ने सुना, तो उनकी भी हिम्मत खुली एवं उन्होने भी भय का त्याग कर भगत सिंह का साथ दिया। रातों रात मनों दूध, टोकरों में रोटियां, सब्जियां सभी घर घर से तैयार हो जाती जिसे भगत सिंह व उनके साथी दिन निकलने से पहले ही जत्थे में पहुंचा देते थे। यह जत्था तीन दिन गांव में रूका और जब गया तो जत्थे वाले गाते जा रहे थे–

"लाज रख ली, लाज रख ली, भगत सिंह प्यारे ने लाज रख ली।"

इस प्रकार सरदार बहादुर दिलबाग सिंह की शान धूल में मिल गयी और वे प्रतिशोध की भावना में जलने लगे। तथा उन्होने सरकार पर जोर डाला कि भगत सिंह की गिरफ्तारी का वारंट निकाला जाये। सरदार किशन सिंह को खुफिया विभाग की खबरे मिल जाती थी। इसका भी पता उन्हें लग गया और उन्होने स्वयं ही भगत सिंह को वहां से हटाकर कानपुर भेज दिया। यहां आकर

उन्हें अपने क्रान्तिकारी साथियों से सम्बन्ध गहरे करने तथा अनुभव से सीखने का सुनहरा अवसर मिला।

इसके पश्चात भगत सिंह दिल्ली में चले गये और बलवन्त सिंह नाम से ''दैनिक अर्जुन'' के सम्पादकीय विभाग में कार्य करने लगे। इसी समय गंगा–यमुना में बाढ़ आ गयी। उत्तर प्रदेश के कई गांव उसकी चपेट में आ गये और वे बाढ़ पीड़ितों के पास पहुंचकर सेवा के कार्य में जुट गये। यहां उनकी मुलाकात अनेक क्रान्तिकारियों से हुयी।

1924 में ही सरदार किशन सिंह भगत सिंह को बैलगांव कांग्रेस (इसकी अध्यक्षता गांधी ने की) में एक डेलिगेट के नाते ले गये और वहां पर अपने पुराने क्रान्तिकारी साथी निरलम्बा स्वामी से उनकी मुलाकात करवायी। स्वामी जी ने भगत सिंह से बातचीत की और उसके बाद कहा कि–

भगत सिंह बहुत बड़ा क्रान्तिकारी बन रहा है।

सो सरदार किशन सिंह इसे आगे बढ़ने दो।''

1925 में भगत सिंह का लाहौर से कानपुर आने जाने का सिलसिला जारी रहा। उनके शब्दों में– ''वह उस समय तक सिर्फ रोमांटिक विचारवादी क्रान्तिकारी थे।'' 1925 में ही 'काकोरी काण्ड' हुआ। और उसमें राम प्रसाद विस्मिल और उनके साथी गिरफ्तार कर लिये गये। चन्द्रशेखर आजाद छिपकर बचे रहे। यह काण्ड क्रान्तिकारी पार्टी के लिये धन की आवश्यकता के कारण किया गया था। इस पार्टी का नाम 'हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र दल' था। काकोरी काण्ड के बाद पार्टी को संगठित और सक्रिय बनाने की जिम्मेदारी भगत सिंह ने अपने हाथों में ले ली। भगत सिंह के शब्दों में– ''यह मेरे क्रान्तिकारी जीवन में आकर बहुत बड़ा मोड़ था। अध्ययन करने के एहसास की तरंगे मेरे

अन्दर उमड़ती थी। अध्ययन करो ताकि तुम अपने विरोधियों के तर्कों का जबाब दे सको। मैने अध्ययन शुरू किया। काकोरी केस के दौरान आम लोगों की गवाहियों ने पार्टी की, जो गहरी लगन, त्याग और निःस्वार्थी थे, जनता के साथ जुड़ पाने की नाकामयाबी को सामने लाकर खड़ा किया था।"[1]

काकोरी केस में गिरफ्तार साथियों को जेल से भगाने की एक योजना बनी जिसमें भाग लेने के लिये भगत सिंह जी भी कानपुर गये किन्तु इसका भेद खुल जाने से यह योजना असफल हो गयी। इसके बाद दूसरी योजना बनी, किन्तु दुर्भाग्य वश वह भी असफल हो गयी। इसमें दस क्रान्तिकारियों को पकड़ा गया था जिसमें चार को फांसी तथा छः लोगों को आजीवन दण्ड दिया गया था। यहीं से भगत सिंह के जीवन में भी नया मोड़ आया और इसी घटना के पश्चात वे रोमांटिक क्रान्तिकारी से यथार्थ समाजवादी क्रान्तिकारी की दिशा की ओर गये। और भगत सिंह के जीवन में यह बदलाव राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास की दिशा में भी नये मोड़ के रूप में सामने आया।

भगत सिंह ने अत्यन्त गम्भीरता व लगन से अध्ययन के द्वारा समस्याओं के समाधान का उद्देश्य अपनाया ताकि वे क्रान्तिकारी आन्दोलन के संकट के कारणों को ढूंढ़ सकें। क्रान्तिकारी आन्दोलन की समस्या कुछ नौजवानों के बलिदान और प्रयास के माध्यम से ही हल नही हो सकती थी। उसके लिये आवश्यक था कि जनता में चेतना की लहर प्रचारित एवं प्रसारित की जाये और इसके लिये अध्ययन, प्रचार, संगठन तीनों ही रूपों में कार्य को शुरू करना आवश्यक था।

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 80

काकोरी काण्ड (1925)

"9 अगस्त, 1925 के शहीद राम प्रसाद विस्मिल अशफाक उल्ला और उनके अन्य क्रान्तिकारी साथियों ने क्रान्तिकारी पार्टी के लिये चन्दा इक्ट्ठा करने के लिये लखनऊ के करीब काकोरी के पास रेलगाड़ी रोक सरकारी खजाना लूटा, इसके बाद सिवाय शहीद चन्द्रशेखर आजाद के बाकी सभी क्रान्तिकारी पकड़े गये। भगत सिंह भी तब कानपुर निवास के समय हिन्दुस्तान रिपब्लिकन पार्टी में भर्ती हो चुके थे। उनके अपने शब्दों में, "फिर सारी जिम्मेदारी अपने कन्धों पर उठाने का समय आया।" भगत सिंह ने रोमोटिंक क्रान्तिकारी से एक बड़ा मोड़ काटा और उनके शब्दों में "मैने अध्ययन शुरू कर दिया।"

'विद्रोही' नाम से मई, 1927 में भगत सिंह ने एक लेख 'काकोरी के वीरों से परिचय' शीर्षक से पंजाबी में छपवाया। उस लेख के छपते ही भगत सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया और चारपाई पर हथकड़ी लगे बैठे भगत सिंह का प्रसिद्ध चित्र इसी गिरफ्तारी के समय लिया गया। इससे पहले भगत सिंह पंजाब लौटकर शचीन्द्रनाथ सान्याल की पुस्तक 'बन्दी जीवन' का पंजाबी अनुवाद छपवा चुके थे।"[1]

सन् 1919 का रोलट एक्ट जिसमें भाषण आदि की स्वतंत्रता पर पाबन्दी सरकार द्वारा लगाई गई। इसी समय जलियां बाला बाग का हत्याकाण्ड 1920 का असहयोग आन्दोलन, 1922 का चौरी चौरा काण्ड और असहयोग आन्दोलन का स्थगन आदि कुछ ऐसी घटनायें घटित हुई जिससे सरकार अहिंसात्मक आन्दोलन की परवाह नहीं करती थी। इसलिये क्रान्तिकारी दलों को

---

1. भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज, जगमोहन सिंह, चमनलाल पेज नं0–80–91.

उस समय के क्रान्तिकारियों ने दृढ़तापूर्वक संगठित किया। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल जी ने अन्य क्रान्तिकारी दलों को संगठित करके 'हिन्दुस्तान प्रजातान्त्रिक संघ' बनाया।''[1]

इस दल का उद्देश्य सशस्त्र तथा संगठित क्रान्ति द्वारा **Federated Republic of the United States of India"** भारत सम्मिलित राज्यों का प्रजातन्त्र संघ स्थापित करना था। यानि ऐसी शासन प्रणाली स्थापित करना जिसमें प्रान्तों को घरेलू विषयों में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होगी, प्रत्येक बालिग तथा सही दिमाग वाले व्यक्ति को वोट देने का अधिकार प्राप्त होगा तथा ऐसी समाज पद्धति की स्थापना होगी जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण न हो सके।[2]

इस क्रान्तिकारी दल के अन्तर्गत कई क्रान्तिकारियों के नाम आते हैं। इसमें श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल के साथ श्री यतीन्द्र मुखर्जी (जिनकी मृत्यु–1922 में हुयी) श्री रवीन्द्र मोहन कार, श्री गोपीमोहन साहा, श्री राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी, कानपुर में श्री सुरेशबाबू, पं० रामप्रसाद विस्मिल, श्री चन्द्र शेखर आजाद आदि क्रान्तिकारी शामिल थे। और इस घटना से पहले भगत सिंह के संबंध भी कुछ इस दल से जुड़े गये थे।

इस दल को चलाने के लिये धन की आवश्यकता होती थी। और धन कमाने का एक मात्र साधन लूट तथा डकैती था। किन्तु डकैती यदि जनता में डाली जाती, तो जनता का विश्वास क्रान्तिकारियों से उठ लायेगा। और जो कार्य यह क्रान्तिकारी करना चाहते थे वह जनता की आजादी के लिये था।

---

1. भारतीय संविधान का विकास एवं राष्ट्रीय आन्दोलन, आर०सी० अग्रवाल, पेज नं०–143
2. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, मन्मथनाथ गुप्त, , पेज नं०–198, 212–213

इसलिये जनता क्रान्तिकारियों से घृणा करे यह देशभक्त क्रान्तिकारी नहीं चाहते थे। इसलिये इनका ध्यान सरकारी खजाने की तरफ गया। जो धन भारतीयों का था और जिसे अंग्रेजी सरकार एकत्र करके अपने देश में ले जाया करती थी।

इस प्रकार देश में सशस्त्र क्रान्ति कराने के लिये अनेक खातरनाक हथियार इस क्रान्तिकारी दल ने खरीदे। इनका हिसाब चुकाने के लिये रूपया देना था। क्रान्तिकारी दल के पास इतना रूपया नहीं था। इसलिये यह निश्चय किया गया कि काकोरी (लखनऊ के समीप में जब गाड़ी पहुंचे तो सरकारी खजाने को लूट लिया जाये। हरदोई से लखनऊ जाने वाली गाड़ी में 9 अगस्त 1925 को दस नवयुवक सब हथियारों सहित रात्रि में आठ बजे सवार हुये। जब गाड़ी काकोरी ग्राम के पास पहुंची तो इसकी जंजीर खींच ली गयी। सब नवयुवक गाड़ी से उतरे। उन्होने गाड़ी के डिब्बे में से सरकारी खजाने का बक्स बलपूर्वक निकाल लिया और इसको तोड़ कर पैसा लेकर गायब हो गये। इसको काकोरी काण्ड कहा जाता है।

सरकारी खजाने के लूट लिये जाने की सूचना जब सरकार को मिली तो उनके द्वारा पुलिस तथा गुप्तचर विभाग के माध्यम से जांच की जानी शुरू की गयी। यद्यपि इस ट्रेन–डकैती में सिर्फ दस आदमी ही शामिल थे। किन्तु जब गिरफ्तारियां हुई तो 40 आदमी से भी अधिक गिरफ्तार किये गये। जिस समय 26 सितम्बर को गिरफ्तारियां हुई, उस समय कई ऐसे लोग पकड़े गये, जिनका इस आन्दोलन से कोई खास संबंध नहीं था। वे धीरे–धीरे छोड़ दिये गये।

शाहजहांपुर के बनारसीलाल, इन्दुभूषण मित्र गिरपतार होते ही मुखबिर हो गये। चूंकि काकोरी की घटना लखनऊ जिले में हुई थी, इसलिये मुकदमा लखनऊ में ही हुआ। बनवारीलाल इकबाली गवाह बन गये। कानपुर के

गोपीमोहन सरकारी गवाह हो गये, इस प्रकार पुलिस को करीब–करीब सब प्रमुख बातों का पता लग गया।

छोड़े जाने के बाद 24 अभियुक्त बचे जिनमें अशफाक उल्ला, शचीन्द्र बक्खी तथा चन्द्रशेखर आजाद गिरफ्तार न किये जा सके। दामोदर स्वरूप सेठ जी भी गिरफ्तार हुए परन्तु भयंकर बीमारी के कारण छोड़ दिये गये। मथुरा और आगरा के शिवचरण लाल पर से मुकदमा रहस्यमय कारणों से उठा लिया गया। उरई तथा कानपुर के वीरभद्र तिवारी भी इस प्रकार अज्ञात कारणों से छोड़ दिये गये। दफा 121, 120, 369, 302 के अनुसार मुकदमा दायर किया गया। सरकार की ओर से पं0 जगत नारायण मुल्ला इस मुकदमें की पैरवी कर रहे थे, उनको रोज 500 रू0 मिलते थे। अभियुक्तों की ओर से उत्तर प्रदेश के नेता पं0 गोविन्द वल्लभ पंत, बहादुर जी, चन्द्रभान गुप्त, मोहनलाल सक्सेना आदि कई विख्यात वकील थे।

सरकार ने इस मुकदमें में दस लाख रूपये से अधिक खर्च किये। बाद में दो फरार अर्थात अशफाक उल्ला और बख्शी गिरफ्तार हुये किन्तु उनका मुकदमा अलग चलाया गया।

इस बीच काकोरी केस में भगत सिंह बराबर दिलचस्पी लेते रहे और जेल में बन्द उसके अभियुक्तों से भी सम्पर्क बनाये रहे। एक दो बार शानदार वेशभूषा में मुकदमा सुनने भी गये। श्री योगचन्द्र चटर्जी के शब्दों में– ''सरदार भगत सिंह खाकी रंग के ब्रीचेज (ब्रिजिस) कोट तथा सिर पर कसीदा की हुई पगड़ी पहने अदालत में आये। वे हमारे बहुत निकट ही एक अगली ही सीट पर बैठ गये और उन्होने जरा भी इस बात की चिन्ता नहीं की कि वहां अनेक सी0आई0डी0 अधिकारी उपस्थित थे, जिन्होने अदालत को घेर रखा था, वे महान और निर्भीक क्रान्तिकारी थे।''[1]

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–154

18 महीना मुकदमा चलने के बाद पं0 रामप्रसाद विस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी और रोशन सिंह को फांसी की सजा हुई। श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल को काले पानी की सजा हुई। मन्मथनाथ गुप्त को 14 साल, योगेशचन्द्र चटर्जी, मुकुन्दीलाल जी, गोविन्दचरण कार, राजकुमार सिंह, रामकृष्ण खत्री को दस–दस साल, विष्णुशरण दुब्लिश और सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य जी को सात साल, भूपेन्द्रनाथ सान्याल, रामदुलारे द्विवेदी और प्रेमकृष्ण खन्ना को पांच साल की सजा हुई। इसके अतिरिक्त जो पूरक मुकदमा चला, उसमें अशफाक उल्ला को फांसी हुई और बख्शी को काला पानी।

17 दिसम्बर, 1927 को श्री राजेन्द्र नाथ लााहिड़ी को गोंडा जिले में फांसी दी गयी। और 19 दिसम्बर 1927 को श्री रामप्रसाद 'विस्मिल' को गोरखपुर जेल में, श्री अशफाक उल्ला को फैजाबाद जेल में और श्री रोशन सिंह जी को इलाहाबाद जेल में फांसी पर चढ़ा दिया गया।

नौजवान भारत सभा की स्थापना (1926)

"1981 में भगत सिंह और उनके साथियों की शहादत में अर्द्ध शताब्दी मनायी गयी। राजाराम शास्त्री ने 'अमर शहीदों के संस्मरण' नाम की पुस्तक लिखी, इस पुस्तक के माध्यम से उन्होने अध्ययन, प्रचार और नौजवान सभा को संगठित करने का ब्यौरा विस्तार से दिया।

इस पुस्तक के माध्यम से ही उन्होने जानकारी दी कि 1926 में वे लाहौर आये और भगत सिंह से उनका सम्पर्क स्थापित हुआ। तथा 1926 से 1931 तक उन्होने द्वारकादास पुस्तकालय में किया गया। शास्त्री जी का सरदार भगत सिंह, सुखदेव, यशपाल, भगवतीचरण बोहरा, हंसराज बोहरा, धन्वंत्री, रामकृष्ण, एहसान इलाही, दुर्गादास खन्ना और अन्य पंजाब के क्रान्तिकारियों से परिचय हुआ। भगत सिंह और सुखदेव जब लाहौर में होते थे, तो पुस्तकालय में जाया करते थे। और राजाराम जी से उनकी घनिष्ठता बढ़ गयी। अतः आप ही के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि भगत सिंह एक तरफ क्रान्तिकारी पार्टी के सक्रिय सदस्य थे। और देश की स्वतंत्रता व क्रान्ति की वेदी पर अपना सर्वस्व बलिदान करने की प्रतिज्ञा किये बैठे थे। वहीं दूसरी ओर वे बहुत ही विनोदी स्वभाव व शरारती भी थे। उदाहरणार्थ–

एक बार भगत सिंह ने एक वनमानुष की तस्वीर किसी पत्रिका आदि से फाड ली। और हंसते हुये राजाराम शास्त्री जी के पास जाकर बोले कि राजाराम तुम मेरे पक्के दोस्त हो, इसलिये मेरा एक कार्य कर दोगें। उनके एक मित्र की शक्ल वनमानुष से मिलती थी, उसको यह फोटो देने के लिये कहा। तस्वीर देखकर राजाराम जी को हंसी आ गयी। और उन्होने कहा कि भगत सिंह तुम बहुत ही शरारती हो।

वीर सांवरकर द्वारा लिखित पुस्तक 'भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' सरकार ने जब्त कर ली थी। भगत सिंह ने इस पुस्तक को कहीं से प्राप्त करके पढ़ी और वे अत्यन्त प्रभावित हुये। उन्होंने गुप्त रूप से प्रेस का प्रबन्ध करके इसे दो खण्डों में छपवाया। तथा उसे बेचने का प्रबन्ध सुखदेव के साथ किया। जिसे सर्वप्रथम राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन ने खरीदा। भगत सिंह चाहते थे कि जिन वीरों ने स्वतंत्रता के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर किया है उनकी ओर युवक वर्ग आकर्षित हो। और उन्होने बलिदानी वीरों के चित्र और उनके जीवन चरित्र तैयार करके इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले 'चांद' के फांसी अंक में प्रकाशित करवाया।

इस प्रकार कुछ समय तक उग्र और गुप्त साहित्य के माध्यम से नवयुवकों में क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार होता रहा। किन्तु अब भगत सिंह महसूस कर रहे थे कि वह खुले रूप में जनता के सामने आकर जनता को अपने विचारों से अवगत करायें। और अपने इसी उद्देश्य को क्रान्तिकारी पार्टी के सामने रखकर 1926 में ''नौजवान भारत सभा'' की स्थाना कराई। यह क्रान्तिकारी पार्टी का खुला मंच था जिसमें नौजवान पार्टी सभा के रीति रिवाजों, विचारों को मानने वालों के लिये दरवाजे खुले थे।

भगत सिंह को 'नौजवान भारत सभा' के प्रगतिशील संविधान बनाने के लिये उनके साथी श्रेष्ठ क्रान्तिकारी भगवतीशरण बोहरा जी ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया। नौजवान सभा के उद्देश्य इस प्रकार थे--

1. समस्त भारत के मजदूरों और किसानों का एक पूर्ण स्वतंत्र गणराज्य स्थापित करना।

2. एक अखण्ड भारत राष्ट्र के निर्माण के लिये देश के नौजवानों में देशभक्ति की भावना उत्पन्न करना।

3. उन आर्थिक, सामाजिक और औद्योगिक आन्दोलनों के साथ हमदर्दी रखना, सहायता करना जो साम्प्रदायिक विरोधी हो। और किसान, मजदूरों के आदर्श गणतांत्रिक राज्य की प्राप्ति में सहायक हो।

4. किसान और मजदूरों को संगठित करना।

इस संविधान का अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू यह है कि नौजवान सभा ने पूर्ण स्वतंत्रता की यह घोषणा 1926 में आरम्भ की थी, जबकि देश के सबसे बड़े राजनैतिक दल कांग्रेस ने ऐसी घोषणा 1927 में मद्रास कांग्रेस में की, जिसके सभापति डा० अन्सारी जी थे।[1]

इस प्रकार इन उद्देश्यों को रखकर भगत सिंह, सुखदेव और भगवतीचरण आदि ने लाहौर में नौजवान सभा का गठन किया था। इसका वास्तविक उद्देश्य इश्तहारों, वक्तव्यों और सभाओं के द्वारा अपने विचारों को जन–सामान्य तक पहुंचाना तथा जनता में उक्त राष्ट्रीय भावना को जागृत करना था। भारतीय भाषाओं और संस्कृति की रक्षा, शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाना और कुरीतियों को दूर करना भी इस सभा का उद्देश्य था। यह क्रान्तिकारी आन्दोलन का ऐतिहासिक मंच था, जिसके अन्तर्गत नये साथियों को भर्ती करके, क्रान्तिकारी मार्ग में आगे बढाया जाता था।" नौजवान भारत सभा का सदस्य बनते समय उसे यह शपथ लेनी पडती थी कि "वह अपने से बढ़कर देश के हित को श्रेष्ठ समझेगा।

नौजवान भारत सभा के अध्यक्ष झंग निवासी श्री रामकिशन बी०ए० (कौमी), भगत सिंह मंत्री और श्री भगवती शरण जी प्रचार मंत्री बने। केदार नाथ सहगल, सैफुद्दीन किचलू, कामरेड पिण्डीदास, लाल चन्द्र फलक, मन्सूर साहब,

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–153

मुन्शी अहमद दीन जैसे उग्रवादी युवकों और नेताओं ने भी सभा को अमूल्य सहयोग प्रदान किया। भगत सिंह, सुखदेव और भगवती शरण आदि इस सभा के लिये कार्यक्रम तैयार करते थे। और यहां तक कि भगत सिंह अपने साथियों के साथ मिलकर दरियां भी बिछाते थे। और कुछ ही दिनों में नौजवान भारत सभा की शाखायें दूर–दूर तक फैल गयीं।

नौजवान भारत सभा ने गदर पार्टी के शहीद युवक शिरोमणि करतार सिंह सराबा के बलिदान दिवस का उत्सव खुले रूप में ब्रेडला हाल में बड़ी धूमधाम से मनाया। यह एक सार्वजनिक सभा थी, जिसका मुख्य उद्देश्य नौजवानों को क्रान्ति के लिये उन्मुख करना था। इस उत्सव में करतार सिंह सराबा का एक बड़ा चित्र (जो इसी अवसर पर बनवाया था) सफेद खद्दर से ढककर रखा गया। और जिसका अभिषेक महान क्रान्तिकारिणी श्रीमती दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी ने अपनी–अपनी उंगली काट कर खून के छीटों से किया। यह देखकर यहां उपस्थित जनता में देश भक्ति और बलिदान की भावना उजागर हो गयी। उस समय में एक शहीद का बलिदान दिवस मनाना एक ऐतिहासिक घटना थी।

नौजवान भारत सभा का एक अन्य उद्देश्य क्रान्तिकारी दल के लिये जोशीले नौजवानों को छांटना भी था और इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये भगत सिंह ने लाहौर में विद्यार्थियों की एक यूनियन संगठित की, जो 'नौजवान भारत सभा' की सह–संस्था थी। इसके माध्यम से जनता में राजनैतिक जागरण पैदा करके समय–समय पर उपयोग करना व क्रान्तिकारी दल को मजबूत करने का कार्य किया गया।

'नौजवान भारत सभा' में समय–समय पर जलसे व भाषण हुआ करते थे। जिन्हें जनता पसन्द करती थी। इस सभा के अन्तर्गत साम्प्रदायिक

एकता, सामूहिक भोज, धार्मिक अन्धविश्वासों का विरोध तथा सभी प्रकार के भेदभावों को दूर करने के लिये आयोजन होते थे। इस सभा में धार्मिक नारेबाजियों का कोई स्थान नहीं था। इसके नारे थे– 'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद' और वन्दे मात्‌रम। यह सभा एक प्रकार से गुप्त क्रान्तिकारी आन्दोलन का बीज थी, जो आगे चलकर विधिवत संगठन में परिवर्तित हो गयी।

श्री मुजफ्फर अहमद ने अपने एक लेख द्वारा बताया कि आगे चलकर भगत सिंह इस सभा के प्रति उदासीन हो गये किन्तु यह धारणा गलत है क्योंकि नौजवान सभा के साथ भगत सिंह का लगाव जीवन के अन्त तक रहा वे जेल से भी इस सभा का मार्गदर्शन करते थे। जिसका सबसे बड़ा उदाहरण है कि 1930 के सत्याग्रह आन्दोलन के समय इस सभा से अत्यधिक लाभ हुआ था।
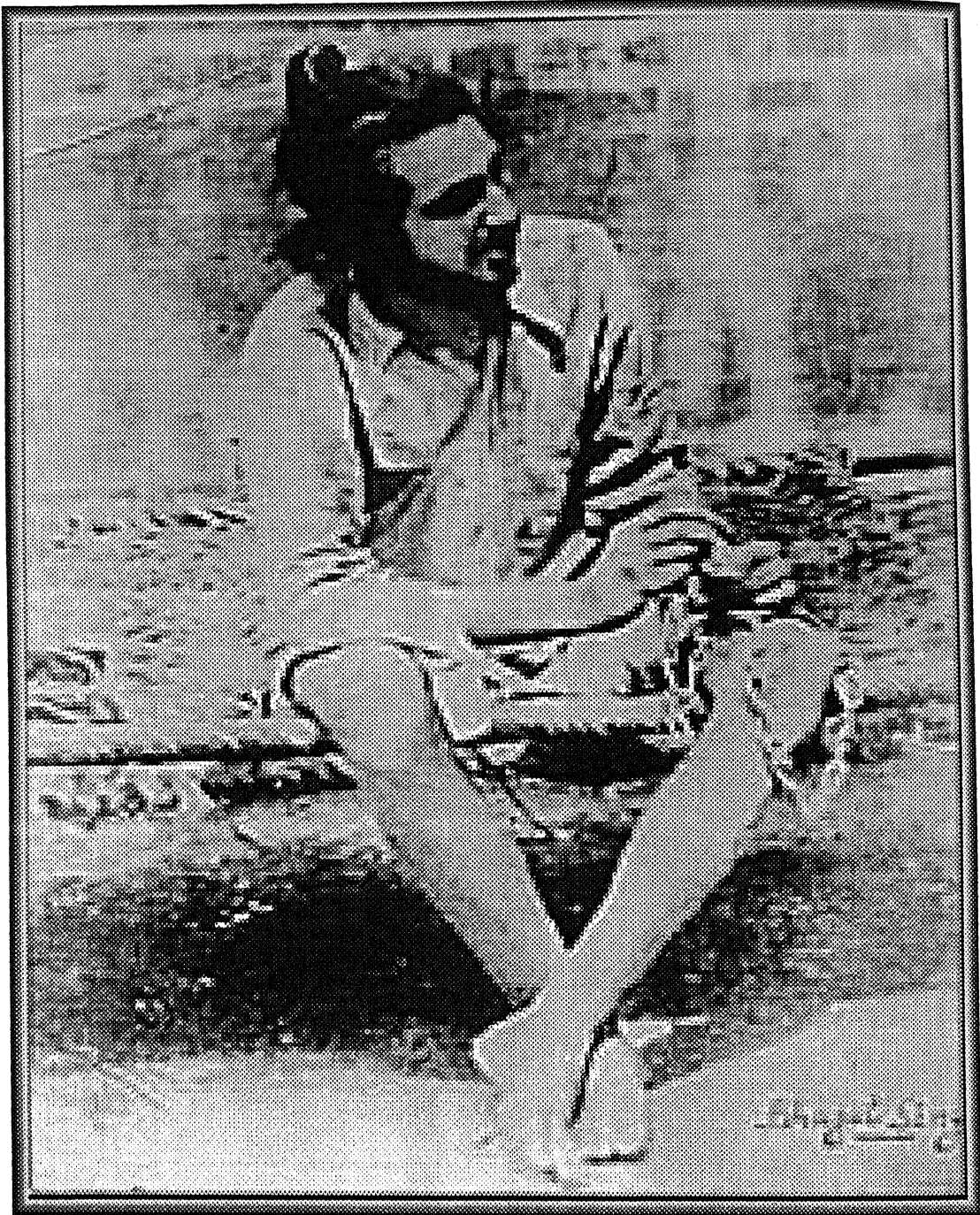
पहली गिरफ्तारी के समय भगत सिंह

दशहरा बम काण्ड (1926)

लाहौर में हर साल दशहरा का मेला लगता था। 1926 में इस मेले में किसी ने बम फेंका, जिसमें दस बारह आदमी मारे गये और पचास से ज्यादा घायल हो गये। इसे दशहरा बम काण्ड कहा गया। क्रान्तिकारी लोग बम बनाते थे और जनता क्रान्तिकारियों को बम–पार्टी कहती थी। समय–समय पर बम फेंकने की कुछ घटनायें भी हो चुकी थी। अतः अंग्रेजी सरकार की खुफिया पुलिस ने इस अवसर का लाभ उठाते हुये यह अफवाह फैलायी कि बम क्रान्तिकारियों ने फेंका है। अंग्रेजों का उद्देश्य क्रान्तिकारियों को हिंसक तथा निर्दयी सिद्ध करके जनता की नजरों में गिराना था। और उन्होने दूसरी अफवाह यह फैलायी कि हिन्दुओं के मेले में बम किसी मुसलमान ने फेंका है। इसका उद्देश्य साम्प्रदायिक घृणा तथा दंगा फैलाना था। इन दोनों ही बातों में लाभ अंग्रेजों का ही था।

बाद में यह ज्ञात हुआ कि बम चन्नणदीन नाम के आदमी ने फेंका था और वह खुफियां पुलिस का आदमी था। अतः बम काण्ड इसी विभाग के द्वारा रचा गया षड़यंत्र था। चन्नणदीन पुलिस के इशारे पर साम्प्रदायिक तनाव पैदा करने के लिये ऐसे कार्य करता था।

दशहरा काण्ड तो एक बहाना था। और पुलिस ने इस बहाने से भगत सिंह को कुछ समय बाद गिरफ्तार कर लिया। जिस समय पुलिस उन्हें थाने ले जा रही थी। उस समय कोई परिचित उन्हें मिला, तो उससे भगत सिंह ने अपने पिता किशन सिंह जी को अपने गिरपतार होने की सूचना भिजवा दी। बम विस्फोट के आरोप में भगत सिंह को गिरफ्तार करना मात्र बहाना था। उनकी गिरफ्तारी क्रान्तिकारी दल और काकोरी काण्ड के फरार अभियुक्तों की पूंछ–तांछ के लिये की गयी थी। (भगत सिंह जी की गिरफ्तारी के विषय में विभिन्न किताबों

में तिथि के विषय में भेद है। सभी इतिहासकार एक मत नहीं हैं जिसमें श्री मनमतनाथ गुप्त, वीरेन्द्र सिन्ध, हंसराज रहबर)।

"काकोरी केस के निर्माता पुलिस अधिकारी खान बहादुर तसदुक हुसेन स्वयं लाहौर आये थे और उन्होने भगत सिंह से पूंछताछ की थी।"[1]

इस प्रकार बम विस्फोटों से हुई हत्याओं के लिये फांसी का भय दिखाया ताकि भगत सिंह सरकारी गवाह बन जायें। भगत सिंह जानते थे कि पुलिस कुछ भी कर सकती है। परन्तु उन्होने इस समय अपने क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का अदभुत परिचय दिया। पुलिस के अत्याचारों को सहने पर भी उन्होने अपने रहस्यों को छिपाये रखने का अत्यन्त ही भोलेपन से अभिनय किया। जिससे पुलिस भी दुविधा में पड़ गयी। इसमें भगत सिंह को 15 दिन लाहौर के किले में रखा और बाद में बोस्टर्स जेल में भेज दिया गया।

सरदार किशन सिंह जी द्वारा कानूनी कार्यवाही द्वारा भगत सिंह को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। इस गिरफ्तारी के दौरान पुलिस भगत सिंह से कुछ भी कहलवा नहीं पायी थी और अन्त में 60 हजार की जमानत पर उन्हें रिहा कर दिया गया। तीस हजार की जमानत किशन सिंह के मित्र लाहौर के बैरिस्टर दुनीचन्द ने और तीस हजार की दौलत राम जी ने दी थी। दौलतराम चाहे सरकार परस्त व्यक्ति थे, पर जनता में मुंह दिखाने के लिये कुछ न कुछ तो करना ही पड़ता है। कांग्रेसी वकीलों ने क्रान्तिकारियों के मुकदमें लड़कर जो ख्याति अर्जित की, बाद में उन्हीं के आधार पर मंत्री तथा मुख्यमंत्री बने।[2]

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–158
2. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 101

इस गिरफ्तारी के दौरान भगत सिंह को जो भी यातनायें सहनी पड़ी, उसका वर्णन उन्होने किसी से भी नहीं किया। और न ही अपने किसी लेख व मित्र से इस विषय में कोई जिक्र किया। क्योंकि यह बताना उनकी आन–बान और जीने की परम्परा के विपरीत था। वीरेन्द्र सिन्धु जी के अनुसार–उनके खानदानी कागजों में सिर्फ एक लाइन मिलती है– ''आपको शाही किला लाहौर में तरह–तरह की अजीतें दी गयीं।'' अपनी चाची हरनाम कौर जी को इस सम्बन्ध में उन्होने कुछ संकेत दिये थे। जिन दिनों जमानत चल रही थी भगत सिंह ने अपने गांव के एक मित्र अमरचन्द्र को जो उस समय अमेरिका में पढ़ रहा था। एक पत्र लिखा जिससे उनके उदार चरित्र और मनोभाव का अंदाजा मिलता है। 1927 में लिखा हुआ खत इस प्रकार है–

प्यारे भाई अमरचन्द्र जी,

नमस्ते

अर्ज है कि इस दफा अचानक मां के बीमार होने पर इधर आया और आपकी मोहतरिमा वाल्दा (आदरणीय मां) के दर्शन हुये। आपका खत पढ़ा। इसके लिये यह (साथ वाला) खत लिखा। साथ ही दो चार अल्फाज (शब्द) लिखने का मौका मिल गया। क्या लिखूं, करम सिंह विलायत गया है, उसका पता भेजा जा रहा है। अभी तो उसने लिखा है कि लॉ पढ़ेगा, मगर कैसे चल रहा है, सो खुदा जाने, खर्च बहुत ज्यादा हो रहा है।

भाई हमारी मुमालिक गैर (विदेश) में जाकर तालीम (शिक्षा) हासिल करने की ख्वाहिश पायमाल (बर्बाद) हुयी। अच्छा तुम्ही लोगों को सब मुबारक, कभी मौका मिले तो कोई अच्छी अच्छी कुतुब (पुस्तकें) भेजने की तकलीफ उठाना। आखिर अमेरिका में लिट्रेचर तो बहुत है। खैर, अभी तो अपनी तालीम में बुरी तरफ फंसे हुये हो।

सान्फ्रासिस्को बगैरह की तरफ से सरदार जी (अजीत सिंह) का शायद कुछ पता मिल सके। कोशिश करना। कम अज कम जिन्दगी का यकीन तो हो जाये। मैं अभी लाहौर जा रहा हूं। कभी मौका मिले तो खात तहरीर फरमाइयेगा। पता सूत्र मंडी लाहौर होगा। और क्या लिखूं? कुछ लिखने को नहीं है। मेरा हाल भी खूब है। बारहा (कई बार) मुसायब (मुसीबतों) का शिकार होना पड़ा। आखिर केस वापिस ले लिया गया। बादजा (बाद में) फिर गिरफ्तार हुआ। साठ हजार की जमानत पर रिहा हूं। अभी तक कोई मुकदमा मेरे खिलाफ तैयार नहीं हो सका और ईश्वर ने चाहा तो हो भी नहीं सकेगा। आज तक एक बरस होने को आया मगर जमानत वापिस नहीं ली गयी। जिस तरह ईश्वर को मंजूर होगा (लिखकर काट रखा है) ख्वाहमख्वाह तंग करते हैं' भाई खूब दिल लगाकर तालीम हासिल करते जाओ।

आपका तावेंदार

भगत सिंह[1]

अपने मुताल्लिक और क्या लिखूं, ख्वामहख्वाह शक का शिकार बना हूं। मेरी डाक रूकती है। खतूत (पत्र) खोल लिये जाते है। न जाने मैं कैसे इस कदर शक की निगाह से देखा जाने लगा। खैर भाई, आखिर सच्चाई सतह पर आयेगी और इसी की फतह होगी।

****

---

1. सरदार भगत सिंह– पत्र और दस्तावेज, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज– 23

भगत सिंह
और
क्रान्तिकारी आन्दोलन
(1926 - 1931)

क्रान्ति के पथ पर भगत सिंह के प्रगतिशील कदम

डेरी व डायरी :

दशहरा बम–काण्ड के पश्चात भगत सिंह की गिरफ्तारी और जमानत के पश्चात रिहाई हुई। उनके पिता सरदार किशन सिंह जी ने लाहौर के पास खासरियां गांव में डेरी खुलवा कर उन्हें कार्य में लगवा दिया। भगत सिंह जी इस समय जमानत में जकड़े हुये थे और वे अच्छी तरह से जानते थे कि जमानत देने वालों के प्रति उनका क्या उत्तरदायित्व है। वे ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकते थे जिससे उनके जमानती किसी खतरे में पड़ें।

अतः उन्होने डेरी में कार्य करना शुरू कर दिया। इसमें उनका प्रमुख उद्देश्य था कि पुलिस यह समझे कि भगत सिंह जी अब व्यापार व्यवसाय में लग गये हैं। यह कार्य भी उन्होने बड़ी लगन से किया। सुबह चार बजे उठक वे भैंसों का दूध दुहते थे और उसे तांगे में रखकर लाहौर ले जाते थे। ग्राहकों को दूध बांटना, उनसे पैसा लेना व हिसाब रखना आवश्यक वस्तुओं को खरीदना, यह सभी कार्य वे एक सफल व्यापारी की तरह कर रहे थे। यदि नौकर नहीं आये तो वे गोबर तक स्वयं ही उठाते थे। और भैंसों की सानी लगाने का कार्य भी स्वयं ही करते थे। दिन में यह डेरी रहती थी वहीं दूसरी ओर रात में क्रान्तिकारियों का मिलन स्थल बन जाती थी। उनके सभी साथी आराम से दूध पीते थे और आपस में सलाह मशवरे करते थे और कुछ कर गुजरने की योजनाओं को बनाते थे।[1]

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 102

इसी समय भगत सिंह को डेरी में एकान्त मिला और भगत सिंह ने 1927 में लिखना शुरू कर दिया। अपने अधूरे लेखों को पूरा किया और कुछ नये लेख भी लिखे। इस प्रकार डेरी का कार्य उनके क्रान्तिकारी उद्देश्य में बाधा बनने के बजाय सहायक सिद्ध हो गयी।

इसके साथ ही भगत सिंह लगातार अपनी जमानत की जकड़न को तोड़ने में लगे रहे। वे स्वयं ही सरकार को जमानतियों की ओर से लिखते रहे कि भगत सिंह पर मुकदमा चलाया जाये या फिर जमानत समाप्त कर दी जाये। पत्रों में भी इस सम्बन्ध में चर्चा होती रहती थी। तभी श्री बोधराज ने पंजाब असेम्बली में सवाल उठाया कि जब सरकार के पास भगत सिंह के खिलाफ सबूत है तो वह मुकदमा क्यों नहीं चलाती। बाद में डा0 गोपीचन्द्र भागर्व ने भी ऐसे ही प्रश्न पर नोटिस दिया। सरकार ने जमानत समाप्त करने की घोषणा कर दी और भगत सिंह मुक्त होकर अपने काम में लग गये।

इस बीच भगत सिंह ने परिश्रम करके क्रान्तिकारियों के चित्र और चरित्र ढूढे। काकोरी के शहीदों की स्मृति में काकोरी डे मनाया। पंजाबी और उर्दू भाषा में प्रगतिशील विचारों की पत्रिका 'किर्ती' (अमृतसर) में लेख लिखे। 'चांद' और 'फासी अंक' जो नवम्बर 1928 में प्रकाशित हुआ उसमें 'विप्लव यज्ञ की आहूतियां' नाम से जो 80 पृष्ठों में क्रान्तिकारियों के जीवन चित्र छपे हैं उनमें से कुछ को छोड़कर भगत सिंह ने ही लिखे हैं। भगत सिंह द्वारा लिखे पंजाबी और उर्दू भाषा के लेखों का हिन्दी रूपान्तर उनके अभिन्न साथी तथा प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री शिववर्मा जी ने किया।[1]

जमानत के हटते ही भगत सिंह ने डेरी की चिन्ता करना छोड़

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–102

दिया जिससे ग्राहकों को समय पर दूध न मिलने से डेरी टूट गयी। अप्रैल–मई 1928 तक भगत सिंह का कुछ न कुछ सम्बन्ध घर से बना रहा और इसके पश्चात वे पूरी तरह अर्न्तध्यान होकर अपने जीवन की पूर्णाहुति में लग गये।

नौजवान भारत सभा का पुर्नजीवन :

गिरफ्तारी और जमानत के दौरान भगत सिंह जी 'नौजवान भारत सभा' की ओर से उदासीन हो गये और यह सभा निर्जीव सी होकर रह गयी। किन्तु जमानत ओर जमानती दोनों से जैसे ही भगत सिंह स्वतंत्र हुये वे नौजवान भारत सभा को पुर्नजीवित करने में लग गये।

उस समय पंजाब में किर्ती नामक क्रान्तिकारी पत्रिका थी जिसका उद्‌देश्य पंजाबी भाषी लोगों में भारत की मुकम्मिल आजादी और समाजवादी विचारों का प्रचार करना था। 1927 में इस पत्रिका का कार्य श्री सोहन सिंह जोश जी देख रहे थे। इस पत्रिका का उद्‌देश्य सिर्फ प्रचार करना ही नहीं था अपितु जनता को हरकत मे लाने का प्रयास भी करना था। इस कारण यह पत्रिका किसानों, मजदूरों और नौजवानों को संगठित करने का कार्य कर रही थी।

'किर्ती' के सम्पादकों द्वारा जलियांवाला बाग में नौजवानों को संगठित करने के लिये एक काफ्रेंस की तैयार की जा रही थी। जिसकी तिथि 11, 12 व 13 अप्रैल 1928 में रखी गयी। इसमें 13 अप्रैल की तिथि जलियांबाला बाग के शहीदों का दिन था। उर्दू तथा पंजाबी के अखबारों एवं लाहौर के ट्रिब्यून में इस कांफ्रेस का प्रचार किया जा रहा था। श्री सोहन सिंह जोश के शब्दों में–

"कांफ्रेंस से कुछ दिन पहले, छह–सात अप्रैल को एक नौजवान जो मुझसे छोटी उम्र का था, अमृतसर में रेलवे लाइन पर बने लकड़ी के पुल के

पास किर्ती के दफ्तर में मुझसे मिलने के लिये आया। वह एक सुन्दर युवक था। उसके नक्शे तीखे थे और चहेरे पर सौम्य भाव अमृतसर आने का उसका मकसद यह था कि हमारी ओर से की जा रही कांफ्रेंस के राजनैतिक लक्ष्य और कार्यक्रम के बारे में जानकारी प्राप्त की जाये।

उसने मुझे बताया कि उसका नाम भगत सिंह है और वह लाहौर में विद्यार्थियों को संगठित कर रहा हैं उसने कहा कि वह और उसके साथी हमारी इस कांफ्रेंस में शामिल होने की इच्छा रखते हैं। और वे समझना चाहते हैं कि इस कांफ्रेंस का राजनीतिक प्रोग्राम क्या है।''1

इस कांफ्रेंस की व्यवस्था किर्ती के सम्पादकों द्वारा की जा रही थी और यह वैज्ञानिक समाजवाद में विश्वास रखते थे। अतः इस कान्फ्रेंस का मकसद मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित वैज्ञानिक कार्यक्रम को स्वीकार करवाना था।

भगत सिंह ने यह जानकारी प्राप्त करके कहा कि 'आपका प्रोग्राम इंकलाबी' है और इस कांफ्रेंस में शामिल होने को कहा। इसके साथ ही श्री सोहन सिंह जोश जी को यह जानकारी भी दी कि वे लाहौर में एक नौजवान संगठन जिसका नाम 'नौजवान भारत सभा' है, उसे चला रहे हैं। किन्तु इस समय वह निष्क्रिय हो गयी है जिसका कारण सरकार द्वारा पाबन्दी लगाना है। सरकार ने भगत सिंह को कालेज में जाना तथा सी0आई0डी0 द्वारा संगठनकर्ताओं का पीछा किया जाना तथा विद्यार्थियों से बातचीत करने तक पाबन्दी लगा दी। इसके पश्चात भगत सिंह ने श्री सोहन सिंह जोश जी से इस कांफ्रेंस में अपने लाहौर के साथियों सहित शामिल होने का वायदा किया।

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 106

अपनी निश्चित तिथि के अनुसार कांफ्रेंस हुई। भगत सिंह और उनके लाहौर के साथियों ने इस काफ्रेंस में भाग लिया। इसके अतिरिक्त अनेकों पढ़े लिखे, हिन्दू, सिख और मुसलमान नौजवान भी इसमें शामिल हुये। इस कांफ्रेंस की अध्यक्षता 'श्री केदारनाथ सहगल' जी ने की। श्री केदारनाथ सहगल जी पहले 'नौजवान भारत सभा' के सदस्य भी रह चुके थे। इस कांफ्रेंस में इन्होंने अध्यक्ष के रूप में भाषण दिया। जिसमें पंजाबी नौजवानों की देश सेवा और कुर्बानियों की प्रशंसा की तथा वर्तमान स्थिति को बताते हुये नौजवानों को आवाहन किया कि वे देश को आजाद कराने और जनता को संगठित करने के लिये मैदान में उतरें।

इस कांफ्रेंस में धार्मिक तथा साम्प्रदायिक संगठनों से संबंध रखने वाले नौजवानों को सदस्य बनने के लिये इजाजत के लिये दो विपरीत मत थे। श्री गोपाल सिंह कौमी अकाली नौजवानों को शामिल करने के पक्ष में थे तथा मुंशी अहमद दीन अहरारियों को शामिल करना चाहते थे और इनके विरोधी थे, किर्ती का प्रबन्धक ग्रुप और भगत सिंह का ग्रुप। लम्बे वाद–विवाद के बाद किर्ती प्रबन्धक ग्रुप और भगत सिंह ग्रुप श्री गोपाल सिंह कौमी और मुंशी अहमद दीन के पक्ष को हराने में सफल हो गये और यह स्पष्ट हो गया कि धर्म व्यक्ति का निजी मामला है तथा साम्प्रदायिकता हमारी दुश्मन है, जिसका विरोध आवश्यक है।

इस कांफ्रेंस में तय हुआ कि नौजवानों का नया संगठन और साम्प्रदायिक, धर्म निरपेक्ष और जनतांत्रिक होगा। यह नौजवान संगठन स्वाधीनता संग्राम को क्षति पहुंचाने, शिथिल बनाने आदि परिस्थितियों से मुकाबला करेंगे।

इस प्रकार संगठन का नाम नौजवान भारत सभा सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ जिसके सदस्य– सोहन सिंह जोश अध्यक्ष लाला रामचन्द्र, अब्दुल

मजीद, मुहम्मद तुफैल, एहसान इलाही, शेख हिशामुददीन, छबीलदास, हरिसिंह चरवाहा, गोपाल सिंह कौमी और कपिल देव शर्मा थे। भगत सिंह महासचिव और भगवती शरण बोहरा प्रचार मंत्री चुने गये इस प्रकार 16 अप्रैल को भगत सिंह और भगवती शरण बोहरा द्वारा तैयार किया गया घोषणा पत्र पारित हुआ। यह राजनीतिक चेतना के विकास को व्यक्त करने वाला दस्तावेज था। 'भगत सिंह से चार मुलाकातें' में लिखा है–

''भविष्य में देश को संघर्ष के लिये तैयार करने का प्रोग्राम इस नारे के साथ शुरू होगा– 'जनता का इंकलाब और जनता के लिये इंकलाब'। दूसरे शब्दों में वह स्वराज जो 98 प्रतिशत जनता के लिये हो।''

भगत सिंह और उनके साथियों के वैज्ञानिक क्रान्तिकारी बन जाने का प्रमाण इस घोषणा पत्र के शब्दों द्वारा ज्ञात होता है–

''वह स्वराज जिसे लोग प्राप्त ही नहीं करेंगे बल्कि वह होगा भी उन्हीं के लिए। यह बहुत मुश्किल काम है। चाहे हमारे नेताओं ने कई सुझाव दिए हों, पर किसी में भी इतना हौसला नहीं था, जिसने समूची जनता की जागृति के लिए कोई ठोस योजना प्रस्तुत की हो या उसे सफलता के साथ सिरे चढ़ाने का साहस दिखाया हो। बहुत विस्तार में न जाते हुए हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि अपने असली उद्देश्य की पूर्ति के लिए रूसी नौजवानों की तरह हमारे भी हजारों नौजवानों को अपना जीवन देहातों में बिताना पड़ेगा और लोगों को समझाना होगा कि भावी क्रान्ति का भाव क्या है। लोगों को यह बात महसूस कराने की जरूरत है कि भावी क्रान्ति का अर्थ सिर्फ शासकों की तबदीली ही नहीं होगा। सबसे बढ़कर इसका अर्थ होगा, एक बिलकुल नये ढाँचे पर एक नये राजतन्त्र की स्थापना करना। यह एक दिन या एक साल का काम नहीं है, कई

दशकों के अद्वितीय बलिदान ही जनता को इस महान कार्य को सम्पन्न करने के लिए तैयार कर सकते हैं और सिर्फ क्रान्तिकारी युवकों को ही इसे करना होगा। पर यह जरूरी नहीं कि बम और पिस्तौल वाला आदमी ही क्रान्तिकारी हो।''

दिवंगत कम्युनिस्ट नेता मुजफ्फर अहमद के कथनानुसार– ''1928 में उर्दू किर्ती में सोहन सिंह जोश के सहकारी के रूप में भगत सिंह ने कुछ समय तक काम किया।''

'नौजवान भारत सभा' का नया रूप कम्युनिस्टों के किर्ती ग्रुप और भगत सिंह ग्रुप का संयुक्त मोर्चा था। उन दिनों किर्ती में 'क्रान्तिकारी मां', 'इन्द्रचन्द्र नारंग का मुकदमा', 'पब्लिक सेफ्टी बिल' 'ट्रेड डिस्प्यूट बिल' और मोतीलाल नेहरू कमेटी रिपोर्ट पर टिप्पणी' इत्यादि जो सम्पादकीय प्रकाशित हुये, उन पर भगत सिंह के विचारों की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। श्री सोहन सिंह जोश ने लिखा है–

''किर्ती के प्रबन्धकों ने भगत सिंह को एक बार 400 रू0 तथा दूसरी बार 300 रू0 दिये। यह रकम अपनी मर्जी से खर्च करने के लिये दी गयी थी। जो पारिश्रमिक के अलावा थी। उन्होने लगभग तीन महीने काम किया और फिर वह अलोप हो गये।''

हिन्दुस्तान-समाजवादी प्रजातंत्र संघ :

8–9 सितम्बर 1928 में क्रान्तिकारी दल की बैठक दिल्ली में फिरोज शाह के खण्डहरों में हुई। इस बैठक में शामिल होने के लिये पंजाब, युक्तप्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) बिहार व राजपूताना से क्रान्तिकारी आये। इस बैठक में चन्द्रशेखर आजाद नहीं आ पाये, उन्होने संदेश भेज दिया कि जो निर्णय सभी

क्रान्तिकारी मिलकर तय करेगें, वह उन्हें स्वीकार होगा।

इस सभा में जयदेव, शिववर्मा, विजय कुमार सिंह, सुखदेव, ब्रह्मदत्त, सुरेन्द्र नाथ पाण्डेय, फणीन्द्र नाथ घोष थे। इन लोगों ने एक नई केन्द्रीय समिति बनाई। इसके निम्नलिखित सात सदस्य थे– 1. सरदार भगत सिंह, 2. चन्द्रशेखर आजाद, 3. सुखदेव, 4. शिव वर्मा, 5. विजय कुमार, 6. फणीन्द्र नाथ घोष, 7. कुन्दनलाल।[1] इसमें आतंकवाद करने का निश्चय किया गया।

काकोरी युग के समय में इस क्रान्तिकारी दल का नाम 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' यानि 'हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र संघ' था। इस समय यह धारणा आयी कि इस नाम से दल का उद्देश्य पूर्णतया स्पष्ट नहीं होता इसलिये इसको स्पष्ट करना आवश्यक है। अतः इस क्रान्तिकारी दल का नाम बदलकर 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन यानि हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ' रखा गया। इस नाम परिवर्तन से स्पष्ट होता है कि 'क्रान्ति के उद्देश्य की पहली बार स्पष्ट घोषणा। इस प्रकार यह सूचित करता है कि दल के ध्येय में और अधिक विकास हुआ। दल ने समाजवाद और मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व को घोषित किया। इस बैठक का सर्वोच्च नेतृत्व भगत सिंह के हाथों में था।

इस बैठक में विभिन्न क्रान्तिकारियों को प्रान्तों का इन्चार्ज नियुक्त किया गया और प्रान्तों के बीच कड़ियां जोड़ने का काम भगत सिंह और श्री विजय कुमार सिन्हा जी को सौंपा गया। जगह जगह घूमने में भगत सिंह के केश और दाड़ी बाधक थे। इसलिये इस दल ने फैसला किया कि भगत सिंह इन्हें कटवा दें। भगत सिंह के साथियों ने पहले उनक केश काटे और बाद में नाई

---

1. मन्मतनाथ गुप्त : राष्ट्रीय .... पेज नं0–226

द्वारा बाल कटाये गये, ताकि किसी को सन्देह न हो। इस प्रकार भगत सिंह सिखवीर से राष्ट्रवीर हो गये और दल का नया नम उन्हें मिला–रणवीर।[1]

दल की ओर से कई स्थानों में बम लगाने के कारखाने खोले गये जिनमें से लाहौर, सहारनपुर, कलकत्ता और आगरे में बडे कारखाने स्थापित हुये। लाहौर और सहारनपुर के कारखाने बाद में पकड़े गये। श्री कमल नाथ तिवारी (लाहौर षड़यंत्र केस के अभियुक्त और बाद में संसद सदस्य) के शब्दों में–

''साण्डर्स हत्याकाण्ड से कुछ दिन पहले भगत सिंह देशी बम बनाने के लिये कुछ आवश्यक केमिकल्स खरीदने के उद्देश्य से कलकत्ता आये। यह काम मुझे सौंपा गया। इनका बाजार में जाना सन्देहास्पद हो सकता था। मैं बहुत सी दुकानों पर गया। अधिकतर दुकानदारों ने सरकारी प्रतिबन्धा के कारण केमिकल्स देने से इन्कार कर दिया। बाद में क्रान्तिकारी दल से सहानुभूति रखने वाले दुकानदारों के यहां मैं 'भाई बैजनाथ सिंह' विनोद (बाद में 'जायसवाल युवक' और 'विश्ववाणी' के सम्पादक) के साथ गया। उनसे आवश्यक केमिकल्स मिल गये। उनमें श्री बी०पाल० का नाम मुझे आज भी याद है।''[2]

केमिकल्स मिलने के पश्चात भगत सिंह, फणीन्द्रनाथ घोष (बाद में सरकारी गवाह) ओर श्री यतीन्द्रनाथ दास तीनों एक आर्य समाज में जाकर देशी बम में काम आने वाली 'गन कारन' तैयार की। और शेष केमिकल्स लेकर भगत सिंह आगरा के लिये रवाना हो गये। बाद में श्री यतीन्द्र नाथ ने आगरा में ही बम बनाने की शिक्षा दी। जो बम बाद में असेम्बली में फेका गया, वह आगरा से ही दिल्ली लाया गया था। इस प्रकार भगत सिंह लाहौर दिल्ली, कानपुर, आगरा सभी जगह का भ्रमण करते रहे। उनमें संगठन शक्ति अथाह थी।

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–163
2. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं० 12

1929 की लाहौर कांग्रेस में दुर्गा भाभी और दूसरे क्रान्तिकारी साथियों ने 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ' का जो घोषणात्मक पत्र वितरित किया उसके ये शब्द हैं–

''भारतीय प्रजातन्त्र के नौजवानों, नहीं सिपाहियो, पंक्तिबद्ध हो जाओ। आराम से खड़े मत रहो। अपनी टांगे मत दबाओ। दीर्घ दरिद्रता (विचार दरिद्रता) को जो तुम्हें निष्क्रिय बनाए हुये हैं अपने से अलग फेंक दो। तुम्हारा मिशन बहुत ही नेक है। देश के हर कोने और दिशा में बिखर जाओ और भविष्य की क्रान्ति के लिये जिसका आना निश्चित है, लोगों को तैयार करो। फर्ज के बिगुल की आवाज सुनो। यों ही जीवन व्यर्थ न गंवाओ। बढ़ो, तुम्हारे जीवन का हर क्षण इस प्रकार की योजनाएं तथा उपाय खोजने में लगना चाहिए कि किस तरह अपनी इस पुरातन धरती की आंखों में ज्वाला धधके और एक बडी अंगड़ाई लेकर यह जाग उठे। अंग्रेज साम्राज्य के विरूद्ध नौजवानों के उपजाऊ मन में उकसाहट और नफरत भर दो। ऐसे बीज डालो, जो उगें और छतनार पेड़ बन जाएं क्योंकि इन बीजों को हम अपने गर्म खून से सीचेंगे। तब एक भयानक भूचाल आएगा, जो एक जबर्दस्त धमाके के साथ गलत चीजों का विनाश करेगा और साम्राज्यवाद के महल को धराशायी कर देगा। यह एक महाप्रलय होगी।

''तब सिर्फ एक नया भारतीय राष्ट्र अस्तित्व में आएगा, जो समूची मानवता को आश्चर्यचकित कर देगा, अपने गुणों और आनबान से। प्रबुद्ध और शक्तिशाली, सादा तथा कमजोर लोगों से हैरान रह जायेगा।

''व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी तभी सुरक्षित होगी। सर्वहारा के अधिनायकत्व और प्रभुसत्ता को सत्कारा जायेगा। हम ऐसी ही क्रान्ति के आगमन का संदेश दे रहे हैं। इंकलाब जिन्दाबाद!''

साण्डर्स हत्याकाण्ड

1928 में भारत के भाग्य का निपटारा करने के लिये विलायत से एक कमीशन आया, जिसके प्रधान इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध वकील सर जान साइमन थे। केवल कांग्रेस न ही नहीं बल्कि मुल्क की सारी संस्थाओं ने उसके बॉयकाट का निश्चय किया। 'साइमन लौट जाओ' के नारे से सारा भारत गूंज उठा।[1]

सर जान साइमन ही इस कमीशन के प्रधान थे। साइमन कमीशन में एक भी भारतीय नहीं लिया गया था और इसके सब सदस्य अंग्रेज थे। इसीलिये भारत की सभी प्रमुख संस्थाओं और कांग्रेस ने इसका बहिष्कार करने का निश्चय किया। जहां–जहां साइमन गया, वहीं उसे काले झण्डे दिखाये गये और 'साइमन गो बैंक' के नारे लगे। 3 फरवरी, 1928 में यह कमीशन बम्बई पहुंचा जहां 'साइमन गो बैंक' के नारों के साथ उग्र प्रदर्शन हुआ। बम्बई के बाद दिल्ली में काले झण्डे दिखाये गये, मद्रास में पुलिस ने गोली चलाई, जिसमें तीन प्रदर्शनकारी मारे गये। इस प्रकार सारा देश ही बहिष्कार के लिये तत्पर हो गया। पं0 जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में–

''जहां जहां कमीशन गया, वहां वहां विरोधी जन समूहों ने 'साइमन गो बैक' के नारे लगाकर उसका स्वागत किया और इस तरह भारत के तमाम लोगों की बहुत बड़ी तादाद न सिर्फ सर जान साइमन का नाम ही जान गयी, बल्कि अंग्रेजी के 'गो बैक' ये दो शब्द भी उसे मालूम हो गये। ऐसा मालूम पडता है कि इन शब्दों से कमीशन के मैम्बरों के कान भडकते थे और अपनी इसी भड़क की वजह से वे चौंक पड़ते थे। कहते हैं कि एक मर्तवा जब वे नयी दिल्ली के बेस्टर्न होटल में ठहरे हुये थे, तब उन्हें रात के अंधेरे में 'साइमन गो

---

1. 'भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, 'मन्मथनाथ गुप्त' पेज नं0 227

बैक' का नारा सुनाई देने लगा। इस तरह रात में पीछा किये जाने पर मेम्बर लोग बहुत चिढ़े, जबकि असल बात यह थी कि वह आवाज उन गीदड़ों की थी, जो शाही राजधानी के ऊजड़ प्रदेशों में रहते थे।''[1]

उत्तर भारत में क्रान्तिकारी दल पूरी तरह संगठित था। कहा जाता है कि भगत सिंह ने कमीशन को बम फेंककर खत्म कर देने की योजना बनाई। केन्द्रीय समिति ने उनका यह प्रस्ताव स्वीकार भी कर लिया। किन्तु इस योजना को सफल करने के लिये जिन साधनों की आवश्यकता थी, वे जुट नहीं पाये क्योंकि दल उस समय आर्थिक संकट से गुजर रहा था।

इन्हीं परिस्थितियों में अक्टूबर 1928 में 'साइमन कमीशन' लाहौर पहुंचा। 'नौजवान भारत सभा ने कमीशन के बहिष्कार की योजना पहले से ही बना ली थी। उस दिन शहर में हड़ताल रही और चारों तरफ काले झंडे फहरा रहे थे। सभी दलों ने इस बहिष्कार के लिये सहयोग किया किन्तु 'नौजवान भारत सभा' प्रमुख थी। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत प्रदर्शनकारी उत्साह से भरे गा रहे थे–

''हिन्दू हैं हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा
मुड़ जाओ साइमन कि वाकी जहां तुम्हारा ।''[2]

गाड़ी आने से पहले ही प्रदर्शनकारी स्टेशन पर पहुंच गये। पंजाब केसरी लाला लालपत राय जो नेतृत्व कर रहे थे। नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ता उन्हें घेरे हुये थे। ताकि पुलिस के प्रहारों से उनकी रक्षा की जा सके।

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–165–167
2. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 130–131

लाहौर के पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट मिस्टर स्काट दूसरे अफसरों के साथ स्टेशन पर था। उन्होने अपने विश्वसनीय असिस्टेण्ट पुलिस सुपरिटेण्डेन्ट मि0 साण्डर्स को प्रदर्शनकारियों से रास्ता साफ करने का कार्य सौंपा और जरूरत पड़ने पर लाठी चार्ज करने का आर्डर भी दे दिया।

जैसे ही कमीशन के सदस्य स्टेशन से बाहर आये, 'साइमन गो बैंक' के नारे लगने शुरू हो गये। नौजवान अपने–अपने स्थान पर डटे रहे और उन्होने निश्चय कर लिया था कि वह कमीशन को शहर में नहीं जाने देगें। इस प्रकार नौजवानों की टोली अपनी जगह थी और लाला लाजपत राय जी अपने स्थान पर अडिग थे और सरदार किशन सिंह तथा भगत सिंह जी उन्हें बल दे रहे थे। जहां से कमीशन को गुजरना था वहां भीड़ और भी अधिक थी और बहुत जोर–जोर से नारे लग रहे थे।

पुलिस ने हल्का सा लाठी चार्ज किया। किन्तु इसका कुछ भी असर नहीं हुआ। नौजवान चट्टान की तरह डटे रहे। रास्ता मिलते न देखकर पुलिस अधीक्षक जे0ए0 स्काट बौखला उठा और उसने आक्रोश में भरकर पुलिस को चारों तरफ से हमला करने का आदेश दे दिया। पुलिस वाले भूखे भेड़ियों की तरह प्रदर्शनकारियों पर टूट पड़े। उप अधीक्षक साण्डर्स ने सीधे लालाजी पर हमला किया। उसकी पहली लाठी लालाजी की छाती पर पड़ी, दूसरी कंधे पर और तीसरी सिर पर। फिर वह निर्दयता से पीटता ही रहा। भगत सिंह और नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने प्रत्याक्रमण करना चाहा तो लाला जी ने उन्हें शान्त रहने का संकेत किया और प्रदर्शन स्थगित कर दिया।[3]

शांति में मोरी दरवाजे के मैदान में कांग्रेस के आवाहन पर एक सार्वजनिक सभा हुयी। उसने अत्यन्त भीड़ थी। लाला लालपत राय जी भी इस

सभा में गये। उस समय वे आक्रोश में थे उनसे यह अपमान सहन नहीं हो रहा था इसलिये उन्होने अपने भाषण में यह घोषणा की–

''मैं घोषणा करता हूं कि मुझ पर जो चोट पड़ी हैं वह भारत में अंग्रेजी राज के कफन की आखिरी कील साबित होगी।[1]

लाला जी को उसी दिन अस्पताल में भर्ती कराया गया और 7 नवम्बर 1928 को अस्पताल में ही उनकी मृत्यु हो गयी। कहा जाता है कि लाला जी की मृत्यु उन्हीं चोटो के कारण हुयी। उनकी मृत्यु से देश की जनता में उनके प्रति अपार श्रद्धा और अंग्रेजी सरकार के प्रति अपार आक्रोश जागृत हुआ। लाला लालपत राय की मृत्यु से सारे भारत में शोक छा गया और उनकी इस तरह एक अंग्रेज के अत्याचारों से मृत्यु होने पर बड़ा भारी राष्ट्रीय अपमान समझा गया।

''एक सभा में देशभक्त चितरंजन दास की धर्म पत्नी वासन्ती देवी ने कहा–

''मैं जब यह सोचती हूं कि किसके हिंसक हाथों ने उस व्यक्ति को स्पर्श करने का साहस किया था, जो इतना वृद्ध, इतना आदरणीय और भारत माता के तीस करोड़ नर नारियों को प्यारा था, तो मैं अपमान के भावों से उत्तेजित होकर कांपने लगती हूं। क्या देश का यौवन और मनुष्यतत्व आज जीवित है, मैं भारत भूमि की अबला हूं। मैं इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर चाहती हूं। अतः युवक समाज आगे आकर उत्तर दे।''

---

1. भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, आर0सी0अग्रवाल, पृ0– 145

जब सरदार भगत सिंह और उनके साथियों ने यह सुना तो उनका खून खौलने लगा। भगत सिंह और उनके साथियों ने उस जुलूस में स्वयं अपनी आंखों से उस निर्दयी पुलिस अधिकारी साण्डर्स को लाला लाजपतराय को बुरी तरह पीटते हुये देखा था। 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र दल' के प्रमुख नेता अब चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह, शिवराम राजगुरू, जय गोपाल इत्यादि थे। इन्होने यह निश्चय किया कि आज सारे देश की यह मांग है कि राष्ट्रीय अपमान का बदला लिया जाये क्योंकि जो राष्ट्र सदा अपमान सहता रहता है, वह मुर्दा है।

लाला जी का अपमान पुलिस ने किया था और लाठी चलाने का हुक्म स्काट ने दिया था। इसलिये क्रान्तिकारी दल उसे ही अपना निशाना बनाना चाहते थे किन्तु हत्या साण्डर्स की हो गयी। क्योंकि स्काट उन दिनों लाहौर में नहीं थे। यह बयान मुकदमें के दौरान जयगोपाल ने दिया था क्योंकि यह साण्डर्स को ही स्काट समझता था। 9–10 दिसम्बर को मंजग हाउस में दल की बैठक हुयी और उसमें 17 दिसम्बर को स्काट की हत्या करने की योजना बनाई गयी क्योंकि उसी दिन एक महीना पूरा हो रहा था लाला जी की मृत्यु का।

17 दिसम्बर 1928 को दोपहर के बाद जय गोपाल (बाद में सरकारी गवाह) स्काट की खबर लेने के लिये पहुंच गये। राजगुरू जेब में भरी हुयी पिस्तौल लेकर पैदल गये और चन्द्रशेखर आजाद और सरदार भगत सिंह जी साइकिल से गये। जयगोपाल स्काट को पहचानता था इसीलिये उसे यह कार्य सौंपा गया कि जैसे ही वह दफ्तर से निकले जय गोपाल इसका इशारा दे। चार बजकर बीस मिनट पर साण्डर्स दफ्तर से बाहर निकला। जयगोपाल ने इसे ही स्काट समझकर इशारा दे दिया। पहली गोली राजगुरू ने चलाइ जो साण्डर्स के सिर पर लगी और वह मोटर साईकिल समेट धरती पर गिर पड़ा। इसके बाद

भगत सिंह ने तीन चार गोलियां चलायीं ताकि वह वहीं खत्म हो जाये। राजगुरू और भगत सिंह दोनों ही इस हत्या के बाद भागे। उनके पीछे हैंड कान्सटेबिल चानन सिंह तथा मिस्टर फर्ान ने पीछा किया। भगत सिंह ने फार्न पर गोली चलायी जिससे वह वहीं पर रूक गया। वे दोनों भागकर डी0ए0वी0 के अहाते में चले गये जो पुलिस दफ्तर के बिल्कुल सामने था। चन्द्रशेखर आजाद की जिम्मेदारी राजगुरू और भगत सिंह की रक्षा करने की थी। उन्होने चानन सिंह को पहले पीछा करने के लिये मना किया किन्तु वह जब नहीं माना तो चन्द्रशेखर आजाद ने उसे गोली मार दी और उसकी मृत्यु भी वहीं पर हो गयी। और फिर ये तीनों भागकर डी0ए0वी0 कालेज के होस्टल में चले गये और कुछ ही क्षणों में सब मौजंग हाउस (लाहौर में क्रान्तकारियों का निवास) पहुंच गये।

दूसरे दिन सुबह सूरज निकलने से पहले दीवारों पर जगह जगह पोस्टर चिपकाये गये। इन पोस्टरों का कागज गुलाबी रंग का था और स्याही लाल रंग की थी, उन पर लिखा था–

हिन्दुस्तान समाजवादी प्राजतंत्र सेना

नोटिस

नौकरशाही सावधान

जे0पी0 सांडर्स की मृत्यु से लाला लाजपत राय
की हत्या का बदला ले लिया गया।

यह सोचकर कितना दुख होता है कि जे0पी0 सांडर्स जैसे एक मामूली पुलिस अफसर के कमीने हाथों ने देश की तीस करोड़ जनता द्वारा सम्मानित एक नेता पर हमला करके उनके प्राण ले लिये गये। राष्ट्र का यह

अपमान हिन्दुस्तानी नवयुवकों एवं मर्दो को चुनौती थी।

आज संसार ने देख लिया है कि हिन्दुस्तान की जनता निष्प्राण नहीं हो गयी है। उन नौजवानों का खून जम नहीं गया है, वे अपने राष्ट्र के सम्मान के लिये प्राणों की बाजी लगा सकते हैं। और यह प्रमाण देश के उन नवयुवकों ने दिया है जिनका स्वयं देश के नेता निन्दा एवं अपमान करते हैं।

-अत्याचारी सरकार सावधान-

इस देश की दलित और पीड़ित जनता की भावनाओं को ठेस मत लगाओ, अपनी शैतानी हरकतें बन्द करो, हमें हथियार न रखने देने के लिये बनाये गये तुम्हारे सब कानूनों और चौकसी के बावजूद पिस्तौल और रिवाल्वर इस देश की जनता के हाथ में आते ही रहेगें। यदि वे हथियार सशस्त्र क्रान्ति के लिये पर्यान्त न भी हुये तो भी राष्ट्रीय अपमान का बदला लेते रहने के लिये तो काफी रहेगें ही। हमारे अपने लोग हमारी निन्दा और अपमान करें। विदेशी सरकार चाहे हमारा कितना भी दमन कर लें, परन्तु हम राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा करने और विदेशी अत्याचारियों को सबक सिखाने के लिये सदा तत्पर रहेगें। हम तमाम दमन और विरोध के बावजूद क्रांति की पुकार को बुलंद रखेगें और फांसी के तखते से भी पुकार कर कहेगें ''इन्कलाब जिन्दाबाद''।

हमें एक आदमी की हत्या करने का खेद है। परन्तु यह आदमी उस निर्दयी, नीच और अन्यायपूर्ण व्यवस्था का अंग था जिसे समाप्त कर देना आवश्यक है। इस आदमी की हत्या हिन्दुस्तान में ब्रिटिश शासन के कारिन्दे के रूप में की गयी हैं। यह सरकार संसार की सबसे अत्याचारी सरकार है।

मनुष्य का रक्त बहाने के लिये हमें खेद है। परन्तु क्रान्ति की वेदी पर कभी–कभी रक्त बहाना अनिवार्य हो जाता है। हमारा उद्देश्य एक ऐसी क्रान्ति से है जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त कर देगी।

इन्कलाब जिन्दाबाद!

ह0 बलराज

18 दिसम्बर, 1928 सेनापति, पंजाब हिसप्रस

उन पोस्टरों पर जो हत्या से पहले तैयार हो गये थे। उन पर स्काट का नाम लिखा था, उसे काट कर साण्डर्स लिख दिया गया था। जो पोस्टर हत्या के बाद रात में तैयार किये गये थे उन पर साण्डर्स का ही नाम था। यह पोस्टर नौजवानों ने अपने हाथों से दीवार पर चिपकायें। जो कोई पढ़ता था उसका सिर गर्व से ऊंचा उठ जाता था और मन में स्वतः यह भाव उत्पन्न होता था– राष्ट्र के अपमान का बदला ले लिया गया है।

साण्डर्स–बध के पश्चात् पुलिस द्वारा नौजवान भारत सभा और स्टूडेंट यूनियन के सदस्यों की पकड़–धड़क शुरू हो गयी। घरों की तलाशियां शुरू हुयी। पूछतांछ हुयी और तरह तरह की यातनायें दी लेकिन पुलिस को कुछ भी मालूम नहीं हो पाया क्योंकि किसी को कुछ मालूम ही नहीं था जो वह पुलिस को बता पाती।

17 दिसम्बर को जिन क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजी सरकार को हिलाया था वे सब उस दिन भूखे थे। जयगोपाल मुखबिर ने बाद में कहा था– ''मैं आजाद के कहने पर जब आपके मित्र वंशीलाल से मांगकर दस रूपये लाया, तो खाने–पीने की व्यवस्था हुई।''

साण्डर्स वर्ध के समय क्रान्तिकारी दल के सभी प्रमुख सदस्य लाहौर

में थे और उसे बाद उनमें से अधिकांश इधर–उधर चले गये। किन्तु सबसे प्रमुख समस्या थी कि भगत सिंह लाहौर से पुलिस से बचकर किस प्रकार निकले क्योंकि दशहरा बम काण्ड के पश्चात भगत सिंह जी पुलिस की निगाहों में आ चुके थे। हालांकि साण्डर्स वर्ध के समय बाल कटवाने के पश्चात भी वह एक सिख युवक के रूप में ही थे यह बात मुखबिर जय गोपाल ने अपने बयान में बतायी थी। इसलिये इस समय पुलिस एक सिख नौजवान की ही खोज कर रही थी। लाहौर में हर स्थान पर पुलिस का पहरा और सी0आई0डी0 की नजर थी।

श्री भगवती चरण बोहरा जो स्वयं इस समय मेरठ षड़यंत्र में फरार थे। एक दिन चुपचाप आकर दुर्गा भाभी को 1000 रू0 दे गये थे। लाहौर से कलकत्ता जाने वाली ट्रेन से फर्स्ट क्लास में नकली नामों से एक डिब्बा (कूपे) रिजर्व किया गया। सुबह पांच बजे भगत सिंह सिर पर हैट लगाकर ओवर कोट पहनकर साहब बहादुर बने हुये और गोद में बच्चा लेकर तथा पत्नी लेकर स्टेशन पहुंचे। उनकी पत्नी की भूमिका के रूप में श्री भगवती चरण बोहरा जी की पत्नी दुर्गा भाभी ने निभायी और उन्हीं का बच्चा शचीन्द्र भगत सिंह की गोद में था। और उनके साथ में श्री राजगुरू जी एक नौकर के रूप में सामान उठाते हुये चल रहे थे। पुलिस रिपोर्ट में भगत सिंह एक सिख तथा कुंवारे नवयुवक थे एवं पत्नी तथा बेटे के साथ इस रूप में पुलिस भगत सिंह को पहचान नहीं पायी।

श्री चन्द्रशेखर आजाद जी मथुरा के पण्डे के भेश में रामनामी दुपट्टा ओढ़े, माथे पर चंदन लगाये एवं हरिओम का उच्चारण करते हुये इसी ट्रेन के किसी डिब्बे में जाकर बैठ गये। इस प्रकार भगत सिंह, राजगुरू और श्री चन्द्रशेखर आजाद यह तीनों ही भेष बदलकर पुलिस की आंखों में धूल झोंककर लाहौर से फरार हो गये।

सुशीला दीदी उन दिनों कलकत्ते में सेठ छज्जूराम की तिमंजिली कोठी में रहती थी। वे सेठ जी की बेटी की अभिभाविका थी। दुर्गा भाभी ने सुशीला दीदी को तार दे दिया था कि वे भाई साहब के साथ आ रही हैं। सेठ छज्जूराम जी की धर्म पत्नी श्रीमती लक्ष्मी देवी जी को सुशीला दीदी ने सब कुछ बता दिया और उन्होने अपनी कोठी में अतिथि के रूप में इन लोगों को रहने की इजाजत दे दी।

श्री राजगुरू और श्री चन्द्रशेखर आजाद ट्रेन से कहीं और ही उतर गये और भगत सिंह व दुर्गा भाभी कलकत्ता स्टेशन पर उतरे। सुशीला दीदी व श्री भगतवती शरण बोहरा जी वहां पर उपस्थित थे और वे लोग सेठ छज्जूराम की कोठी में रहे। बाद में भगत सिंह जी दूसरी जगह अपने बंगाली क्रान्तिकारी मित्रों के पास चले गये। कलकत्ता में भगत सिंह का नाम हरि था और भगत सिंह जी बंगालियों की तरह धोती कुर्ता पहनकर ऊपर शाल ओढ़कर रहे।

भगत सिंह
संसद में बम फेंकने के समय

असेम्बली बम-काण्ड

साण्डर्स–काण्ड के पश्चात भगत सिंह जी कलकत्ता गये उस समय वहां पर कांग्रेस का वार्षिक–अधिवेशन हो रहा था। 1928 के पूरे वर्ष मजदूरों और किसानों ने लगातार संघर्ष किया और सरकार ने उन्हें कुचलने के लिये दमन चक्र चलाया। सशस्त्र वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी। इस समय राजनैतिक वातावरण उत्तेजनात्मक था। पं० मोतीलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष थे। कांग्रेस में विचार का मुख्य विषय था अंग्रेजी, सरकार को अल्टीमेटम देना ताकि एक वर्ष के अन्दर नेहरू रिपोर्ट (लगभग औपनिवेशिक स्वराज्य) को यदि स्वीकार नहीं किया तो कांग्रेस कभी भी पूर्ण स्वराज्य से कम पर राजी नहीं होगी।

सम्पूर्ण देश से राजनैतिक नेता और सरकार के गुप्तचर इस समय कलकत्ता में आये हुये थे। भगत सिंह बंगाली वेष बनाकर उत्तेजना के इस वातावरण में घूमते रहे और अधिवेशन की कार्यवाही को देखते रहे। कहा जाता है कि असेम्बली में बम फेंकने की योजना भगत सिंह ने कलकत्ता में ही बना ली थी। श्री योगेश चन्द्र चटर्जी के शब्दों में–

"भगत सिंह ने असेम्बली भवन में बम फेंकने की योजना के बारे में अनुशीलन समिति नामक गुप्त संगठन के एक उच्च कोटि के नेता स्व० प्रतुलचन्द्र गांगुली के साथ चर्चा की। श्री गांगुली ने भगत सिंह की योजना को पसन्द किया। असेम्बली में बम फेंकने के बाद गिरफतार होने पर जो रिवाल्वर उनके पास पकड़ा गया था। वह भगत सिंह् को श्री गांगुली ने ही दिया था। कुछ बम भी कलकत्ता से ही दे दिये गये थे। भगत सिंह का जो प्रसिद्ध चित्र फैल्ट हैट पहने हुये मिलता है, वह भी कलकत्ता में ही लिया गया था।"[1]

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–175

इसके पश्चात भगत सिंह कलकत्ता से आगरा चले गये। कलकत्ता से चलते समय सुशीला दीदी ने अपने खून से भगत सिंह को मस्तक पर तिलक लगाकर विदा किया। आगरा में पहले से ही दूसरे क्रान्तिकारी साथी उपस्थित थे। हींग की मण्डी और नमक की मण्डी में दो मकान ले लिये गये थे। जहां पर बम बनाने और सिखाने का काम शुरू हो चुका था। साण्डर्स वर्ध से क्रान्तिकारियों की लोकप्रयता बढ़ गयी थी। और अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ने के लिये उन्हें पैसा भी मिलने ला था। सहारनपुर और लाहौर में भी बम फैक्टरियां खोलीं जा चुकीं थीं। भगत सिंह की असेम्बली में बम फेंकने की योजना संगठन के साथ केन्द्रीय समिति ने भी स्वकार कर ली थी। और इस योजना को साकार करने के लिये तैयारिया भी शुरू कर दीं। इसलिये दिल्ली के सीताराम बाजार में एक मकान किराये पर ले लिया गया और श्री जयदेव कपूर जी को परिस्थितियों की जांच करने तथा ऐसे सम्बन्ध बनाने का कार्य सौंपा गया जिससे असेम्बली में जाने का पास आसानी से मिल सके। उन्होने असेम्बली के कुछ कांग्रेसी सदस्यों से सम्पर्क स्थापित किया और अपना परिचय हिन्दू कालेज में विद्यार्थी के रूप में दिया। इस बीच भगत सिंह आगरा से दिल्ली आते–जाते रहते थे और योजना की बारीकियों का अध्ययन करते रहे।

श्री जयदेव कपूर जी ने दिल्ली में असेम्बली के सदस्यों से विश्वसनीय सम्पर्क जोड़ लिया था ताकि असेम्बली में आने जाने के लिये पास मिल जाता था। इन पासों से भगत सिंह, चन्द्रशेखर ‌‌ाजाद और दूसरे कई साथी असेम्बली में जा चुके थे और सभी परिस्थितियों को समझ चुके थे कि योजना को साकार किस प्रकार करना है। असेम्बली में आने जाने में भगत सिंह को डा० किचलू ने पहचान लिया था। भगत सिंह उनसे जाकर मिले और उन्होने सहायता देने का वायदा भी किया तथा डा० किचलू ने सहायता भी की।

श्री चन्द्रशेखर आजादी भी बम फेंकने की योजना से पूरी तरह सहमत थे किन्त वे भगत सिंह को असेम्बली में बम फेंकने के लिये नहीं भेजना चाहते थे क्योंकि साण्डर्स बध के कारण पुलिस को भगत सिंह की तलाश थी और दल द्वारा यह भी निर्णय ले लिया गया था कि बम फेंकने के पश्चात गिरफ्तार होना है ताकि अपने संगठन का रूप तथा लक्ष्य मुकद्में के दौरान बयानों द्वारा जनता तक पहुंचाया जा सके।

दल की केन्द्रीय समिति की जिस बैठक में दिल्ली असेम्बली में बम फेंकने का निश्चय किया गया, उसमें सुखदेव नहीं थे। भगत सिंह का आग्रह था कि इस काम के लिये उन्हें अवश्य भेजा जायें लेकिन बाकी सदस्यों ने उनकी बात नहीं मानीं उस समय साण्डर्स की हत्या के सिलसिले में पंजाब की पुलिस भगत सिंह की तलाश में थी। उनके पकड़े जाने के मानी था फांसी। समिति ने भगत सिंह की बात न मानकर दूसरे दो साथियों को भेजने का निर्णय किया।[1]

केन्द्रीय समिति ने भगत सिंह के स्थान पर श्री बटुकेश्वर दत्त और श्री विजय कुमार सिन्हा जी का नाम निश्चय किया। दो तीन दिन बाद जब श्री सुखदेव जी आये और उन्हें यह जानकारी प्राप्त हुयी तो उन्होने समिति के इस निर्णय का विरोध किया। उनका कहना था कि पकड़े जाने के पश्चात अदालत के मंच में दल के सिद्धान्त, आदर्श, उद्देश्य एवं बम–विस्फोट के राजनैतिक महत्व को भगत सिंह ही भली प्रकार बयान कर सकते हैं। इसलिये वह स्वयं इस काम को करें।

जब समिति में उनकी बात नहीं मानी गयी तब उन्होने भगत सिंह से बात की। सुखदेव जी के व्यवहार में बड़ी कठोरता थी। बातो–बातों में उन्होने भगत सिंह जी को काफी सख्त बातें कह डाली।

---

1. 'भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, 'मन्मथनाथ गुप्त'पेज नं0 230

तुममें अहंकार आ गया है तुम समझने लगे हो कि तुम्हारे ही सर पर दल का सारा दारोमदार है, तुम मौत से डरने लगे हो कायर हो आदि।

भगत सिंह जी ने दूसरे ही दिन केनद्रीय समिति की बैठक बुलवायी और जिद करके अपना नाम और श्री बटुकेश्वर दत्त जी का नात निश्चय करवाया और उसके बाद दोनों ने दिल्ली में ही अपना फोटों खिंचवाया ताकि बम–काण्ड के पश्चात यही फोटो पर्चो आदि में छप सके।

सुखदेव जी ने अपने प्रिय साथी और दल के प्रमुख नेता को फांसी के फन्दे की ओर भेज तो दिया, पर वह इससे भीतर तक हिल गये। सुबह देखा गया कि उनकी आंखू सूजी हुई थी। जाहिर था कि वह रात के एकान्त में खूब रोए थे।[1]

उसी समय का एक कोमल शब्द चित्र श्री शिववर्मा के शब्दों में–

दिल्ली में जब निश्चित रूप से यह फैसला हो गया कि भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त जी ही असेम्बली में बम फेंकने जायेगें तो मुझे और जयदेव को छोड़कर सब साथियों को आदेश दिया गया कि वे दिल्ली से बाहर चले जायें। आजाद जी को झांसी जाना था। जब वे चलने लगे तो मैं स्टेशन तक उनके साथ हो लिया था। रास्ते में बोले– ''प्रभात (श्री शिववर्मा का पार्टी का नाम) अब कुछ ही दिनों में ये दोनों देश की सम्पत्ति हो जायेगें, तब हमारे पास इनकी याद रह जायेगी। तब तक के लिये मेहमान समझकर इनकी आराम तकलीफ का ध्यान रखना।''

''असेम्बली का बम काण्ड सरदार भगत सिंह के जीवन में ही नहीं वरन् भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास में भी महत्वपूर्ण है।''

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 143

मार्च के महीने में केन्द्रीय असेम्बली में दो बिल पेश होने थे। पहला पब्लिक सेफ्टी बिल (जन सुरक्षा बिल) और दूसरा ट्रेड डिस्प्यूट बिल (औद्योगिक विवाद बिल) प्रथम बिल का उद्देश्य समाजवादी विचारों और उनके प्रचार प्रसार को रोकना और दूसरे बिल का उद्देश्य मजदूरों को हड़ताल के अधिकार से वंचित करना था। जनमत इन बिलों के खिलाफ थी। यह निश्चय किया गया कि केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेसी सदस्य दूसरे प्रगतिशील सदस्यों की सहायता से इन बिलों को पास नहीं होने देगें। किन्तु वायसराय अपने विशेषाधिकार (वीटो पावर) से इन्हें पास कर देगें।

भगत सिंह ने अपने पार्टी की मीटिंग में यह प्रस्ताव रखा कि जिस दिन वायसराय इन बिलों का पास करने की घोषणा असेम्बली में करेगें, उसी समय बम फेंका जाये और साथ ही वे पर्चे भी फेकें जाये जिनसे उनका उद्देश्य स्पष्ट हो जाये।

सन् 1929, 8 अप्रैल की घटना है जिस दिन वायसराय की घोषणा असेम्बली में सुनाई जाने वाली थी उस दिन भगत सिंह और श्री बटुकेश्वर दत्त जी असेम्बली में उस स्थान पर जा बैठे जहां से किसी को बिना नुकसान पहुंचाये हुये बम फैंके जा सकते थे।

"उस समय केन्द्रीय असेम्बली में पब्लिक सेफ्टी नामक एक बिल विचारार्थ उपस्थित था, दोनों ओर से खींचा तानी हो रही थी। ट्रेड डिस्प्यूट बिल अधिक वोटों से पास हो चुका था और सभापति पटेल पब्लिक सेफ्टी बिल पर अपना निर्णय देने के लिये तैयार थे। सब लोगों की आंखे उन्हीं की ओर लगी हुयी थी। बहुत उत्तेजना का समय था।"[1]

---

1. अमर शहीद सरदार भगत सिंह, जितेन्द्र नाथ सान्याल, पेज नं0–47

जैसे ही विशेषाधिकार के बिलों की जार्ज सुस्टर द्वारा घोषणा होने वाली थी उसी समय भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त जी अपने स्थान से उठे और अखबार में लिपटा हुआ बम भगत सिंह ने अपने हाथ में ले लिया तथा सरकारी बेंचों के पीछे खाली स्थान पर बम फेंक दिया। विस्फोट से धमाका हुआ। सारा सदन नीले धुएं से भर गया। लोग समल भी नहीं पाये थे कि दूसरा बम फैक दिया गया और इसके बाद भगत सिंह ने छत की ओर हाथ उठाकर दो गोलियां छोड़ी। सर जार्ज शुस्टर डर के मारे अपनी डेस्क के नीचे छिप गये। सर जान साईमन भी सदन में मौजूद थे वे भी घबरा कर वहां से भाग गये देखते ही देखते सारा सदन खाली हो गया। सिर्फ मोतीलाल नेहरू, मुहम्मद अली जिन्ना और मदन मोहन मालवीय ही अपने स्थान पर बैठे दिखायी दिये।

बम विस्फोट के पश्चात भगत सिंह और श्री बटुकेश्वर दत्त जी अपने स्थानों पर खड़े रहे और भगदड़ होते हुये देखते रहे तथा दोनों ने 'इंकलाब जिन्दाबाद' तथा 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' (साम्राज्यवाद का नाश हो) नारा लगाते हुये सदन में लाल रंग के पर्चे फेंके। जिसकी पंक्तियां इस प्रकार थी–

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना

सूचना

''बहरों को सुनाने के लिए बहुत ऊंची आवाज की आवश्यकता होती है।'' प्रसिद्ध फ्रांसीसी अराजकतावादी शहीद वेलियां के यह अमर शब्द हमारे काम के औचित्य के साक्षी हैं।

पिछले दस वर्षों में ब्रिटिश सरकार ने शासन सुधार के नाम पर इस देश जो अपमान किया है उसकी कहानी दोहराने की आवश्यकता नहीं, और न ही हिन्दुस्तानी पार्लियामेंट पुकारी जाने वाली इस सभा ने भारतीय राष्ट्र के सिर पर

पत्थर फेंककर उसका जो अपमान किया है उसके उदाहरणों को याद दिलाने की आवश्यकता है। यह सब सर्वविदित और स्पष्ट है। आज फिर जब लोग साइमन कमीशन से कुछ सुधारों के टुकड़ों की आशा में आंख फैलाये हैं और उन टुकड़ों के लोभ में आपस में झगड़ रहे हैं, विदेशी सरकार ''सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक'' और औद्यौगिक विवाद विधेयक'' के रूप में अपने दमन को और भी कड़ा कर लेने का प्रयत्न कर रही है। उसके साथ ही आने वाले अधिवेशन में समाचार पत्रों द्वारा राजद्रोह प्रचार रोकने का कानून जनता पर थोपने की धमकी दी जा रही है। सार्वजनिक काम करने वाले मजदूर नेताओं की अंधाधुंध गिरफ्तारी से सरकार का रवैया स्पष्ट हो जाता है।

राष्ट्रीय दमन और अपमान की इस उत्तेजना पूर्ण परिस्थिति में अपने उत्तरदायित्व की गंभीरता को महसूस करा ''हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ'' ने अपनी सेना को यह कदम उठाने का आदेश दिया है। इस कार्य का यह प्रयोजन है कि कानून का यह अपमानजनक प्रहसन समाप्त कर दिया जाये। विदेशी शोषक और नौकरशाही जो चाहे करें परन्तु उसकी वैधानिकता की नकाब फाड़ देना आवश्यक है।

जनता के प्रतिनिधियों से हमारा आग्रह है कि वे इस पार्लियामेंट के पाखण्ड को छोड़कर अपने–अपने निर्वाचन क्षेत्रों को लौट जायें और जनता को विदेशी दमन और शोषण के विरूद्ध क्रान्ति के लिये तैयार करें। हम विदेशी सरकार को यह बतला देना चाहते हैं कि हम देश की जनता की ओर ''सार्वजनिक सुरक्षा'' और ''औद्योगिक विवाद'' के दमनकारों कानूनों और लाला लाजपत राय की हत्या के विरोध में यह कदम उठा रहे हैं।

हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्जवल भविष्य में विश्वास रखते हैं। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शान्ति और स्वतंत्रता

का अवसर मिल सके। हम इन्सान का खून बहाने की अपनी विवशता पर दुखी है, परन्तु क्रान्ति द्वारा सबको समान स्वतंत्रता देने और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिये क्रान्ति में कुछ न कुछ रक्तपात अनिवार्य है।

इन्कलाब जिन्दाबाद!

ह0 बलराज,

कमांडर–इन–चीफ

''सदन में सार्जेन्ट टेरी और इन्सपेक्टर जानसन थे। दोनों घबराये हुये थे। अपनी जगह पर शान्त खड़े भगत सिंह और दत्त के करीब जाने का उनमें साहस नहीं था। भगत सिंह के हाथ में भरी हुई पिस्तौल थी जिसे वह उंगलियों से घुमाकर खेल रहे थे। पहले सार्जेन्ट टेरी ही डरते–डरते आगे बढ़ा और फिर इन्सपेक्टर जानसन। जब भगत सिंह ने अपनी पिस्तौल एक डेस्क पर रख दी तब अंग्रेज पुलिस अफसरों की जान में जान आयी और गिरफ्तारी संभव हो सकी। दोनों ने एक बार फिर क्रान्तिकारी नारे लगाये। दोनों के चेहरों पर दृढ़ता की आभा और होठों पर गर्वीली मुस्कान थी। बम फेंकते समय यह एहतियात बरती गई कि उनमें किसी की हत्या न हो और न किसी को चोट आये।''

बेरिस्टर तथा कांग्रेसी नेता स्वर्गीय आसफ अली जी भी उस समय सदन में मौजूद थे और उन्होने भी बम काण्ड का आंखों देखा हाल वर्णन किया है– ''जब मैं असेम्बली भवन में पहुंचा, तो मुझे बैठने का स्थान न मिल सका। मैं आगे बढ़ता गया और दर्शकों की गैलरी में उस स्थान पर खड़ा हो गया, जहां मेरे ठीक सामने भगत सिंह बैठे थे। मैने देखा कि श्री बृजलाल नेहरू भी वहीं खड़े हैं और हम दोनों खड़े–खड़े ही असेम्बली की कार्यवाही देखने लगे। ज्यों ही प्रेसीडेण्ट श्री वी0जे0 पटेल, ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल पर अपनी रूलिंग देने के लिये

उठने वाले थे, त्यों ही पं0 बृजलाल नेहरू ने मुझसे कहा कि अब श्री पटेल अपना बम फेंकने वाले हैं।

उनकी बात पूरी हुई ही थी कि मैने पहली और दूसरी सरकारी बैंचों के बीच एक चमक देखी। क्षण भर के लिये मैने सोचा क्या हमारा ध्यान हटाने के लिये सरकार ने अतिशबाजी शुरू की है। तभी दूसरा बम फेंका गया। वह बड़ी आवाज के साथ फटा और सारा भवन धुएं से भर गया। इसके बाद कुछ गोलियां छोड़ी गयी। सदन में चीख–पुकार मच गयी और लोग बाहर जाने लगे। प्रेसीडेण्ट पटेल ने दो बार 'आर्डर–आर्डर' कह कर सदन को शान्त करने की चेष्टा की और वे अपनी कुरसी छोड़कर चले गये। दर्शक–गैलरी कुछ ही क्षणों में खाली हो गयी और लोग दरवाजों के शीशे तोड़–तोड़ कर भागे। मैं, बृजलाल नेहरू तथा एक और सज्जन वहां रह गये, क्योंकि हमारी पत्नियां महिला गैलरी में थीं और हम उन्हें साथ लेना चाहते थे।

अपनी पत्नी की खोज कर मैं फिर पुरूषों की गैलरी में आ गया। भगत सिंह के चेहरे पर गहरा तनाव था और वे इन्स्पेक्टर मिस्टर जॉनसन से कह रहे थे– 'चिन्ता मत करो, हम सारे संसार को बता देंगे क यह हम ने किया है'।''

श्री आसफअली जी श्री बटुकेश्वर दत्त जी के वकील थे। बम फेंकने में कुछ ने कहा कि दोनों बम भगत सिंह ने फेंके तथा किसी के अनुसार एक बम भगत सिंह व एक दत्तजी ने फेंका। श्री आसफ अली जी के शब्दों में– ''बहुत कम लोग इस तथ्य से परिचित हैं कि बी0के0 दत्त ने बम नहीं फेंका था। जब अदालत में वक्तव्य देने का समय आया, तो उनसे यह स्वीकार करने का आग्रह किया किएक बम उन्होंने भी फेंका था।'' जब मैंने इस झूठी स्वीकारोक्ति से रोकना चाहा, तो वे बहुत गम्भीर मुद्रा में मुझ से बोले– ''मैं और भगत सिंह लम्बे समय से साथ रहे हैं। मुझे विश्वास है कि आप के द्वारा पैरवी किये जाने के

बाबजूद उन्हे लम्बी कैद की सजा दी जायेगी। मान लीजिए कि मुझे छोड़ दिया गया, तो मैं भगत सिंह के बिना क्या करूंगा, कैसे रहूंगा। मुझे उनके साथ ही रहना चाहिए।'' मैं उनके निश्चय में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता था, उन्होंने मेरी एक नहीं सुनी। अपनी प्रथम भेंट में ही भगत सिंह ने मेरे सामने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि वे अपने काम से इन्कार नहीं करेंगे और न अपने बचाव के लिए अपने को निपराध सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे।''

सरकार ने प्रयास किया क तार–फोन आदि किसी भी प्रकार से यह घटना बाहर नहीं जाये। किन्तु जब यह घटना घटित हुयी। वहां सदन में दिल्ली दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के संवाददाता ने अत्यन्त चतुराई से एक पर्चा उठा लिया और उसे शाम के संस्मरण में ही छपवा दिया। उस समय दिल्ली में 'स्टेटसमैन' के संवाददाता लाला दुर्गादास थे, उन्होंने लन्दन दफ्तर में भेज दिया और लन्दन से यह समाचार कलकत्ता भेजा गया और इस पकार यह घटना उजागर हो गयी।

बम काण्ड के आधे घंटे के पश्चात पुलिस का एक दल और आया और दोनों को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्होंने 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाया। महान क्रान्तिकारी श्री विजय कुमार सिन्हा के शब्दों में – ''भगत सिंह को एक महान देश भक्त मात्र समझना भूल होगी, क्योंकि वे हमारे राष्ट्रीय संघर्ष में एक नवीन युग के (जिसने हमारे राजनैतिक आन्दोलन में नवीन आदर्शों तथा विचारों का समावेश किया) आदर्श प्रतिनिधि के रूप में महानायक थे। उनका शानदार क्रान्तिकारी जीवन संघर्षरत भारतीय जनता की उद्दाम भावना का प्रतीक था। इसका सर्वश्रेष्ठ प्रमाण यह है कि भगत सिंह द्वारा राष्ट्र को दिया हुआ 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा जनता ने आश्चर्यनजक तेजी से स्वीकार कर लिया। 1904 में असेम्बली बम काण्ड तक 'वन्दे मातरम्' ही हमारा प्रिय राष्ट्रीय

नारा था। भगत सिंह के इस नारे ने जनता का ध्यान आकृष्ट कर लिया, क्योंकि इसमें बिना समझौता किये लड़ते रहने के दृढ़ संकल्प तथा दरिद्रता एवं कष्ट को सदा के लिए दूर करने वाली एक नवीन सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने की आशा इसके द्वारा समुचित व्यक्त होती थी।''

पुलिस द्वारा भगत सिंह व श्री दत्त जी को कोतवाली में ब्यान देने को कहा गया, किन्तु उन्होंने अस्वीकृत कर दिया कि उन्हें जो कहना है वे सिर्फ अदालत में ही कहेंगे इसके पश्चात उन्हें दिल्ली जेल भेज दिया गया जहां से उन्होंने अपने पिता को यह पत्र लिखा–

पूज्य पिता जी महाराज,

वन्दे मातरम्!

अर्ज यह है कि हम लोग 22 अप्रैल को पुलिस की हवालात से दिल्ली जेल में मुन्तकिल (तब्दील) कर दिए गए थे और इस वक्त दिल्ली जेल में ही हैं। मुकदमा 7 मई को जेल के अन्दर ही शुरू होगा। गालिबन (संभवतः) एक माह में सारा ड्रामा खत्म हो जाएगा। ज्यादा फिक्र करने की जरूरत नहीं है। मुझे मालूम हुआ कि आप यहां तशरीफ लाए थे और किसी वकील वगैरह से बातचीत की थी और मुझसे मिलने की कोशिश भी की थी, मगर तब सब इन्तजाम न हो सका। कपड़े मुझे परसों मिले। मुलाकात आप जिस दिन तशरीफ लाएं हो सकेगी। वकील वगैरह की कोई खास जरूरत नहीं है। दो–एक आमूद पर थोड़ा सा मशवरा लेना चाहता हूं। मगर यह कोई खास अहमियत नहीं रखते। आप ख्वाहमख्वाह ज्यादा तकलीफ न कीजिएगा। अगर आप मिलने के लिए आएं तो अकेले आइएगा। वालदा साहिबा (माताजी) को साथ न लाइएगा। ख्वाहमख्वाह वो रो देंगी और मुझे भी कुछ तकलीफ जरूर होगी। घर के सब हालात आपसे मिलने पर ही मालूम हो सकेंगे।

हां, अगर हो सके तो गीता रहस्य, नैपोलियन की मोटी सुआने–उमरी (जीवन चरित्र) जो आपको मेरी कुतब में मिल जाएंगी, अंग्रेजी के कुछ आला नावेल लेते आइएगा। वालदा साहिबा, भाभी साहिबा, माता जी (दादी जी) और चाची साहिबा के चरणों में नमस्कार। रणबीर सिंह और कुलतारसिंह को नमस्ते। बापू जी (दादा जी) के चरणों में नमस्ते अर्ज कर दीजिएगा। इस वक्त पुलिस हवालात और जेल में हमारे साथ निहायत अच्छा सलूक हो रहा है। आप किसी किस्म की फिक्र न कीजिएगा। मुझे आपका एड्रेस मालूम नहीं है, इसलिए इस पते (कांग्रेस दफ्तर) पर लिख रहा हूं।

आपका ताबेदार

भगतसिंह

इसके पश्चात भगत सिंह के पिता श्री किशन सिंह जी बैरिस्टर आसफअली जी को साथ लेकर उनसे मिले। ताकि उनके पक्ष में मुकदमा लड़ा जा सके। किन्तु भगत सिंह जी इसके पक्ष में नहीं थे। उन्होंने श्री आसफअली जी से कुछ कानूनन बातें पूंछकर वहीं पर बातचीत समाप्त कर दी।

मुकदमा

(लाहौर षडयन्त्र केस) :

असेम्बली बम काण्ड के पश्चात भगत सिंह व श्री बटुकेश्वर दत्त जी गिरफ्तार कर लिये गये। 7 मई 1929 को एडीशनल मजिस्ट्रेट मिस्टर पूल की अदालत में जेल में ही सुनवाई आरम्भ हुई। जिसमें सिर्फ पत्र का प्रतिनिधि, अभियुक्त के निकट सम्बन्धी और वकील ही थे। सरकार ने अपना पक्ष प्रस्तुत किया, किन्तु भगत सिंह ने कहा– ''हम लोग अपना बयान सेशन जज की अदालत में ही देगे।'' इसलिये केस भारतीय दण्ड विधान की धारा 3 के अधीन सेशन जज की अदालत में भेज दिया गया।

6 जून सन् 1929 को दिल्ली में सेशन जज मि० लियोनाई मिडिल्टन की अदालत में सरदार भगत सिंह और श्री दत्त ने ऐतिहासिक ब्यान दिया–

हमारे ऊपर गम्भीर आरोप लगाए गए हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि हम भी अपनी सफाई में कुछ शब्द कहें। हमारे कथित अपराध के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं: (1) क्या वास्तव में असेम्बली में बम फेंके गए थे, यदि हां तो क्यों? (2) नीचे की अदालत में हमारे ऊपर जो आरोप लगाए गए हैं, वे सही हैं या गलत?

पहले प्रश्न के पहले भाग के लिए हमारा उत्तर स्वीकारात्मक है, लेकिन तथाकथित चश्मदीद गवाहों ने इस मामले में जो गवाही दी है, वह सरासर झूठी है। चूंकि हम बम फेंकने से इन्कार नहीं कर रहे हैं, इसलिये यहां उन गवाहों के बयानों की सच्चाई की परख भी हो जानी चाहिए। उदाहरण के लिए हम यहां बतला देना चाहते हैं कि सार्जेण्ट टेरी का यह कहना कि उन्होंने हममे

से एक के पास से पिस्तौल बरामद की वह एक सफेद झूठ मात्र है, क्योंकि जब हमने अपने आपको पुलिस के हाथों सौंपा तो हममे से किसी के पास पिस्तौल न थी। जिन गवाहों ने कहा है कि उन्होंने हमें बम फेंकते देखा था, वे झूठ बोलते हैं। न्याय तथा निष्कपट व्यवहार को सर्वोपरि मानने वाले लोगों को इन झूठी बातों से एक सबक लेना चाहिए। साथ ही हम सरकारी वकील के उचित व्यवस्था तथा अदालत के अभी तक के न्यायसंगत रवैये को भी स्वीकार करते हैं।

पहले प्रश्न के दूसरे हिस्से का उत्तर देने के लिए हमें इस बमकाण्ड जैसी ऐतिहासिक घटना के कुछ विस्तार में जाना पड़ेगा। हमने वह काम किस अभिप्राय से तथा किन परिस्थितियों के बीच किया, इसकी पूरी एवं खुली सफाई आवश्यक है।

जेल में हमारे पास कुछ पुलिस अधिकारी आये थे। उन्होंने हमें बतलाया कि लार्ड इर्विन ने इस घटना के बाद ही असेम्बली के दोनों सदनों के सम्मिलित अधिवेशन में कहा है कि ''यह विद्रोह किसी व्यक्ति विशेष के खिलाफ नहीं, वरन् सम्पूर्ण शासन व्यवस्था के विरूद्ध था।'' यह सुनकर हमने तुरन्त भांप लिया क लोगों ने हमारे इस काम के उद्देश्य को सही तौर पर समझ लिया है।

मानवता को प्यार करने में हम किसी से भी पीछे नहीं है। हमें किसी से व्यक्तिगत द्वेष नहीं है और हम प्राणीमात्र को हमेशा आदर की निगाह से देखते आये हैं। हम न तो बर्बरतापूर्ण उपद्रव करने वाले देश के कलंक हैं, जैसा कि सोशलिस्ट कहलाने वाले दीवान चमनलाल ने कहा है और न ही हम पागल हैं, जैसा कि लाहौर के 'ट्रिब्यून' तथा कुछ अन्य समाचार पत्रों ने सिद्ध करने का प्रयास किया है। हम तो केवल अपने देश के इतिहास उसकी मौजूदा परिस्थिति तथा अन्य मानवोचित आकांक्षाओं के मननशील विद्यार्थी होने का विनम्रतापूर्वक दावा भर कर सकते हैं। हमें ढोंग तथा पाखण्ड से नफरत है।

एक अपकारजनक संस्था :

यह काम हमने किसी व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा विद्वेष की भावना से नहीं किया है। हमारा उद्देश्य केवल उस शासन व्यवस्था के विरूद्ध प्रतिवाद प्रकट करना था जिसके एक काम से उसकी अयोग्यता ही नहीं वरन् अपकार करने की उसकी असीम क्षमता भी प्रकट होती है। इस विषय पर हमने जितना विचार किया उतना ही हमें इस बात का दृढ़ विश्वास होता गया कि वह केवल संसार के सामने भारत की लज्जाजनक तथा असहाय अवस्था का ढिंढोरा पीटने के लिए ही कायम है और वह एक गैर जिम्मेदार तथा निरंकुश शासन का प्रतीक है।

जनता के प्रतिनिधियों ने कितनी ही बार राष्ट्रीय मांगों को सरकार के सामने रखा, परन्तु उसने उन मांगों की सर्वथा अवहेलना करके हर बार उन्हें रद्दी की टोकरी में डाल दिया। सदन द्वारा पास किये गये गम्भीर प्रस्तावों को भारत की तथाकथित पार्लियामेण्ट के सामने ही तिरस्कारपूर्वक पैरों तले रौदा गया हे, दमनकारी तथा निरंकुश कानूनों को समाप्त करने की मांग करने वाले प्रस्तावों को हमेशा अवज्ञा की दृष्टि से ही देखा गया है और जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों ने सरकार के जिन कानूनों तथा प्रस्तावों को अवांछित एवं अवैधानिक बताकर रद्द कर दिया था, उन्हें केवल कलम हिलापकर ही सरकार ने लागू कर लिया है।

संक्षेप में, बहुत कुछ सोचने के बाद भी एक ऐसी संस्था के अस्तित्व का औचित्य हमारी समझ में नहीं आ सका जो, बाबजूद उस तमाम शानो शौकत के, जिसका आधार भारत के करोड़ों मेहनतकशों की गाढ़ा कमाई है, मात्र एक दिन को बहलाने वाली, थोथी, दिखावटी और शरारतों से भरी हुई संस्था है। हम सार्वजनिक नेताओं की मनोवृत्ति को समझ पाने में भी असमर्थ हैं। हमारी

समझ में नहीं आता कि हमारे नेतागण भारत की असहाय परतन्त्रता की खिल्ली उड़ाने व इतने स्पष्ट एवं पूर्वनियोजित प्रदर्शनों पर सार्वजनिक सम्पत्ति एवं समय बरबाद करने में सहायक क्यों बनते हैं।

हम इन्हीं प्रश्नों तथा मजदूर आन्दोलन के नेताओं की धरपकड़ पर विचार कर ही रहे थे कि सरकार ट्रेड डिस्प्यूट बिल लेकर सामने आयी। हम इसी सम्बन्ध में असेम्बली की कार्यवाही देखने गये। वहां हमारा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि भारत की लाखों मेहनतकश जनता एक ऐसी संस्था से किसी बात की भी आशा नहीं कर सकती जो भारत के बेबस मेहनतकशों की दासता तथा शोषकों की गलाघोटू शक्ति की अहितकारी यादगार है।

अन्त में वह कानून, जिसे हम बर्बर एवं अमानवीय समझते हैं, देश के प्रतिनिधियों के सरों पर पटक दिया गया और इस प्रकार करोड़ों संघर्षरत भूखे मजदूरों को प्राथमिक अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया और उनके हाथों से उनकी आर्थिक मुक्ति का एक मात्र हथियार भी छीन लिया गया। जिस किसी ने भी कमरतोड़ परिश्रम करने वाले मूक मेहनतकशों की हालत पर हमारी तरह सोचा है वह शायद स्थिर मन से यह सब नहीं देख सकेगा। बलि के बकरों की भांति शोषकों और सबसे बड़ी शोषक स्वयं सरकार है– की बलिबेदी पर आये दिन होने वाली मजदूरों की इन मूक कुर्बानियों को देखकर जिस किसी का दिल रोता है वह अपनी आत्मा की चीत्कार की उपेक्षा नहीं कर सकता।

गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी समिति के भूतपूर्व सदस्य स्वर्गीय श्री एस0आर0 दास ने अपने प्रसिद्ध पत्र में अपने पुत्र को लिखा था कि इंग्लैण्ड की स्वप्ननिद्रा भंग करने के लिए बम का उपयोग आवश्यक था। श्री दास के इन्हीं शब्दों को सामने रखकर हमने असेम्बली भवन में बम फेंके थे। हमने वह काम मजदूरों की तरफ से प्रतिरोध प्रदर्शित करने के लिए किया था। उन असहाय

मजदूरों के पास अपने मर्मान्तक क्लेशों को व्यक्त करने का और कोई साधन भी तो नहीं था। हमारा एक मात्र उद्देश्य था 'बहरे को सुनाना' और उन पीड़ितों की मांगों पर ध्यान न देने वाली सरकार को समय रहते चेतावनी देना।

हमारी ही तरह दूसरों की भी परोक्ष धारणा हे कि प्रशान्त सागर रूपी भारतीय मानवता की ऊपरी शान्ति किसी भी समय फूट पड़ने वाले एक भीषण तूफान का द्योतक है। हमने तो उन लोगों के लिए सिर्फ खतरे की घण्टी बजायी है जो आने वाले भयानक खतरे की परवाह किये बगैर तेज रफ्तार से आगे की तरफ भागे जा रहे हैं। हम लोगों को सिर्फ यह बतला देना चाहते हैं कि 'काल्पनिक अहिंसा' का युग अब समाप्त हो चुका है और आज की उठती हुई नयी पीढ़ी को उसकी व्यर्थता में किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं रह गया है।

मानवता की प्रति हार्दिक सद्भाव तथा अमित प्रेम रखने के कारण उसे व्यर्थ के रक्तपात से बचाने के लिए हमने चेतावनी देने के इस उपाय का सहारा लिया है और उस आने वाले रक्तपात को हम ही नहीं, लाखों आदमी पहले से ही देख रहे हैं।

काल्पनिक अहिंसा :

ऊपर हमने 'काल्पनिक अहिंसा' शब्द का प्रयोग किया है। यहां पर उसकी व्याख्या कर देना भी आवश्यक है आक्रामक उद्देश्य से जब बल का प्रयोग होता है उसे हिंसा कहते हैं, और नैतिक दृष्टिकोण से उसे उचित नहीं कहा जा सकता। लेकिन जब उसका उपयोग किसी वैध आदर्श के लिए किया जाता है तो उसका नैतिक औचित्य भी होता है। किसी हालत में बल प्रयोग नहीं होना चाहिए, यह विचार काल्पनिक और अव्यावहारिक है। इधर देश में जो नया आन्दोलन तेजी के साथ उठ रहा है, और जिसकी पूर्व सूचना हम दे चुके हैं वह

गुरू गोविन्द सिंह, शिवाजी, कमाल पाशा, रिजा खां, वाशिंगटन, गैरीबाल्डी, लाफायेट और लेनिन के आदर्शों से ही प्रस्फुरित है और उन्हीं के पद चिन्हों पर चल रहाहै। चूंकि भारत की विदेशी सरकार तथा हमारे राष्ट्रीय नेतागण दोनों ही इस आन्दोलन की ओर से उदासीन लगते हैं और जान बूझकर उसकी पुकार की और अपने कान बन्द करने का प्रयत्न कर रहे हैं, अतः हमने अपना कर्तव्य समझा कि हम एक ऐसी चेतावनी दें जिसकी अवहेलना न की जा सके।

हमारा अभिप्राय :

अभी तक हमने इस घटना के मूल उद्देश्य पर ही प्रकाश डाला है अब हम अपना अभिप्राय भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि इस घटना के सिलसिले में मामूली चोटें खाने वाले व्यक्तियों अथवा असेम्बली के किसी अन्य व्यक्ति के प्रति हमारे दिलों में कोई वैयक्तिक विद्वेष की भावना नही थी। इसके विपरीत हम एक बार फिर स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम मानव जीवन को अकथनीय पवित्रता प्रदान करते हैं और किसी अन्य व्यक्ति को चोट पहुंचाने के बजाय हम मानव जाति की सेवा में हंसते–हंसते अपने प्राण विसर्जित कर देंगे। हम साम्राज्यवादी की सेना के भाड़े के सैनिकों जैसे नहीं है जिनका काम ही नर हत्या होता है। हम मानव जीवन का आदर करते हैं और बराबर उसकी रक्षा का प्रयत्न करते हैं। इसके बाद भी हम स्वीकार करते हैं कि हमने जान–बूझकर असेम्बली भवन में बम फेंके।

घटनाएं स्वयं हमारे अभिप्राय पर प्रकाश डालती हैं और हमारे इरादों की परख हमारे काम के परिणाम के आधार पर होनी चाहिए न कि अटकल एवं

मनगढन्त परिस्थितियों के आधार पर। सरकारी विशेषज्ञ की गवाही के विरूद्ध हमें यह कहना है कि असेम्बली भवन में फेंके गये बमों से वहां की एक खाली बेंच को ही कुछ नुकसान पहुंचा और लगभग आधे दर्जन लोगों को मामूली सी खरोचें भर आयीं।सरकारी वैज्ञानिकों ने कहा है बम बड़े जोरदार थे और उनसे अधिक नुकसान नहीं हुआ, इसे एक अनहोनी घटना ही कहना चाहिए। लेकिन हमारे विचार से उन्हें वैज्ञानिक ढंग से बनाया ही ऐसा गया था। पहले तो दोनों बम बेचों तथा डेस्को के बीच की खाली जगह में ही गिरे थे। दूसरे, उनके फूटने की जगह से दो फिट पर बैठे हुये लोगों को भी, जिनमें मि0पी0आर0 राउ, मि0 शंकर राव तथा सर जार्ज शुस्टर के नाम उलेखनीय हैं, या तो बिल्कुल ही चोटें नहीं आयी या मात्र मामूली आयी। अगर उन बमों में जोरदार पोटेशियम क्लोरेट और पिक्रिक एसिड भरा होता, जैसा कि सरकारी विशेषज्ञ ने कहा है, तो इन बमों ने उस लकड़ी के घेरे को तोड़कर कुछ गज की दूरी पर खाड़े हुये लोगों तक को उड़ा दिया होता। और यदि उनमें कोई और भी शक्तिशली विस्फोटक भरा जाता तो निश्चय ही वे असेम्बली के अधिकांश सदस्यों को उड़ा देने में समर्थ होते। यही नहीं, यदि हम चाहते तो उन्हें सरकारी कक्ष में फेंक सकते थे जो कि विशिष्ट व्यक्तियों से खचाखच भरा था या फिर उस सर जान साइमन को अपना निशाना बन सकते थे, जिसके अभागे कमीशन ने प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के दिल में उसकी ओर से गहरी नफरत पैदा कर दीथी और जो उस समय असेम्बली की अध्यक्ष दीर्घा में बैठा था। लेकिन इस तरह का हमारा कोई इरादा नहीं था और उन बमों ने उतना ही काम किया जितने के लिए उन्हें तैयार किया गया था। यदि उससे कोई अनहोनी घटना हुई तो यही कि वे निशाने पर अर्थात निरापद स्थान पर गिरे।

एक ऐतिहासिक सबक :

इसके बाद हमने इस कार्य का दण्ड भोगने के लिये अपने आपको जान–बूझकर पुलिस के हाथों समर्पित कर दिया। हम साम्राज्यवादी शोषकों को यह बतला देना चाहते थे कि मुट्ठी–भर आदमियों को मारकर किसी आदर्श को समाप्त नहीं किया जा सकता है। हम इतिहास के इस सबक पर जोर देना चाहते थे कि परिचय पत्र या परिचय चिन्ह तथा (Letter de catchet) वैस्टाइल (फ्रांस की कुख्यात जेल जहां राजनैतिक बन्दियों को घोर यन्त्रणाएं दी जातीं थीं। अनु0) फ्रांस के क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचलने में समर्थ नहीं हुये थे, फांसी के फन्दे और साइबेरिया की खाने रूसी क्रान्ति की आग को बुझा नहीं पायीं थीं। तो फिर क्या अध्यादेश और सेफ्टी बिल्स भारत में आजादी की लौ को बुझा सकेगें? षड़यन्त्रों का पता लगाकर या गढ़े हुये षड़यन्त्रों द्वारा नौजवानों को सजा देकर या एक महान आदर्श के स्वप्न से प्रेरित नवयुवकों को जेलों में ठूंसकर क्या क्रान्ति का अभियान रोका जा सकता है? हां, सामयिक चेतावनी से, बशर्ते कि उसकी उपेक्षा न की जाये, लोगों की जानें बचायी जा सकतीं हैं और व्यर्थ की मुसीबतों से उनकी रक्षा की जा सकती है। आगाही देने का यह भार अपने ऊपर लेकर हमने अपना कर्तव्य पूरा किया है।

क्रान्ति क्या है?

भगत सिंह से नीचे के अदालत में पूछा गया था कि क्रान्ति से आप लोगों का क्या मतलब है, इस प्रश्न के उत्तर में उन्होने कहा था कि क्रान्ति के लिये खूनी लड़ाइयां अनिवार्य नहीं है और न ही उसमें व्यक्तिगत प्रतिहिंसा के लिए कोई स्थान है। वह बम और पिस्तौल का सम्प्रदाय नहीं है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है– अन्याय पर आधारित मौजूदा समाज व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मजदूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूंजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने–दाने के लिए मुहताज हैं। दुनियां–भर के बाजारों को कपड़ा मुहैया करने वाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढकने भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूंजीपति जरा--जरा सी बातों के लिए लाखों का बारा न्यारा कर देते हैं।

यह भयनक असमानता और जबदस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल–पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक एक भयानक ज्वालामुखी के मुंह पर बैठकर रंगरेलियां मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।

आमूल परिवर्तन की आवश्यकता :

सभ्यता का यह प्रासाद यदि समय रहते संभला न गया तो शीघ्र ही चरमराकर बैठ जायेगा। देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निमाण करें। जब तक यह नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण, जो साम्राज्यशाही के नाम से विख्यात है, समाप्त नहीं कर दिया जाता तब तक मानवता को उसके क्लेशों से छुटकारा मिलना असम्भव है और तब तक युद्धों को समाप्त कर विश्व शान्ति के युग का प्रादुर्भाव करने की सारी बातें महज ढाग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं

है। क्रान्ति से हमारा मतलब अन्ततेगत्वा एक ऐसी समाज व्यवस्था की स्थापना से है जो इस प्रकार के संकटों से बरी होगी और जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा। और जिसके फलस्वरूप स्थापित होने वाला विश्व संघ पीड़ित मानवता को पूंजीवाद के बन्धनों से और साम्राज्यवादी युद्ध की तबाही से छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकेगा।

सामयिक चेतावनी :

यह है हमारा आदर्श और इसी आदर्श से प्रेरणा लेकर हमने एक सही तथा पुरजोर चेतावनी दी है, लेकिन अगर हमारी इस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया गया और वर्तमान शासन व्यवस्था उठती हुई जनशक्ति के मार्ग में रोड़े अटकाने से बाज न आयी तो क्रान्ति के इस आदर्श की पूर्ति के लिए एक भयंकर युद्ध का छिड़ना अनिवार्य है। सभी बाधाओं को रौंदकर आगे बढते हुए उस युद्ध के फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र की स्थापना होगी। यह अधिनायकतन्त्र क्रान्ति के आदर्शों की पूर्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा। क्रान्ति मानवजाति का जन्मजात अधिकार है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है। इन आदर्शों के लिए और इस विश्वास के लिए हमें जो भी दण्ड दिया जायेगा, हम उसका सहर्ष स्वागत करेंगे। क्रान्ति की इस पूजा वेदी पर हम अपना यौवन नैवेद्य के रूप में लाये हैं, क्योंकि ऐसे महान आदर्श के लिए बड़े से बड़ा त्याग भी कम है। हम संतुष्ट हैं और क्रान्ति के आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।[1]

10 जून 1929 में केस की सुनवाई समाप्त हो गयी और 12 जून को 41 पृष्ठ के फैसले में सेशन जज ने दोनों अभियुक्तों को आजन्म कारावास

---

1. शहीद भगत सिंह की चुनी हुई कृतियां, शिव वर्मा, पृ0– 103–111

का दण्ड सुना दिया तथा भगत सिंह को मियांवली जेल में और श्री बटुकेश्वर दत्त जी को लाहौर सेन्ट्रल जेल में भेज दिया गया।

इसके पश्चात लाहौर हाईकोर्ट में उसकी अपील की गयी। जस्टिस फोर्ड और जस्टिस एडीसन के सामने हाईकोर्ट (लाहौर) में अपील पेश हुई। दिल्ली अदालत के निर्णय की आलोचना करते हुये भगत सिंह ने हाईकोर्ट में यह दूसरा बयान दिया।

माई लार्ड,

हम न वकील हैं, न अंग्रेजी विशेषज्ञ हैं और न हमारे पास डिग्रियां ही हैं, इसलिए हमसे शानदार भाषणों की आशा न की जाये। हमारी प्रार्थना है कि हमारे बयान की भाषा सम्बन्धी त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए, उसके वास्तविक अर्थ को समझने का प्रयत्न किया जाये। दूसरे तमाम मुद्दों (पुआइन्टस) को अपने वकीलों पर छोड़ते हुए मैं स्वयं एक मुद्दे पर अपने विचार प्रकट करूंगा। यह मुद्दा इस मुकदमें में बहुत महत्वपूर्ण है। मुद्दा यह है कि हमारी नीयत क्या थी और हम किस हद तक अपराधी हैं।

यह बड़ा पेचीदा मामला है इसलिए कोई व्यक्ति भी आपकी सेवा में विचारों के विकास की वह ऊंचाई प्रस्तुत नहीं कर सकता, जिसके प्रभाव में हम एक खास ढंग से सोचने और व्यवहार करने लगे थे। हम चाहते हैं कि इसे दृष्टि में रखते हुए ही हमारी नीयत और अपराध का अनुमान लगाया जाये। प्रसिद्ध कानून–विशारद सालोमन के अनुसार किसी भी व्यवित को उसके अपराधी आचरण के लिए उस समय तक सजा नहीं मिलनी चाहिए, जब तक उसका उद्देश्य कानून–विरोधी सिद्ध न हो।

सेशन जज की अदालत में हमने जो लिखित ब्यान दिया था, वह हमारे उद्देश्य की व्याख्या करता है और उस रूप में हमारी नीयत की व्याख्या भी करता था, लेकिन सेशन जज महोदय ने कलम की एक ही नोक से यह कहकर कि ''आमतौर पर अपराध को व्यवहार में लाने वाली बात कानून के कार्य को प्रभावित नहीं करती और इस देश में कानूनी व्याख्याओं में कभी-कभार उद्देश्य और नीयत की चर्चा होती है'' हमारी सब कोशिशें बेकार कर दीं।

माई लार्ड, इन परिस्थितियों में सुयोग्य सेशन जज को उचित था कि या तो अपराध का अनुमान परिणाम से लगाते या हमारे बयान की मदद से मनोवैज्ञानिक पहलू का फैसला करते, पर उन्होंने इन दोनों में से एक भी काम नहीं किया।

विचारणीय बात यह है कि असेम्बली में हमने जो दो बम फेंके, उनसे किसी भी व्यक्ति की शारीरिक या आर्थिक हानि नहीं हुई। इस दृष्टिकोण से हमें जो सजा दी गयी है वह कठोरतम् ही नहीं, बदला लेने की भावना वाली भी है। यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाये तो जब तक अभियुक्त की मनोभावना का पता न लगाया जाये, उसके असली उद्देश्य का पता नहीं चल सकता। यदि उद्देश्य को पूरी तरह भुला दिया जाये तो किसी भी व्यक्ति के साथ न्याय नही हो सकता, क्योंकि उद्देश्य को नजरों में न रखने पर संसार के बडे-बडे सेनापति साधारण हत्यारे नजर आयेंगे, सरकारी कर वसूल करने वाले अधिकारी चोर, जालसाज दिखायी देंगे और न्यायाधीशों पर भी कत्ल करने का अभियोग लगेगा। इस तरह तो समाज व्यवस्था और सभ्यता खून खराबा, चोरी और जालसाजी बनकर रह जायेगी। यदि उद्देश्य की उपेक्षा की जाये, तो किसी हकूमत को क्या अधिकार है कि समाज के व्यक्तियों से न्याय करने को कहे? उद्देश्य की उपेक्षा की जाये तो हर धर्मप्रचारक झूठ का प्रचारक दिखायी देगा

और हरेक पैगम्बर पर अभियोग लगेगा कि उसने करोड़ों भोले और अनजान लोगों को गुमराह किया। यदि उद्देश्य को भुला दिया जाये तो हजरत ईसा मसीह गड़बड़ कराने वाले, शान्ति भंग करने वाले और विद्रोह का प्रचार करने वाले दिखायी देंगे और कानून के शब्दों में 'खतरनाक व्यक्तित्व' माने जायेगें, लेकिन हम उनकी पूजा करते हैं, उनका हमारे दिलों में बेहद आदर है, उनकी मूर्ति हमारे दिलों में अध्यात्मिकता का स्पन्दन पैदा करती हैं। यह क्यों? यह इसलिए कि उनके प्रयत्नों का प्रेरक एक ऊंचे दरजे का उद्देश्य था। उस युग के शासकों ने उनके उद्देश्य को नही पहचाना, उन्होंने उनके बाहरी व्यवहार को ही देखा, लेकिन उस समय से लेकर इस समय तक उन्नीस शताब्दियां बीत चुकी हैं, क्या हमने तब से लेकर अब तक कोई तरक्की नहीं की? क्या हम ऐसी गल्तियां दोहरायेंगे? अगर ऐसा हो तो मानना पड़ेगा कि इन्सानियत की कुर्बानियां, बड़े शहीदों के प्रयत्न बेकार रहे और आज भी हम उसी स्थान पर हैं, जहां आज से बीच शताब्दियों पहले थे?

कानूनी दृष्टि से उद्देश्य का प्रश्न खास महत्व रखता है। जनरल डायर का उदाहरण लीजिए। उसने गोली चलायी और सैकड़ों निरपराध और शस्त्रहीन व्यक्तियों को मार डाला, लेकिन फौजी अदालत ने उसे गोली का निशाना बनाने का हुक्म देने की जगह लाखों रूपये इनाम दिये। एक और उदाहरण पर ध्यान दीजिए– श्री खड़ग बहादुरसिंह ने जो एक गोरखा नौजवान हैं, कलकत्ता में एक अमीर मारवाड़ी को छूरे से मार डाला। यदि उद्देश्य को एक तरफ रख दिया जाये तो खड़गबहादुर सिंह को मौत की सजा मिलनी चाहिए थी, लेकिन उसे कुछ वर्षों की सजा दी गयी और उस अवधि से भी बहुत पहले ही मुक्त कर दिया गया। क्या कानून में कोई दरार रखनी थी, जो उसे मौत की सजा न दी गयी? या उसके विरूद्ध हत्या का अभियोग सिद्ध न हुआ? उसने

हमारी ही तरह अपना अपराध स्वीकार किया था, लेकिन उसका जीवन बच गया और वह स्वतन्त्र है। मैं पूंछता हूं, उसे फांसी की सजा क्यों नहीं दी गयी? उसका कार्य जंचा तुला था। उसने पेचीदा ढंग की तैयारी की थी। उद्देश्य की दृष्टि से उसका कार्य (एक्शन) हमारे कार्य की अपेक्षा ज्यादा घातक और संगीन था। उसे इसलिए बहुत ही नर्म सजा मिली क्योंकि उसका मकसद नेक था। उसने समाज को एक ऐसी जोंक से छुटकारा दिलाया, जिसने कई एक सुन्दर लड़कियों का खून चूस लिया था। श्री खड़गबहादुर सिंह को महज कानून की प्रतिष्ठा बचाये रखने के लिए कुछ वर्षों की सजा दी गयी।

यह सिद्धान्त किस कदर गलत है। यह न्याय के बुनियादी सिद्धान्त का विरोध है, जो कि इस प्रकार है– 'कानून आदमियों के लिए है आदमी कानून के लिए नहीं है'। इस दशा में क्या कारण है कि हमें भी वे रियायतें न दी जायें, जो श्री खड़गबहादुर सिंह को मिली थी। स्पष्ट है कि उसे नर्म सजा देते समय उसका उद्देश्य दृष्टि में रखा गया था, अन्यथा कोई भी व्यक्ति जो किसी दूसरे को कत्ल करता है, फांसी की सजा से नहीं बच सकता। क्या इसलिए हमें आम कानूनी अधिकार नहीं मिल रहा है कि हमारा कार्य हुकूमत के विरूद्ध था या इसलिए कि इस कार्य का राजनैतिक महत्व है?

माई लार्ड, इस दशा में मुझे यह कहने की आज्ञा दी जाये कि जो हुकूमत इन कमीनी हरकतों में आश्रय खोजती है, जो हुकूमत व्यक्ति के कुदरती अधिकार छीनती है, उसे जीवित रहने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं। अगर यह कायम है, तो आरजी तौर पर और हजारों बेगुनाहों का खून इसकी गर्दन पर है। यदि कानून उद्देश्य नहीं देखता, तो न्याय नहीं हो सकता और न ही स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है।

आटे में संखिया (जहर) मिलाना जुर्म नहीं, बशर्ते कि इसका

उद्देश्य चूहों को मारना हो, लेकिन यदि इससे किसी आदमी को मार दिया जाये, यह कत्ल का अपराध बन जाता है। लिहाजा ऐसे कानूनों को जो युक्ति (दलील) पर आधारित नहीं और न्याय के सिद्धान्त के विरूद्ध है, उन्हें समाप्त कर देना चाहिऐ। ऐसे ही न्याय विरोधी कानूनों के कारण बड़े-बड़े श्रेष्ठ बौद्धिक लोगों ने बगावत के कार्य किये हैं।

हमारे मुकदमें के तथ्य बिल्कुल सादा हैं। 8 अप्रैल, 1929 को हमने सेन्ट्रल असेम्बली में दो बम फेंके। उनके धमाके से चन्द लोगों को मामूली खरोचें आयी। चेम्बर में हंगामा हुआ, सैकड़ों दर्शक और सदस्य बाहर निकल गये। कुछ देर बाद खामोशी छा गयी। मैं और साथी बी.के. दत्त खामोशी के साथ दर्शक गैलरी में बैठे रहे और हमने स्वयं अपने को प्रस्तुत किया कि हमें गिरफ्तार कर लिया जाये। हमें गिरफ्तार कर लिया गया। अभियोग लगाये गये और हत्या करने के प्रयत्न में अपराध में हमें सजा दी गयी, लेकिन बमों से 4-5 आदमियों को मामूली चोटें आयी और एक बेंच को मामूली सा नुकसान पहुंचा और जिन्होंने यह अपराध किया, उन्होंने बिना किसी किस्म के हस्तक्षेप के अपने आपको गिरफ्तारी के लिए पेश कर दिया। सेशन जज ने स्वीकार किया कि यदि हम भागना चाहते तो भागने में सफल हो सकते थे। हमने अपना अपराध स्वीकार किया और अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए बयान दिया। हमें सजा का भय नहीं है लेकिन हम यह नहीं चाहते कि हमें गलत तौर पर समझा जाये। हमारे बयान से कुछ पैराग्राफ काट दिये गये हैं, यह वास्तविक स्थिति की दृष्टि से हानिकारक हैं।

समग्र रूप में हमारे वक्तव्य के अध्ययन से साफ प्रकट होता है कि हमारे दृष्टिकोण से हमारा देश एक नाजुक दौर से गुजर रहा है। इस दशा में काफी ऊंची आवाज में चेतावनी देने की जरूरत थी और हमने अपने विचारानुसार चेतावनी दी है। सम्भव है कि हम गलती पर हों, हमारा सोचने का ढंग जज

महोदय के सोचने के ढंग से भिन्न हो, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हमें अपने विचार प्रकट करने की स्वीकृति न दी जाये और गलत बातें हमारे साथ जोड़ी जाये।

इन्कलाब जिन्दाबाद और साम्राज्यवाद मुर्दाबाद के सम्बन्ध में हमने जो व्याख्या अपने बयान में दी, उसे उड़ा दिया गया है, हालांकि यह हमारे उद्देश्य का खास भाग है। इन्कलाब जिन्दाबाद से हमारा वह उद्देश्य नहीं था, जो आमतौर पर गलत अर्थ में समझा जाता है। पिस्तौल और बम इन्कलाब नहीं लाते, बल्कि इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है और यही चीज थी जिसे हम प्रकट करना चाहते थे। हमारे इन्कलाब का अर्थ पूंजीवादी युद्धों की मुसीबतों का अन्त करना है। मुख्य उद्देश्य और उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया समझे बिना किसी के सम्बन्ध में निर्णय देना उचित नहीं है। गलत बातें हमारे साथ जोड़ना साफ–साफ अन्याय है।

इसकी चेतावनी देना बहुत आवश्यक था। बेचैनी रोज–रोज बढ़ रही है। यदि उचित इलाज न किया गया, तो रोग खतरनाक रूप ले लेगा। कोई भी मानवीय शक्ति इसकी रोकथाम न कर सकेगी। अब हमने इस तूफान का रूख बदलने के लिए यह कार्रवाई की। हम इतिहास के गम्भीर अध्येता हैं। हमारा विश्वास है कि यदि सत्ताधारी शक्तियां ठीक समय पर सही कार्रवाहियां करतीं, तो फ्रांस और रूस की खूनी क्रान्तियां न बरस पड़तीं। दुनिया की कई बड़ी–बड़ी हुकूमतें विचारों के तूफान को रोकते हुए खून–खराबे के वातावरण में डूब गयी। सत्ताधारी लोग परिस्थितियों के प्रवाह को बदल सकते हैं। हम पहली चेतावनी देना चाहते थे और यदि हम कुछ व्यक्तियों की हत्या करने के इच्छुक होते, तो हम अपने मुख्य उद्देश्य में असफल हो जाते। माई लार्ड, इस नीयत (भावना) और उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए हमने कार्रवाई की और इस कार्रवाई के

परिणाम हमारे बयान का समर्थन करते हैं। एक और नुक्ता (प्वाइण्ट) स्पष्ट करना आवश्यक है। यदि हमें बमों की ताकत के सम्बन्ध में कतई ज्ञान न होता, तो हम पं. मोतीलाल नेहरू, श्री केलकर, श्री जयकर और श्री जिन्ना जैसे सम्माननीय राष्ट्रीय व्यक्तियों की उपस्थिति में क्यों बम फेंकते? हम नेताओं के जीवन किस तरह खतरे में डाल सकते थे? हम पागल तो नहीं है? और अगर पागल होते तो जेल में बन्द करने के बजाय हमें पागलखाने में बन्द किया जाता। बमों के सम्बन्ध में हमें निश्चित जानकारी थी। उसी के कारण हमने ऐसा साहस किया। जिन बेचों पर लोग बैठे थे, उन पर बम फेंकना कहीं आसान काम था, लेकिन खाली जगह पर बमों का फेंकना निहायत मुश्किल काम था। अगर बम फेंकने वाले सही दिमागों के न होते या वे परेशान (असन्तुलित) होते तो बम खाली जगह की बजाय बेंचों पर गिरते। तो मैं कहूंगा कि खाली जगह के चुनाव के लिए जो हिम्मत हमने दिखायी, उसके लिए हमें इनाम मिलना चाहिए। इन हालात में, माई लार्ड, हम सोचते हैं कि हमें ठीक तरह समझा नहीं गया। आपकी सेवा में हम सजाओं में कमी कराने नहीं आये, बल्कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए आये हैं। हम चाहते हैं कि न तो हमसे अनुचित व्यवहार किया जाये, न ही हमारे सम्बन्ध में अनुचित राय दी जाये। सजा का सवाल हमारे लिए गौण है।[1]

हाईकोर्ट में भगत सिंह ने यह महत्वपूर्ण ब्यान दिया किन्तु वह एक गुलाम देश के निवासी थे। इसलिये सत्ता के मद में अंधे लोगों ने उसे स्वीकार नहीं किया और सेशन जज के फैसले को बहाल रखते हुए 13 जनवरी 1930 को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त जी को आजन्म कारावास का दण्ड सुना दिया।

फैसले में जस्टिस एफ.फोर्ड ने लिखा– "यह बयान कोई गलती न होगी कि ये लोग दिल की गहराई और पूरे आवेग के साथ वर्तमान समाज के ढांचे को बदलने की इच्छा से प्रेरित थे। भगत सिंह एक ईमानदार और सच्चे

---

1. भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज, चमनलाल, पृ0सं0 294–298

क्रान्तिकारी है। मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि वे इस स्वप्नको ले कर पूरी सचाई से खड़े हैं कि दुनिया का सुधार वर्तमान सामाजिक ढांचे को तोड़ कर ही हो सकता है। वे कानून के ढांचे की जगह मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा को स्थापित करना चाहते हैं। अराजकतावादियों की सदा यही मान्यता रही है, परन्तु जो अपराध इनके और इनके साथी पर लगा है, उसकी यह कोई सफाई नहीं है।''1

एक विचारक के शब्दों में– ''वीरता की कसौटी यह है कि अपने विरोधी को भी वह प्रशंसा के लिये विवश कर दे।''

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–198

जेल में भूख हड़ताल

जिस समय भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त जी को दिल्ली जेल में रखा गया। उस समय उन्हें अंग्रेज अपराधियों जैसी सुविधाएं दी गयी, किन्तु मुकदमें का फैसला हो जाने के पश्चात वे सभी सुविधाएं समाप्त कर दी गयी। वीरेन्द्र सिन्धु के अनुसार– 8 सितम्बर को जब श्री बटुकेश्वर दत्त जी पहली बार हमारे घर आये तो उन्होंने कहा था– "12 जून 1929 को हम दोनों को असेम्बली बम काण्ड में आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया। हम दोनों को दिल्ली से एक ट्रेन में अलग–अलग डिब्बों में ले जाया गया। मुझे लाहौर जेल में और भगत सिंह को मियावली जेल में रखा गया। रास्ते में पुलिस का अंग्रेस सार्जेण्ट हम से बहुत प्रसन्न रहा और लाहौर पहुंचने से कुछ स्टेशन पहले ही वह सरदार जी को मेरे डिब्बे में ले आया। मुझे इसकी आशा तनिक भी नहीं थी। हम दोनों मिले तो भगत सिंह ने मुझे फिर यह बात याद दिलायी कि हमें जेल पहुंचते ही भूख हड़ताल आरम्भ कर देनी है। इस प्रकार 14 जून 1929 से हमारी भूख हड़ताल आरम्भ हो गयी जो अक्टूबर 1929 को प्रथम सप्ताह तक चली।"[1]

वीरेन्द्र सिन्धु जी के शब्दो में–"मैंने उनसे (बटुकेश्वर दत्त जी) पूंछा था अलग अलग जेलों में रहते हुए आपके मन में यह आशंका नहीं आयी कि शायद आपके साथी ने भूख हड़ताल समाप्त कर दी हो या जेल में पहुंचकर आरम्भ ही न की हो।" उनका उत्तर था– "हमें एक दूसरे पर अटूट विश्वास था। अविश्वास की भावना कभी मन में नहीं आयी। जब मेरे सामने भोजन लाया जाता, तो मुझे ध्यान आता कि भगत सिंह भूखा है और मैं भोजन की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखता। बस यही हाल उनका भी था।"[2]

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–200
2. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–200

उस समय भारतीय राजबन्दियों के साथ जेल में अमानवीय व्यवहार होता था। अंग्रेज अपराधियों और कुछ कांग्रेसी नेताओं को छोड़कर अन्य सभी राजबन्दियों को साधारण कैदियों की तरह रखा जाता था। उनके खाने पीने, नहाने धोने और पढ़ने–लिखने की ओर तो ध्यान देना दूर था बल्कि उनसे कड़ी मशक्कत ली जाती थी और जेल अधिकारियों का व्यवहार द्वेषपूर्ण और अपमानजनक था। इससे क्रान्तिकारी विक्षुब्ध रहते थे।

17 जून 1929 में भगत सिंह ने मियांवली जेल से इंस्पेक्टर जनरल के नाम यह पत्र लिखा–

सेवा में,

इंस्पेक्टर जनरल जेल,

पंजाब (जेल्स) लाहौर।

प्रिय महोदय,

इस सच्चाई के बाबजूद कि सांडर्स शूटिंग केस में गिरफ्तार दूसरे नौजवानों के साथ ही मुझ पर भी मुकदमा चलेगा, मुझे दिल्ली से मियांवली जेल में बदल दिया गया है। उस केस की सुनवाई 26 जून, 1929 से शुरू होने वाली है। मैं यह समझने में सर्वथा असमर्थ रहा हूं कि मुझे यहां तब्दील करने के पीछे क्या भावना काम कर रही है।

जो भी हो, न्याय की मांग है कि हरेक अभियुक्त (अंडर ट्रायल) को वे सब सुविधाएं मिलनी चाहिये, जिनसे वह अपने मुकदमे की तैयारी कर सके और लड सके। मैं यहां रहते कैसे अपना वकील नियुक्त कर सकता हूं? क्योंकि यहां रहते हुए मुझे अपने पिता या दूसरे रिश्तेदारों से सम्पर्क रखना कठिन है। यह स्थान काफी अलग–थलग है, रास्ता कठिन है और लाहौर से काफी दूर है।

मैं प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे तुरन्त लाहौर सेन्ट्रल जेल में बदलने का आदेश दें, जिससे कि मुझे अपना केस लड़ने की तैयारी करने का उचित अवसर मिले। आशा है कि शीघ्र ध्यान दिया जायेगा।

आपका,
भगत सिंह

कानून ने उनकी मांग का समर्थन किया और जून के अन्तिम सप्ताह में उन्हें लाहौर सेण्ट्रल जेल में भेज दिया गया। भूख हड़ताल के एक महीना बाद मियांवली जेल से मुकदमें के लिये लाहौर जेल आने पर उन्होंने अपनी मांगों के संबंध में भारत सरकार के होम मेम्बर को यह पत्र लिखा—

सेण्ट्रल जेल लाहौर
24 जुलाई, 1929[1]

श्रीमान् जी
होम मेम्बर, भारत सरकार

हमें (भगत सिंह और बी.के.दत्त) 12 जून 1929 को दिल्ली के असेम्बली बम केस में आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया। जब तक हम दिल्ली जेल में हवालाती कैदी (अंडर ट्रायल) रहे, हमारे साथ बड़ा अच्छा सलूक किया गया, पर जबसे उस जेल से हमारी तब्दीली मियांवली और लाहौर सेण्ट्रल जेल में हुई तबसे हमारे साथ इखलाकी कैदियों जैसा सलूक किया जा रहा है। पहले ही दिन हमने उच्च अधिकारियों से अच्छी खुराक तथा कुछ और सुविधाओं की मांग की और जेल की रोटी खाने से इंकार कर दिया। हमारी मांगे इस प्रकार थी—

1. राजनैतिक कैदी होने के नाते हमें अच्छा खाना दिया जाना चाहिये, इसलिये हमारे भोजन का रूप यूरोपियन कैदियों जैसा होना चाहिये। हम उसी तरह की खुराक की मांग नहीं करते, बल्कि खुराक का स्तर वैसा चाहते हैं।

---

1. सरदार भगत के पत्र और दस्तावेज, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज—35

2. हमें मुशक्कत के नाम पर जेलों में सम्मानहीन काम करने के लिये बाध्य नहीं किया जाना चाहिये।

3. बिना किसी रोक–टोक के पूर्व स्वीकृत (जिन्हें जेल अधिकारी स्वीकृत कर लें) पुस्तकें और लिखने का सामान लेने की सुविधा होनी चाहिये।

4. कम से कम एक दैनिक पत्र हरेक कैदी को मिलना चाहिये।

5. हरेक जेल में राजनैतिक कैदियों का एक विशेष वार्ड होना चाहिये, जिसमें उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की सुविधा होनी चाहिये, जो यूरोपियनों के लिये होती है और एक जेल में रहने वाले सभी राजनैतिक कैदी उस वार्ड में इकटठे रहने चाहिये।

6. स्नान के लिये सुविधायें मिलनी चाहिये।

7. अच्छे कपड़े मिलने चाहये।

हमारी ये मांगे पूर्णतया उचित हैं पर जेल अधिकारियों ने हमें एक दिन कहा कि उच्च अधिकारियों ने हमारी मांगे मानने से इन्कार कर दिया है। इससे भी अधिक यह कि जबरदस्ती खाना देने वाले हमारे साथ बुरा सलूक करते हैं। 1 जून, 1929 को भगत सिंह जबरदस्ती खाना देने के पन्द्रह मिनट बाद तक पूरी तरह बेसुध पड़ा रहा। अतः हम यह निवेदन करते हैं कि बिना किसी ढील के यह दुर्व्यवहार बन्द किया जाना चाहिये।

इसके साथ ही में यू0पी0 जेल कमेटी में पंडित जगत नारायण और खान बहादुर हाफिज हिदायत हुसैन की सिफारिश की तरफ इशारा करने की आज्ञा दी जाये। उन्होंने यह सिफारिश की है कि राजनैतिक कैदियों के साथ अच्छी क्लास के कैदियों जैसा सलूक किया जाना चाहिये।

हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमारी मांगों की ओर ध्यान दिया जाये।

आपके,

भगत सिंह और बी.के. दत्त[1]

यह भूख हड़ताल सिर्फ अपने लिये ही नहीं सभी राजनैतिक कैदियों के साथ अच्छे व्यवहार के लिये थी। इस भूख हडताल का अखबारों में खूब प्रचार हुआ। 30 जून को अखिल भारतीय स्तर पर भगत सिंह दिवस मनाया गया। जुलूस निकले, जलसे हुए और बहुत से लोगों ने, विशेषकर बंगाल में, उस दिन उनकी हमदर्दी में उपवास किया, लेकिन अपने को सभ्य कहलाने वाली सरकार टस से मस नहीं हुई।

10 जुलाई 1929 में साण्डर्स हत्यांकाड के सम्बन्धा में मुकदमा मजिस्ट्रेट श्री कृष्ण की अदालत में शुरू हुआ। भगत सिंह मुख्य अभियुक्त थे। भगत सिंह बहुत कमजोर थे, इसलिये उनको अदालत स्ट्रेचर पर लाया गया। उनकी सहानुभूमि में बोस्टर जेल के उनके साथी अभियुक्तों ने अनशन आरम्भ करने की घोषणा मजिस्ट्रेट की अदालत में ही कर दी। यतीन्द्र नाथ दास चार दिन बाद भूख हड़ताल में शामिल हुए, भगत सिंह ने संघर्ष और प्रचार का माध्यम बनाया किन्तु यतीन्द्र नाथ दास ने प्राणों की बाजी लगाने का निर्णय लिया था। उनके लिये यह आमरण अनशन था।

भगत सिंह तथा बी.के. दत्त जी द्वारा सरकार को प्रार्थना पत्र भेजने के बाद सरकार ने स्वास्थ्य के आधार पर भोजन में कुछ सुधार किये किन्तु वे सुधार इतने मामूली थे कि भगत सिंह ने उन पर विचार नहीं किया। सरकार ने सुधारों के आदेशों में मेडिकल ग्राउन्ड हटाकर समाचार पत्रों में छपवाया। भगत

---

1. सरदार भगत सिंह के पत्र और दस्तावेज, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–36, 37

सिंह ने कहा कि– ''ये सुधार सरकारी गजट में छपे और सब राजनैतिक कैदियों के लिये स्थायी रूप से हो तो हम इन पर विचार करेंगे।''

भूख हड़ताल प्रारम्भ करते समय भगत सिंह का बजन 133 पौण्ड था। 30 जुलाई 1929 तक लगभग 5 पौण्ड प्रति सप्ताह के हिसाब से भगत सिंह का बजन घटता रहा। बाद में ठहर गया। इस प्रकार सरकार के लिये यह भूख हड़ताल प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया और सरकार ने क्रान्तिकारियों की मांगे स्वीकार करने की बजाय उन्हें अपने निश्चय से हटाने के लिये अनेक प्रकार के अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये। भूख हड़ताल में भोजन का त्याग किया गया था किन्तु पानी का नही। जेल अधिकारियों ने पानी के घड़ें में दूध भर कर रखना शुरू कर दिया। ताकि प्यास से विवश होकर दूध पी ले। किन्तु इन लोगों ने घड़ों को फोड़ना शुरू कर दिया जेल अधिकारियों की यह चाल भी विफल हो गयी।

इसके अलावा भूख हड़तालियों के आसपास फल मिठाई आदि खाने की वस्तुएं रख दी जाती थी और जेल अधिकारी हट जाते थे ताकि इन लोगों के मन ललचाये और अनशनकारी अपने निश्चय से हट कर इन चीजों को खा ले। यदि इनमें से किसी एक में भी यह कमजोरी आ जाये तो अधिकारी इन्हें बदनाम करके भूख हड़ताल की समाप्ति की घोषणा के बजाय इन चीजों को उठाकर फेंक देते थे।

अनशनकारी धीरे–धीरे मृत्यु की ओर बढ़ रहे थे लेकिन सरकार उनके मरने की जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेना चाहती थी। इसलिये अनशनकारियों के बलपूर्वक दूध पिलाना शुरू किया गया, किन्तु यह कार्य भी आसान नहीं था। एक अनशनकारी के लिये सात या आठ आदमी लगते थे। कोई हाथ तो कोई पैर पकड़ता, कोई सिर तथा छाती पर चढ़कर रबड़ की नली नाक

सिंह ने कहा कि– ''ये सुधार सरकारी गजट में छपे और सब राजनैतिक कैदियों के लिये स्थायी रूप से हो तो हम इन पर विचार करेंगे।''

भूख हड़ताल प्रारम्भ करते समय भगत सिंह का बजन 133 पौण्ड था। 30 जुलाई 1929 तक लगभग 5 पौण्ड प्रति सप्ताह के हिसाब से भगत सिंह का बजन घटता रहा। बाद में ठहर गया। इस प्रकार सरकार के लिये यह भूख हड़ताल प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया और सरकार ने क्रान्तिकारियों की मांगे स्वीकार करने की बजाय उन्हें अपने निश्चय से हटाने के लिये अनेक प्रकार के अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये। भूख हड़ताल में भोजन का त्याग किया गया था किन्तु पानी का नही। जेल अधिकारियों ने पानी के घडें में दूध भर कर रखाना शुरू कर दिया। ताकि प्यास से विवश होकर दूध पी ले। किन्तु इन लोगों ने घडों को फोड़ना शुरू कर दिया जेल अधिकारियों की यह चाल भी विफल हो गयी।

इसके अलावा भूख हड़तालियों के आसपास फल मिठाई आदि खाने की वस्तुएं रख दी जाती थी और जेल अधिकारी हट जाते थे ताकि इन लोगों के मन ललचाये और अनशनकारी अपने निश्चय से हट कर इन चीजों को खा ले। यदि इनमें से किसी एक में भी यह कमजोरी आ जाये तो अधिकारी इन्हें बदनाम करके भूख हड़ताल की समाप्ति की घोषणा के बजाय इन चीजों को उठाकर फेंक देते थे।

अनशनकारी धीरे–धीरे मृत्यु की ओर बढ रहे थे लेकिन सरकार उनके मरने की जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेना चाहती थी। इसलिये अनशनकारियों के बलपूर्वक दूध पिलाना शुरू किया गया, किन्तु यह कार्य भी आसान नहीं था। एक अनशनकारी के लिये सात या आठ आदमी लगते थे। कोई हाथ तो कोई पैर पकड़ता, कोई सिर तथा छाती पर चढ़कर रबड़ की नली नाक

में डालकर दूध दिया जाता था। यतीन्द्र नाथ दास को जब पहली बार नली से दूध दिया गया तो वह सांस की नली में पहुंच गया और वह बेहोश हो गये।

जब डाक्टर और कर्मचारी बलपूर्वक दूध देकर चले जाते तो अनशनकारी उसे किसी न किसी तरह से बाहर निकालने का प्रयास करते। सुखदेव जी ने दो तीन बार उंगली डालकर उल्टी करके दूध निकाल दिया। जब यह उपाय सफल नहीं हुआ तब मक्खी निगल ली ताकि उल्टी हो जाये। किशोरी लाल जी ने तेज गर्म पानी पीकर अपना गला जला लिया और लाल मिर्चे खा ली। इससे गला इतना खराब हो गया कि नली नाम में डालते ही तेज खांसी उठती थी यदि नली डाक्टर तुरन्त न निकाले तो उनकी मृत्यु भी हो सकती थी।

इस प्रकार देश भर में भूख हडताल की खबरे समाचार पत्र में छपने लगी। नगर नगर में जुलूस व जलसे होने लगे। जनता में जागृति आने लगी। इस प्रकार भगत सिंह अपने लक्ष्य में सफल होने लगे। देश भर की दूसरी जेलों में भी राजनैतिक कैदियो ने उनकी सहानुभूति में अनशन करना प्रारम्भ कर दिया।

28 जुलाई 1929 को यतीन्द्रनाथ दास की हालब बिगडी। भगत सिंह ने बोर्स्टल जेल में संदेश भेजा कि वे सभी भूख–हड़ताल छोड़ दें। यह लड़ाई भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त जी ही लडेगे। किन्तु जान पर खेलने वाले ऐसी बात कहां मानते हैं। यतीन्द्र नाथ दास की हालत और बिगड़ी तो जेल के अधिकारियों ने उन्हें एनिमा देने का प्रयत्न किया किन्तु वह इसके लिये तैयार नहीं हुए। तब गवर्नर की स्वीकृति पर भगत सिंह को सेन्ट्रल जेल से बोर्स्टल जेल लाया गया। भगत सिंह के कहने पर यतीन्द्र नाथ दास ने बिना आग्रह के एनिमा लेना स्वीकार कर लिया। बोर्स्टल जेल के डिप्टी खान साहब खैरदीन ने हैरान होकर कहा– "आपने भगत सिंह की बात बिना जिद के मान ली।" यतीन्द्र

नाथ ने कहा– "खान साहब, आप नहीं जानते, भगत सिंह एक वीर पुरूष हैं। मैं उनके शब्दों का असम्मान नहीं कर सकता।"

2 सितम्बर को सरकार ने भूख हडताल के संबंध में जांच के लिये एक उपसमिति गठित की। इस समय तक यतीन्द्र नाथ दास की हालत अत्यन्त गम्भीर हो गयी थी। कमेटी के कुछ सदस्य जेल में आये, भगत सिंह भी बातचीत में शरीक हुये। कमेटी ने अपील की कि यदि सब लोग भूख हड़ताल तोड़ दे तो यतीन्द्र नाथ को रिहा कर दिया जायेगा। उनके परामर्श पर सबने भूख हडताल तोड़ दी, किन्तु यतीन्द्र नाथ ने भूख हड़ताल नहीं तोडी और सरकार अपनी बात से हट गयी। इसलिये दो दिन बार 4 सितम्बर से भूख हड़ताल फिर शुरू हो गयी। 2 सितम्बर को भगत सिंह व बी.के. दत्त को 81 दिन तथा तथा दूसरे साथियों को 53 दिन हुए थे। 13 सितम्बर 1929 को यतीन्द्र नाथ दास शहीद हो गये और देश का वातावरण आंसुओं में डूब गया। ईस्ट इण्डिया रेलवे के विशेष डिब्बे से उनका शव कलकत्ता भेजा गया। लाखों व्यक्तियों ने उन्हें अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि दी।

यतीन्द्र नाथ की शहादत से सरकार परेशान थी क्योंकि भूख हड़ताल अभी भी जारी थी। जनता में उत्तेजना व्याप्त होती जा रही थी। जेल में जो भी घटित होता था वह समाचार जेल से बाहर पहुंच जाता था और समाचार पत्रों में सुर्खियों के साथ छप जाता था। भगत सिहं ने एक प्रार्थना पत्र सरकार को भेजने के लिये जेल सुपरिन्टेण्डेण्ट मि0 ब्रिग्स को दिया। ब्रिग्स ने कहा– "इसमें कुछ लाइने आपत्तिजनक हैं, आप इन्हें निकाल दें, तो मैं इसे ऊपर भेज दूं।" भगत सिंह तैयार नहीं हुए। उनका आग्रह था कि इसे ज्यो का त्यों ही भेजा जाये जिसके लिये ब्रिग्स तैयार नहीं था। दूसरे दिन सुबह जब दैनिक 'ट्रिब्यून' आया, उसमें सब छप गया था।

इस स्थिति में जांच कमेटी ने अपनी सिफारिशें सरकार के पास भेजी, मांगे अब भी विचाराधीन थी। किन्तु उन्हें राजनैतिक कैदी मान लिया गया और लिखने पढ़ने तथा भोजन इत्यादि सम्बन्धी काफी सुविधाएं फौरी तौर पर मिल गयी।

यह भगत सिंह और उनके साथियों की जीत थी क्योंकि असल बात अपने को राजनैतिक कैदी मनवाना था। वह मन ली गई। एक सौ चौदह दिन बाद 5 अक्टूबर 1929 को भूख हड़ताल समाप्त हुई।

सेशन कोर्ट व ट्रिब्यूनल में भगत सिंह

लाहौर षडयन्त्र केस जो भूख हडताल के कारण स्थगित हो गया था अब भूख हड़ताल समाप्त होने के पश्चात पुनः प्रारम्भ हो गया। भगत सिंह ने तीन लोगों की एक छोटी सी कमेटी बनाई जिसमें स्वयं वे, सुखदेव तथा विजय कुमार सिन्हा थे। इसका उद्‌देश्य था कि किस प्रकार इस मुकदमें द्वारा ही अपनी पार्टी के मत के प्रसार में सहायता पहुंचाई जाए, जिससे अपने सिद्धान्तों व कार्य प्रणाली को बड़ी सफाई से जनता तक पहुंचा देने का अवसर मिल जाए।[1]

सरकार चाहती थी कि अखबार के प्रतिनिधि तथा दर्शक कम से कम अदालत में आये। किन्तु भगत सिंह ने इसका विरोध किया। जब अदालत शुरू होती थी तो 'इंकलाब जिन्दाबाद', 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' और 'दुनिया भर के मजदूरों एक हो' के नारों के बाद राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम्' गाया जाता था। राष्ट्रीय गीत गाने के बाद झूमते हुए राम प्रसाद 'बिस्मिल' की प्रसिद्ध गजल के शेर गाते थे।

> ''सर–फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
> देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।
> वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमां,
> हम अभी से क्या बताये क्या हमारे दिल में है।
> ऐ शहीदे, मुल्कों मिल्लत, मैं तेरे ऊपर निसार,
> अब तेरी हिम्मत की चर्चा गैर की महफिल में है।
> सर–फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।।''[1]

---

1. अमर शहीद सरदार भगत सिंहः जितेन्द्र नाथ सान्याल, पेज– 55, 56
2. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–209

'मॉडर्न रिव्यू' के सम्पादक श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय ने 'इंकलाब जिन्दाबाद' के नारे को अराजकता और खून खराबे का प्रतीक व निरर्थक बताया। भगत सिं हने एक पत्र द्वारा लिखा कि– ''इस नारे की रचना हमने नहीं की। यही नारा रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन में प्रयोग किया गया है और प्रसिद्ध समाजवादी लेखक ऑप्टन सिकलेयर ने अपने उपन्यासों 'बोस्टन' और 'आइल' में यही नारा कुछ अराजकतावादी क्रान्तिकारी पात्रों के मुख से कहलाया था। हम यतीन्द्रनाथ जिन्दावाद का नारा लगाते हैं। उससे हमारा अभिप्राय है कि उनके जीवन के महान आदर्शो और बलिदान को सदा बनाये रखें। क्रान्ति शब्द का अर्थ प्रगति के लिये परिवर्तन की भावना एवं आकांक्षा है।

अदालत ने विचाराधीन बन्दियों को हथकडियां पहनाकर उपस्थित करने की आज्ञा दी। उसका कारण यह था कि जयगोपाल, मुकदमें का एक मुखबिर था। जब वह अपना बयान देने कटघरे में आया तो उसने कुछ व्यंग्य किया। इस पर सभी अभियुक्तों ने शर्म शर्म के नारे लगाये। लेकिन प्रेमदत्त जो सबसे कम उम्र का था उसने अपनी चप्पल उतारकर मुखबिर को मार दी। इसका परिणाम यह हुआ कि अदालत की कार्यवाही रोकी गई और सब अभियुक्तों को तुरन्त हथकड़ी डाल दी गई और हुक्म दिया गया कि आगे से अभियुक्तों को हथकड़ी डाल कर ही लाया जाये। इस पर भगत सिंह ने तय किया या तो अदालत यह आदेश रद्द करें या हम लोग अदालत नही आयेगें।

दूसरे दिन पुलिस पूरा जोर लगाकर एक भी अभियुक्त को अदालत तक न ला सकी। सोलह अभियुक्तों में केवल पांच लोगों को लारी में बैठाकर जेल के फाटक तक ला पाये किन्तु उसके बाद लारी से उतार नहीं पायें। इसके पश्चात यह तय हुआ कि अभियुक्तों को हथकड़ी डालकर अदालत तक लाया जाये और फिर अदलत में हथकड़ी खोल दी जाये। अभियुक्तों ने इस शर्त का

पालन किया किन्तु अदालत ने हथकड़ियां नहीं खोली और कार्यवाही जारी कर दी।

इसके पश्चात दोपहर में खाना खाने के लिये अदालत से हथकड़ियां खुलवाने की प्रार्थना की और हथकड़ियां खुलवा ली। खाने के पश्चात पुलिस जब हथकड़ियां पहनने लगी तब इन अभियुक्तों ने साफ इन्कार कर दिया और पुलिस तथा अभियुक्तों के बीच हाथपाई हो गई। पठानों की पलटन खास तौर पर बुलाई गई जिन्होने बड़ी बेदर्दी से अभियुक्तों को पीटना शुरू किया।

भगत सिंह पर विशेष रूप से आठ पठान टूट पड़े और उन्हें लाठियों एवं जूतों से मारने लगे। वहां उपस्थित दर्शकों ने जिसमें अखबार वाले, कुछ स्त्रियों आदि ने यह अमानुषिक व्यवहार होते हुये अपनी आंखों से देखा। मारपीट के पश्चात अदालत की कार्यवही फिर नहीं हो सकी और वह उठ गई। इसके बाद जेल में भगत सिंह और उनके साथियों को फिर मारा और जब वे थक गये तो उन्होने सम्मिलित रूप से यह रिपोर्ट की "इन्हें मारा डाला जा सकता है पर किसी को अदालत में नहीं लाया जा सकता।"

अभियुक्तों पर यह अमानुषिक व्यवहार की खबर पूरे शहर में फैल गयी और उसी दिन शाम को लाहौर में एक वृहद सभा हुई जिसमें पुलिस के इस कार्य की घोर निंदा की गयी दूसरे दिन देश भर के अखबारों में यह खबर छप गयी। सम्पादकों ने इस काण्ड की घोर निन्दा की। विदेशी अखबारों में भी यह 'न्यूज' उछाली गई। पोलेंड की एक महिला ने डिफेन्स कमेटी को रूपये भेजे ताकि इस केस की पूर्ण जानकारी उसे प्राप्त होती रहे। दूर-दूर देशों से रूपये आने लगे। जापान, कनाडा और सुदूर-दक्षिणी अमेरिका से चंदे आने लगे। देश के भिन्न-भिन्न भागों में भगत सिंह दिवस मनाये गये और उनके चित्र कैलेंडरों में खूब लगाये गये।

इसी बीच सर्वश्री सुभाषचन्द्र बोस, बाबा गुरूदित्ता सिंह के एफ नारीमैन, कालाकांकर के राजा साहब, श्री रफी अहमद किदवई, श्री मोहनलाल सक्सेना अदालत में आये। पण्डित मोतीलाल नेहरू दो बार गये और और अभियुक्तों के बीच बैठकर महत्वपूर्ण वार्तालाप भी किया।

देश के नवयुवक समाज पर 'लाहौर कासीपिरेसी केस' का इतना प्रभाव पड़ रहा था कि सरकार इस स्थिति से बाहर निकलने के उपाय सोचने लगी।

''21 जनवरी, 1930 को लेनिन के निर्माण दिवस के अवसर पर भगत सिंह और उनके साथी अदलत में अपने गालों में लाल रूमाल बांधकर आये। अदालत के कटघरे में पहुंचते ही सबसे पहले उन्होने सामूहिक रूप से सुप्रसिद्ध गजल ''सरफरोसी की तमन्ना'' गायी। तत्पश्चात उन्होने नीचे लिखे नारे लगाये।

''समाजवादी क्रान्ति जिन्दाबाद''

''कम्युनिस्ट इन्टरनेशन जिन्दाबाद''

''मेहनतकश जनता जिन्दाबाद'' ''लेनिन का नाम अमर रहे''

''साम्राज्यवाद का नाश हो''1

इसके बाद भगत सिंह ने अपने सभी साथियों की ओर से अदालत में यह तार पढ़कर सुनाय और अदालत से यह मांग की कि वह उसे तीसरे इन्टरनेशनल को भेज दें।

''आज लेनिन दिवस पर हम उन सबको हार्दिक बधाई भेजते हैं जो महान लेनिन के विचारों को आगे बढ़ाने में कुछ भी योगदान दे रहे हैं हम रूस

---

1. शहीद भगत सिंह की चुनी हुई कृतियां, शिववर्मा पेज नं0–122

द्वारा किये जा रहे महान प्रयोग की सफलता की कामना करते हैं। हम अन्तरर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग के आन्दोलन की आवाज में अपनी आवाज मिलाते हैं। सर्वहारा की विजय सुनिश्चित है। पूंजीवाद पराजित होगा। साम्राज्यवाद मुर्दाबाद।

इस प्रकार ये लोग प्रदर्शन के किसी भी अवसर को हाथ से नहीं जाने देते थे। इसलिये 'काकोरी दिवस', 'लेनिन दिवस', 'पहली मई दिवस', 'लाजपत राय दिवस' तथा इसी प्रकार के अन्य अवसरों पर जैसे श्याम जी कृष्ण वर्मा तथा हंगरी में भूख–हड़ताल करते हुये एक राजनैतिक कैदी की मृत्यु पर उन्होने खुली अदालत में प्रदर्शन किये। इन अवसरों पर वे सदा जनता को कोई न कोई सन्देश देते। अदालत ने इन संदेशों को मुकदमें की कार्यवाही में दर्ज होने जाने दिया क्योंकि उसका ख्याल था कि वह उन कैदियों को फंसाने में ही सहायक होगें। इस प्रकार के उन संदेशों द्वारा उन कैदियों के खिलाफ ही 'प्रमाण' जुटाना चाहते थे। इधर कैदियों को इन 'प्रमाणों' व गवाहियों की कोई परवाह नहीं थी, अतः वे ऐसे मौकों पर लाभ उठाने से कभी नहीं चूकते थे।''

1929 में भगत सिंह ने जो भूख हड़ताल की थी जनवरी 1930 बीत जाने पर भी उस पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। अतः 4 फरवरी 1930 में भगत सिंह ने एक सप्ताह का नोटिस देने के बाद भूख हडताल कर दी। इससे सरकार घबरा गयी और एक पत्र प्रकाशित करके पुनः आश्वासन दिया। भगत सिंह ने भूख हड़ताल तोड़ दी। इसके पश्चात 'सिविल मिलिट्री गजट' नामक पत्र में एक वक्तव्य छपा जिसमें लिखा कि अभियुक्तों ने अदालत का बहिष्कार कर दिया है। इस पर 11 फरवरी 1930 में भगत सिंह ने अपने और बी0के0 दत्त जी की ओर से स्पेशल मजिस्ट्रेट को लिखा, जिसका वर्णन परिशिष्ट में किया जायेगा।

"भगत सिंह और उनके साथी मुकदमें के परिणाम से पूरी तरह परिचित थे और मिलने वाली सजाओं की ओर से बिल्कुल वेपरवाह। क्योंकि वे अपने विचार जनता तक ले जाने और लोगों को ऐतिहासिक जिम्मेदारी के लिये तैयार करना चाहते थे इसलिये यह भी इच्छा रखते थे कि मुकदमें की कार्यवाही धीमी गति से आगे बढ़े, ताकि जनता तक उनके विचार पहुंच सके। लेकिन सरकार खींझ रही थी। आखिर 1 मई, 1930 को एक विशेष अध्यादेश द्वारा एक विशेष 'ट्रिब्यूनल' स्थापित किया गया। उस अध्यादेश के बारे में बनाये गये सरकारी बहाने का उत्तर भगत सिंह ने 2 मई 1930 को प्रस्तुत किया।"[1]

1 मई 1930 को गवर्नर जनरल लार्ड इरविन ने 'लाहौर षडयंत्र केस आर्डीनेन्स' के नाम पर एक विशेष आदेश जारी किया। इसके अनुसार तीन जजों का स्पेशल ट्रिब्यूनल नियुक्त किया गया। जिसको यह अधिकार दिय गया कि अभियुक्तों की अनुपस्थिति में वकीलों और गवाहों की उपस्थिति हुये बिना तथा सरकारी गवाहों पर जिरह के अभाव में भी मुकदमें का फैंसला एकतरफा किया जा सकता है।

नया ट्रिब्यूनल जो पंजाब हाईकोर्ट ने बनाया था उसमें तीन सदस्य बनाये गये— जस्टिस जे0कोल्डस्ट्रीम प्रेसीडेन्ट, जस्टिस आगा हैदर सदस्य, जस्टिस जी0सी0 हिल्टन, सदस्य। 4 मई 1930 में ट्रिब्यूनल की पहली बैठक हुई जिसमें मिस्टर एम0सी0 एच कार्डननोड सरकारी वकील थे।

"5 मई को पुंछ हाउस में कार्यवाही शुरू हुई। जिसमें अभियुक्तों ने अदालत में आते ही नारे लगाये तथा राष्ट्रीय गीत गाये। भगत सिंह ने कहा कि—

---

1. भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज, जगमोहन सिंह चमनलाल, पेज नं0—318

"हमें पन्द्रह दिन का समय दिया जाये ताकि ट्रिब्यूनल के गैर कानूनी होने के सम्बन्ध में दलीलें पेश की जा सकें। यह बात स्वीकार नहीं की जा सकी। मुकदमें की सूची में 24 क्रान्तिकारियों के नाम थे, किन्तु मुकदमा 16 पर चला, उनके नाम थे– 1. सुखदेव, 2. भगत सिंह, 3. किशोरी लाल, 4. देशराज, 5. प्रेमदत्त, 6. जयदेव कपूत, 7. शिववर्मा, 8. महावीर सिंह, 9. यतीन्द्र नाथ दास, 10. अजय घोस, 11. यतीन्द्र सान्याल, 12. विजय कुमार सिन्हा, 13. शिवराम राजगुरू, 14. कुन्दनलाल, 15. कमलनाथ तिवाड़ी।"[1]

12 मई 1930 को जस्टिस कोल्डस्ट्रीम ने हुक्म दिया कि अभियुक्तों को अदालत में हथकड़ी लगाकर पेश किया जाये। इस पर हंगामा हुआ। कोल्डस्ट्रीम ने भारतीयों को गालियां दी और भगत सिंह को लाठियों से पिटवाया।

भगत सिंह और उनके साथियों पर अदालत में यह अमानुषिक व्यवहार हुआ, तो अदालत में सम्वाददाता और दर्शक भी मौजूद थे। ट्रिब्यूनल में तीन जजों में जज आगा हैदर भारतीय थे और उन्होने उस दिन की कार्यवाही पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया और अलग से अपना आदेश लिखा– "मैं अभियुक्तों को अदालत से जेल भेजने के आदेश का भागीदार नहीं था और न उस सबके लिये किसी तरह भी जिम्मेदार, मैं उस सब से, जो आज यहां हुआ, अपने को असम्बद्ध करता हूं।"

–'आगा हैदर'

इस घटना की चर्चा सभी जगह हुई। सारे भारत में भगत सिंह दिवस मनाया गया। और अभियुक्तों ने अदालत में आना बन्द कर दिया।

21 जून 1930 को वायसराय ने नये आर्डिनेन्स द्वारा पुराने ट्रिब्यूनल

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 163–164.

को समाप्त करके, नया ट्रिब्यूनल संगठित किया। जिसमें जस्टिस जी0सी0 हिल्टन, अध्यक्ष, जस्टिस अब्दुल कादिर, सदस्य, जस्टिस जे0के0 टेप, सदस्य थे।

भगत सिंह और बी0के0 दत्त ने इस नये ट्रिब्यूनल के बारे में एक पत्र द्वारा अपने विचार व्यक्त करते हुये लिखा।

"हम एक बात बड़े जोर से कहना चाहते हैं कि जज कोल्डस्ट्रीम से हमें कोई व्यक्तिगत शिकायत नहीं है। हमारी आपत्ति का कारण जज कोल्डस्ट्रीम की ओर से पास किया गया बहुगिनती का आदेश और उसके बाद हमारे साथ किया गया दुर्व्यवहार था। जज कोल्डस्ट्रीम और जज हैमिल्टन का हम वैसा ही आदर करते हैं जैसा एक मनुष्य की ओर से दूसरे मनुष्य का होना चाहिये। हमारा विरोध उस खास हुक्म के खिलाफ था, जो ट्रिब्यूनल की ओर से दिया गया था। और उसके लिये जिम्मेदार चेयरमैन से माफी मांगने की मांग की गई थी। प्रधान को हटाने से कोई फर्क नहीं पडता क्योंकि अब जज हैमिल्टन जो उस हुक्म में हिस्सेदार थे, जज कोल्डस्ट्रीम की जगह, प्रधानगी कर रहे हैं। हम सिर्फ इतना कह सकते हैं कि यह हमारे जख्मों पर नमक छिडकना है।"[1]

इसके पश्चात् मुकदमें की कार्यवाही एक–तरफा शुरू हो गयी। यह कार्यवाही लगभग तीन महीने तक चली। 26 अगस्त, 1930 को अदालत का कार्य पूरा हो गया, और उसे सिर्फ कागजी कार्यवाही करनी थी। दूसरे दिन अभियुक्तों को सन्देश भेजा गया कि वह अपने बचाव के लिये स्वयं या वकील द्वारा जो कहना चाहते हैं, कह सकते हैं। अभियुक्तों में से कोई भी इसके लिये तैयार नही था। सितम्बर 1930 में भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह ने ट्रिब्यूनल के मार्फत सरकार को एक अर्जी भेजी जिसमें लिखा था कि साण्डर्स हत्या के दिन

---

1. **सरदार भगत सिंह : पत्र और दस्तावेज, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज नं0 59–60**

भगत सिंह लाहौर में नहीं थे। वह कलकत्ते में थे और वहां से उन्होने इसी दिन खद्दर भंडार परिमहल के मैनेजर श्यामलाल को पत्र लिखा था। पत्र पर डाकखाने की मुहर थी। भगत सिंह को जब यह खबर मिली तो वह तिलमिला उठे और उन्होने अपने पिता किशन सिंह को आक्रोश में भरकर एक पत्र लिखा। जिसका वर्णन परिशिष्ट में किया जायेगा।

जिस समय ट्रिब्यूनल का फैसला होने वाला था। भगात सिंह ने अपने भाई श्री कुलबीर सिंह को दो पत्र लिखे–

अनुज कुलबीर सिंह के नाम भगत सिंह का पत्र जेल से :

सेन्ट्रल जेल, लाहौर

16 सितम्बर, 1930

ब्रादर अजीज कुलबीर जी,

सतश्रीअकाल।

आपको मालूम ही होगा कि बमूजिब अहकाम अफसरान बाला मेरी मुलाकातें बंद करा दी गई है। अन्दरीन हालात फिलहाल मुलाकात न हो सकेगी और मेरा खयाल है कि अनकरीब ही फैसला सुना दिया जायेगा। इसलिए किसी दिन जेल में आकर मेरी कुतब, दीगर कागजात, जेल के डिप्टी सुपरिटेंडेंट के दफ्तर में भेज दूंगा, आकर ले जाना। न मालूम मुझे बार–बार यह ख्याल क्यो आ रहा है कि इसी हफ़ता के अन्दर–अन्दर या ज्यादा से ज्यादा इसी माह में फैंसला और चालान हो जायेगा। इन हालात में अब तो किसी दूसरी जेल में मुलाकात हो तो हो, यहां तो उम्मीद नहीं।

वकील को भेज सको तो भेजना। मैं प्रिवी कौंसिल के सिलसिले में

एक जरूरी बात दरयाफ्त करना चाहता हूं। वालिदा साहबा को तसल्ली देना, घबराएं नहीं।

आपका भाई

भगत सिंह

अनुज श्री कुलबीर सिंह के नाम भगत सिंह का दूसरा पत्र जेल से :

सेन्ट्रल जेल, लाहौर

25 सितम्बर, 1930

ब्रादर अजीज कुलबीर जी,

सतश्रीअकाल।

मुझे यह मालूम करके कि एक दिन आप वालिदा को साथ लेकर आये और मुलाकात की इजाजत न मिलने पर मायूस लौट गये, बड़ा अफसोस हुआ। आखिर तुम्हें तो मालूम हो चुका था कि जेल वाले मुलाकात की इजाजत नहीं देते। फिर वालिदा को क्यों साथ लाये? मैं जानता हूं वो इस वक्त सख्त घबराई हुई हैं, मगर इस घबराहट और परेशानी का क्या फायदा? नुकसान जरूर है, क्योंकि जब से मुझे मालूम हुआ कि वो बहुत रो रही हैं मुझे खुद भी बेचैनी हो रही है। घबराने की कोई बात नहीं, और इससे कुछ हासिल भी नहीं। सब हौंसला से हालात का मुकाबला करें। आखिर दुनिया में दूसरे लोग भी तो हजारो मुसीबतों में फंसे हुये हैं, और फिर लगातार एक साल मुलाकातें कर तबियत सेर नहीं हुई, तो दीगर मजीद मुलाकातों से भी तसल्ली न हो सकेगी। मेरा ख्याल है कि फैंसला और चालान के बाद मुलाकातें खुल जायेंगी, लेकिन अगर फर्ज किया जाये कि फिर भी मुलाकात की इजाजत न मिले तो घबराने का क्या फायदा!

तुम्हारा

भगत सिंह[1]

---

1. **सरदार भगत सिंह के पत्र और दस्तावेज, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–59, 60**

5 अक्टूबर 1930 में रात के समय लाहौर जेल के सभी कैदियों ने एक साथ भोजन किया। समारोह की विशेषता यह थी कि इसमें पहली बार कुछ अधिकारी भी शामिल हुये। जेल जज और मलहम, अभियुक्त और अधिकारी का अन्तर मिट गया। सभी भारतीय थे और सभी के हृदय देश गौरव व देश प्रेम से ओतप्रोत थे। वहां हर्ष और आनन्द का वातावरण था।

7 अक्टूबर 1930 को ट्रिब्यूनल का फैंसला एक विशेष सन्देशवाहक द्वारा जेल में अभियुक्तों को सुनाया गया। इस फैंसले के अनुसार निम्नलिखित अभियुक्तों को सजाएं इस प्रकार दी गई थी–

भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरू को फांसी की सजा, किशोरीलाल, महावीर सिंह (जो अंडमान में नौ दिन की भूख हडताल में शहीद हुये थे) विजय कुमार सिन्हा, शिववर्मा, गयाप्रसाद, जयदेव कपूर, कमलनाथ, तिवाडी को काला पानी की सजा, कुन्दललाल को सात बरस तथा प्रेमदत्त को पांच बरस की सजा दी गयी।

सरकार ने बहुत सावधानी रखी कि यह फैंसला जनता तक न पहुंचे किन्तु यह खबर किसी तरह जनता तक पहुंच गयी। सरकार ने धारा 144 लगा दी। जुलूस आदि पर पाबन्दी लगा दी और पुलिस का कठोर प्रबन्ध कर दिया किन्तु फैंसले की खबर फैलते लोग घरों से बाहर निकल आये। अखबारों में विशेष अंक प्रकाशित होने लगे। हड़ताल, जलसे, जुलूस व प्रदर्शनों का सिलसिला शुरू हो गया। 8 अक्टूबर को लाहौर व देश के सभी नगरों व कस्बों में उत्तेजना फैल गयी। भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरू जिन्दाबाद के नारों से आकाश गूंज उठा। सभी के दिलों में भगत सिंह को फांसी की सजा दिये जाने का गहरा दुख था और उनके बलिदान की भावना का सभी ने अभिनन्दन किया।

भगत सिंह को मृत्युदंड

स्पेशल ट्रियूनल द्वारा 8 अक्टूबर 1930 को फैंसला कर दिया गया, जिसमें अभियुक्त, वकील, गवाह कोई भी नहीं था। यह फैंसला एकतरफा तथा अन्याय पर आधारित था। इसलिए बचाव कमेटी अब ट्रिब्यूनेट के फैंसले के खिलाफ प्रिवी कौन्सिल (उस समय लन्दन में स्थित सर्वोच्च भारतीय न्यायालय) में अपील करने की तैयारी कर रही थी। प्रिवी कौंसिल से भी न्याय की कोई उम्मीद नहीं थी। किन्तु अंग्रेजों ने जो भारत में न्याय का ढोंग रच रखा था, इस अपील के माध्यम से वह पोल खुल जायेगी। भगत सिंह इसके खिलाफ थे।

अपनी काल कोठरी में इसी विषय पर सलाह के लिये आये अपने साथी विजय कुमार सिन्हा से उन्होने कहा था– "भाई ऐसा न हो कि फासी रूक जाये। हम मरकर ही क्रान्ति की सेवा कर सकते हैं।"

सरदार भगत सिंह ने फांसी की सजा सुनाये जाने के बद वह पत्र अपने मित्र श्री बटुकेश्वर दत्त जी को लिखा था–

सेण्ट्रल जेल, लाहौर

अक्टूबर, 1930

प्रिय भाई,

मुझे सजा सुना दी गयी है और फांसी का हुक्म हुआ है। इन कोठरियों में मेरे अलावा फांसी का इन्तजार करने वाले बहुत से मुजरिम हैं। यह लोग यही प्रार्थनाएं कर रहे हैं कि किसी तरह वे फासी से बच जायें। लेकिन उनमें से शायद में अकेला ऐसा आदमी हू जो बडी बेसब्री से उस दिन का इंतजार कर रहा हू जब मुझे अपने आदर्श के लिये फांसी के तख्ते पर चढ़ने का सौभाग्य मिलेगा। मैं खुशी से फांसी के तख्ते पर चढ़कर दुनिया को दिखा दूंगा

कि क्रान्तिकारी अपने आदर्शों के लिए कितनी वीरता से कुर्बानी दे सकते हैं।

मुझे फांसी की सजा मिली है, मगर तुम्हें उम्र कैद। तुम जिन्दा रहोगे और जिन्दा रहकर तुम्हें दुनिया को यह दिखा देना है कि क्रान्तिकारी अपने आदर्शों के लिए सिर्फ मर ही नहीं सकते, बल्कि जिन्दा रहकर हर तरह की यातनाओं का मुकाबला भी कर सकते हैं। मौत सांसारिक मुसीबतों से छुटकारा पाने का साधन नहीं बननी चाहिए, बल्कि जो क्रान्तिकारी संयोगवश फांसी के फन्दे से बच गये हैं उन्हें जिन्दा रहकर दुनिया को यह दिखा देना चाहिए कि वे न सिर्फ अपने आदर्शों के लिए फांसी पर चढ़ सकते हैं, बल्कि जेलों की अंधेरी कोठरियों में घुट–घुटकर हद दर्जे के अत्याचारो को भी सहन कर सकते हैं।

तुम्हारा

भगत सिंह[1]

फांसी की सजा सुनने के पश्चात भी भगत सिंह शान्त व स्थित रहे। और अपने अध्ययन का कार्य पूर्ववत ही जारी रखा। उनके अध्ययन का क्षेत्र कितना विस्तृत था। और वे किस प्रकार की पुस्तकें पढते थे, इसका ज्ञान उनके एक पत्र जो उन्होने अपने बचपन के मित्र जयदेव गुप्त को लिखा था, उससे पता चलता है–

सेण्ट्रल जेल, लाहौर

24.07.30

मेरे प्यारे जयदेव,

कृपया मेरे नाम द्वारकादास लाइब्रेरी से लेकर निम्नलिखित पुस्तमें शनिवार को कुलबीर के साथ भेज देना–

मिलिटेरिज्म : कार्ल लिवकेन्ट

ह्वाई मेन फाईट : बी0रसेल

---

1. भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज, जगमोहन सिंह चमनलाल, पेज–334

सोवियट ऐट वर्क
कुलैप्स ऑव सेकण्ड इण्टरनेशनल
म्यूचुअल एड : प्रिन्स क्रोपाटकिन
फील्डस, फैक्टरीज ऐण्ड वर्कशाप्स
सिविल वार इन फ्रान्स : मार्क्स
लैण्ड रिवॉल्यूशन इन रशिया
स्पाई : अप्टन सिंक्लेयर

कृपया कर एक और पुस्तक पंजाब पब्लिक लाइब्रेरी से लेकर भेजने का भी कष्ट करें– 'हिस्टारिकल मैटीरलिज्म : बुखारिन'– लाइब्रेरियन से यह भी पूंछे कि बोर्स्टल जेल में कुछ पुस्तकें भेजी हैं या नहीं? उनके पास पुस्तकों का भयानक अकाल है। उन्होने सुखदेव के भाई जयदेव के द्वारा पुस्तकों की एक लिस्ट भेजी थी, लेकिन अभी तक कोई पुस्तक नहीं मिली। अगर उनके पास लिस्ट न हो, तो कृपा कर लाला फिरोजचन्द से कहो कि वे अपनी पसन्द की कुछ दिलचस्प पुस्तकें भेज दें। इस रविवार को जब मैं वहां जाऊं, तो उनके पास किताबें पहुंच चुकी होनी चाहिए। कृपा कर यह ध्यान रखाना कि यह काम हर हालत में हो जायें।

इसके साथ ही डार्लिंग्स की लिखित 'पीजेण्ट्स इन प्रोस्पेरिटि एण्ड डैब्ट' और इसी तरह की 2–3 किताबे 'डॉक्टर आलम' के लिए भी। तुम इस कष्ट के लिये क्षमा करोगें। मैं भविष्य में और कष्ट नहीं दूंगा, यह मेरा आश्वासन है। कृपा कर मेरे सब मित्रों को मेरी याद दिलाना। लज्जावती जी को मेरा आदर भाव दें। मुझे आशा है कि अगर दत्त की बहन आयी, तो वे मुझसे मिलने के लिये आने का कष्ट करेगीं।

आदर भाव के साथ– आपका

भगत सिंह[1]

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–234, 235

भगत सिंह ने काल कोठरी में अपना समय अध्ययन में बिताया और फिर जाने किस मस्ती में शहीद रामप्रसाद 'विस्मिल' की यह पंक्तियां गाने लगते थे–

''मेरा रंग दे बसन्ती चोला।''

उन्होने अध्ययन के इस दौर में पुस्तकें भी लिखी थी– 1. आत्मकथा, 2. दि डोर टू डेथ (मौत के दरवाजे पर), 3. समाजवाद का दर्शन, 4. स्वाधीनता की लड़ाई में पंजाब का पहला उभार।

10 फरवरी 1931 में प्रिवी कौसिंल ने अपील खारिज कर दी। यह समाचार फैलते ही, पूरे देश में 'फांसी की सजा रद्द करो–, 'भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरू जिन्दाबाद, जिन्दाबाद' के नारे गूंज उठे। वायसराय और ब्रिटिश सरकार के लाखों लोगों ने हस्ताक्षर करके विरोध पत्र भेजा। भारत मंत्री और वायसराय को लाखों तार भेजे गये। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के कुछ मेम्बरो ने भी रिहाई की मांग की। उन्होने वायसराय के नाम 6 मार्च 1931 को निम्नलिखित तार भेजा–

''हाउस आफ कामन्स का इण्डिपेडेंट लेवर ग्रुप आपसे सानुरोध प्रार्थनाकरता है कि लाहौर षड़यंत्र के कैदियों को रिहा कर दिया जाये।'' इस पर मैक्स्टन, किडले, ब्रोकवे, जोवेट और अन्य सदस्यों के हस्ताक्षर थे।

मई 1930 में 'नौजवान भारत सभा' अवैध घोषित कर दी गई किन्तु फरवरी 1931 में वह एक दूसरे नाम से पुर्नगठित हुई। और इसने आन्दोलन भी किये। जिसकी जानकारी सरकार की साप्ताहिक रिपोर्ट के माध्यम से मिलती है। उसके अनुसार नौजवानों ने कई पोस्टर निकाले और इस राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने के लिये आहवान किया जिसका शीर्षक था– 'पंजाब की इन्तकामी

पार्टी बदला लेगी। यह पर्चा लाहौर में छपा तथा अमृतसर, जालन्धर, लुधियाना आदि शहरों में बांटा गया, जो इस प्रकार है–

''भारत के निडर नौजवानों, क्या तुम्हें हर रोज ढाए जा रहे जुल्मों को देखकर शर्म नहीं आती? क्या तुम यह देखकर भी हरकत में नहीं आओगे कि हिन्दुस्तान की आजादी के परवानों को फांसी पर लटकाया जा रहा है? क्या तुम में देशभक्ति की भावना बिल्कुल नहीं? क्या भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू को फांसी के तख्ते पर चढ़ते देखकर तुम्हारी गैरत जोश में नहीं आती? अगर तुम में गैरत का जरा भी एहसास है तो तुम्हारा फर्ज है कि अंग्रेज सरकार को उसकी धांधली का मजा चखाओ, एक मामूली पुलिस अफसर सांडर्स के कत्ल से तमाम अंग्रेज कौम यों महसूस कर रही है जैसे उसका वजूद ही खतरे में पड़ गया हो। लेकिन क्या तुम्हारे लिये चुल्लू भर पानी में डूब मरने की बात नहीं कि तुम्हारे तीन भाइयों को फांसी दी जा रही है और तुम बदला लेने के लये मैदान में नहीं आ रहे?

''तुम्हारा फर्ज था कि भगत सिंह और उनके साथियों को फांसी के हुक्म की खबर सुनते ही देश के कौने–कौने में इन्कलाब की आग भड़का देते और सिर्फ एक गवर्नर नहीं बीसियों गवर्नरों को गोली का निशाना बनाते।''[1]

3 मार्च 1931 में भगत सिंह अपने परिवार वालों से अन्तिम बार मिले। जिसमें उनके दादा, दादी, माता–पिता, चाचियां व छोटे भाई भी थे। इस मुलाकात में उन्होने अपनी मां से कहा था कि बेबे जी, अब दादा जी ज्यादा दिन नहीं जियेगें। आप बंगा जाकर इनके पास ही रहना। उन्होने सबसे अलग अलग बात करके धीरज व सान्त्वना दी और अन्त में अपनी मां से कहा कि ''लाश लेने आप मत आना। कुलबीर को भेज देना। कहीं आप रो पड़ीं तो लोग कहेगें कि

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 173

भगत सिंह की मां रो रही हैं।" भगत सिंह ने उसी दिन अपने छोटे भाई कुलतार सिंह को पत्र लिखा–

सेण्ट्रल जेल, लाहौर
3 मार्च, 1931

अजीज कुलतार,

आज तुम्हारी आंखों में आंसू देखकर बहुत दुःख हुआ। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था, तुम्हारे आंसू मुझसे सहन नहीं होते। बुर्खदरार हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना और सेहत का ख्याल रखना। हौसला रखना और क्या कहूं–

उसे फिक्र है हरदम नया तर्जे जफा क्या है,
हमें यह शौक देखें सितम की इन्तहा क्या है।
दहर से क्यों खफा रहें, चर्ख का क्यों गिला करें,
सारा जहां अदू सही जाओ मुकाबला करें ।।
कोई दम का मेहमां हूं, ए अहले महफिल
चरागे सहर हूं, बुझा चाहता हूं।
मेरी हवा में रहेगी ख्याल की बिजली
यह मुश्ते खाक है फानी रहे, न रहे ।।
अच्छा रूखसत। खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करते हैं
हौंसला से रहना। नमस्ते।

तुम्हारा भाई–भगत सिंह

5 मार्च 1931 में गांधी–इरविन समझौता हुआ। जिसमें 16 धाराएं थी। लेकिन उसमें एक भी धारा भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरू को फांसी को रोकने के लिये नहीं थी। इससे जनता में घोर निराशा व्याप्त हो गयी। 7 मार्च को

---

1. युगदृष्टा भगत सिंह एवं उनके मृत्युंजय पुरखे, वीरेन्द्र सिन्धु, पेज–249

दिल्ली में एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमें गांधी जी को भाषण देना था। उसमें उनके खिलाफ एक पर्चा भी बांटा गया।

19 मार्च 1931 मुकदमें के प्रमुख वकील प्राणनाथ मेहता एक ड्राफ्ट लेकर भगत सिंह सुखदेव और राजगुरू के पास पहुंचे तो भगत सिंह ने हंसकर कहा कि ''यार रहने दो अपना ड्राफ्ट, हम लोगों ने तो दया का प्रार्थना पत्र भेज दिया है। इसमें भगत सिंह ने लिखाथा कि अदालत ने हमें फांसी की सजा इसलिये दी है क्योंकि हमने जार्ज पंचम के विरूद्ध युद्ध छेड़ा। युद्ध बन्दी होने के नाते उन्होने गोली से उड़ाये जाने की मांग की थी।

23 मार्च, 1931 के दिन तक भगत सिंह ने 23 वर्ष, 4 महीने और 26 दिन का जीवन बिताया था। प्रतिदिन की तरह इस दिन भी वे पुस्तकें पढ़ते रहे। इसी दिन शाम को सात बजे इन तीनों को फांसी देने का हुक्म जेल में दिया गया। जिस समय जेल के अधिकारी भगत सिंह को फांसी लगाने के लिये लेने आये, उस समय भगत सिंह लेनिन का जीवन चरित्र पढ़ रहे थे। उन्होने अधिकारी से कहा ''ठहरो, एक क्रान्तिकारी दूसरे क्रान्तिकारी से मिल रहा है'' और उसके कुछ अंश पढ़कर पुस्तक छत की ओर उछाल कर बोले– 'चलो'।

जिस समय भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरू फांसी के लिये जा रहे थे। उन्होने कहा कि हमारे हाथों में हथकड़ियां न लगायी जायें, उनकी यह बात मान ली गयी। उस दिन अन्य कैदियों को 5 बजे गिनती करके कोठरियों में बंद कर दिया गया। जब फांसी के लिये भगत सिंह को ले जाया जा रहा था तो बांयी तरफ सुखदेव तथा दांयी तरफ राजगुरू थे। तीनों ने 'इन्कलाब जिन्दाबाद' और 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' के नारे लगाये तथा गाना प्रारम्भ किया–

''दिल से निकलेगी न मरकर वतन की उलफत ।
मेरी मिट्टी से भी खुशबू–ए–वतन आयेगी।।

फांसी लगने से पहले उन्होने मुस्कराहट के साथ कहा– ''मजिस्ट्रेट महोदय, आप भाग्यशाली हैं कि आज आप अपनी आंखों से यह देखने का अवसर पा रहे हैं कि भारत के क्रान्तिकारी किस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक अपने सर्वोच्च आदर्श के लिये मृत्यु का आलिंगन कर सकते हैं।''

इसके पश्चात उन तीनों ने फांसी के फन्दे को चूमकर अपने गले में डाल लिये। इस प्रकार 23 मार्च 1931 को शाम 7 बजे तीनों को फांसी दी गई। इन तीनों के शवों को रात में ही चुपके से सतलुज के किनारे फिरोजपुर के नजदीक हुसैनीवाला में जला दिये गये ताकि जनता को इसकी सूचना न मिल सके।

अब वहां पर इन तीनों का स्मारक बन गया है। जहां हजारों श्रद्धालु जाकर अपनी श्रद्धा के फूल इन शहीदों को समर्पित करते हैं।

****

भगत सिंह एक चिन्तक के रूप में

राजनैतिक क्रान्तिकारी विचार

''अंग्रेज की जड़ें हिल चुकी हैं। वे पन्द्रह साल में चले जायेगें, समझौता हो जायेगा पर उससे जनता को कोई लाभ नहीं होगा। काफी साल अफरा तफरी में बीतेगें। उसके बाद लोगों को मेरी याद आयेगी।

– फांसी से कुछ दिन पहले, भगत सिंह के वचन

क्रान्तिकारी लक्ष्य प्राप्त करने में दर्शन या विचारधारा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इस बात को जनता तक पहुंचाने के लिये भगत सिंह ने अपनी अहम् भूमिका निभायी है। उन्होने गहन अध्ययन व गंभीर चिन्तन किया। जब भगत सिंह नेशनल कालेज लाहौर में विद्यार्थी थे। वे जन–जागरण के लिये ड्रामा–क्लब में भाग लेते थे। क्रान्तिकारी अध्यापकों और विद्यार्थियों से उनका सम्बन्ध हो गया था। भारत को आजादी कैसे मिले, इस बारे में लम्बा–चौंड़ा अध्ययन और बहस में वे भाग लेते थे।

1924 में भगत सिंह को पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन में पंजाब की भाषा तथा लिपिक की समस्या पर विचार व्यक्त करने के लिये आमंत्रित किया जिसमें पंजाब की भाषा तथा लिपि की समस्या पर उन्होने एक लेख लिखा जिसके अनुसार–

''जिस देश के साहित्य का प्रवाह जिस ओर बहा, ठीक उसी ओर वह देश भी अग्रसर होता रहा। किसी भी जाति के उत्थान के लिये ऊंचे साहित्य की आवश्यकता हुआ करती है। ज्यों–ज्यों देश का साहित्य ऊंचा होता जाता है, त्यों–त्यों देश भी उन्नति करता जाता है। देशभक्त, चाहे वे निरे समाज–सुधारक हों अथवा राजनैतिक नेता, सबसे अधिक ध्यान देश के साहित्य की ओर दिया

करते हैं। यदि वे सामयिक समस्याओं तथा परिस्थितियों के अनुसार नवीन साहित्य की सृष्टि न करे तो उनके सब प्रयत्न निष्फल हो जाये और उनके कार्य स्थायी न हो पायें।

भगत सिंह के विचार से किसी भी देश अथवा समाज को पहचानने के लिये उसके साहित्य से परिचित होना आवश्यक होता है। उनमें पैत्रिक संस्कार तो थे ही, साथ ही गम्भीर अध्ययन और निरन्तर चिन्तन से उनके सुलझे हुये विचार थे।

उस समय की क्रान्तिकारी गतिविधियों को अपनाने वाले नौजवानों ने पिछली पीढ़ी के क्रान्तिकारी नेताओं के दृष्टिकोंण को छोड़कर, उनके धर्म और परम्परागत सामाजिक दृष्टिकोंण से सम्बन्ध तोड़कर, देश की लड़ाई में आधुनिक विचारों को अपनाया। भगत सिंह व उनके साथियों के विचारों में परिपक्वता आयी और वे जन चेतना के अंग, जनता की आकांक्षाओं और प्रतिष्ठा के तथा गुलामी के खात्मे के लिये चलने वाले संघर्ष के प्रतीक बन गये। किसी भी क्रान्तिकारी ने जागरूक जनता के साथ इतना गहरा संपर्क स्थापित नहीं किया, जितना कि भगत सिंह ने किया। जिसे विशेषकर भगत सिंह के दस्तावेजों से ही समझा जा सकता है।

1924 में कलकत्ता से प्रकाशित 'मतवाला' में भगतसिंह ने अपनी छद्म नाम बलवन्त सिं से 'विश्व प्रेम' पर लेख प्रकाशित करवाया। जिसके अनुसार–

"विश्वबन्धु।ा! इसका अर्थ मैं तो समस्त संसार में समानता के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझता।

कैसा उच्च है यह विचार। सभी अपने हें। कोई भी पराया न हो।

कैसा सुखमय होगा वह समय, जब संसार में पराया पन सर्वथा नष्ट हो जायेगा, जिस दिन यह सिद्धान्त समस्त संसार में व्यावहारिक रूप में पारित होगा, उस दिन संसार को उन्नति के शिविर पर कह सकेगें।

भगत सिंह द्वारा रचित इस लेख के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि उनमें राष्ट्र प्रेम ही नहीं अपितु विश्व प्रेम की भावना का भी विकास था। इसी लेख के अन्त में उन्होने विश्व प्रेम से जुड़कर देश की स्वतंत्रता के लिये भी विचार व्यक्त किये हैं–

''यदि वास्तव में चाहते है कि संसार व्यापी सुख, शान्ति और विश्व प्रेम का प्रचार करो तो पहिले अपमानों का प्रतिकार करना सीखो। मां के बन्धन काटने के लिये कट मरो। बन्दी मां को स्वतंत्र करने के लिये आजन्म काले पानी में ठोकरे खाने को तैयार हो जाओ। सिसकती मां की जीवित रखने के लिये मरने को तत्पर हो जाओ। तब हमारा देश स्वतंत्र होगा। हम बलवान होगें। हम छाती ठोककर विश्व प्रेम का प्रचार कर सकेगें। संसार को शान्ति–पथ पर चलने को बाध्य कर सकेगें।''

1925 में भगत सिंह ने 'मतवाला' में ही 'युवक' शीर्षक नाम से लेख लिखा। जिसमें उन्होने युवकों को सन्देश भी दिया और राष्ट्र के लिये उनका क्या योगदान है। इस विषय में अपने विचार व्यक्त किये। जिसके कुछ अंश इस प्रकार हैं–

''युवावस्था में मनुष्य के लिये केवल दो ही मार्ग हैं– वह चढ़ सकता है उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर वह गिर सकता है, अद्यःपात के अंधेरे खन्दक में। चाहे तो विलासी बन सकता है युवक। वह देवता बन सकता है तो पिशाच भी बन सकता है। वह संसार को त्रस्त कर सकता है, वही संसार को

अभयदान दे सकता है। संसार में युवक का ही साम्राज्य है। युवक के कीर्तिमान से संसार का इतिहास भरा पड़ा है। युवह ही रणचण्डी के ललाट की रेखा है। युवक स्वदेश की यश–दुन्दुमि का तुमुल निनाद है। युवक ही स्वदेश की विजय–वैजयन्ती क सुदृढ़ दण्ड है।''

''अगर रक्त की भेंट चाहिये, ते सिवा युवक के कौन देगा? अगर तुम बलिदान चाहते हो, तो तुम्हें युवक की तरफ देखना पड़ेगा। प्रत्येक जाति के भाग्य विधाता युवक ही तो होते हैं।''

भगत सिंह की विचारधारा राष्ट्र को उज्जवल बनाने वाली क्रान्तिकारी विचारधारा थी और अपनी इसी विचारधारा की खातिर 23 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होने अपने राष्ट्र के लिये अपना बलिदान दे दिया।

8 अप्रैल 1929 में भगत सिंह और श्री बटुकेश्वर दत्त जी ने असेम्बली में बम फेंका था, और 'इन्कलाब जिन्दाबाद', साम्राज्यबाद मुर्दाबाद' और 'दुनिया भर के मजदूर एक हो' जाओ। यह नारे लगाते हुये एक पर्चा फेंका था । उस पर्चे का पहला वाक्या था– ''बहरो को सुनाने के लिये धमाके की जरूरत होती है।'' और इस पर्चे में देश की स्थिति को दर्शाया था–

''पिछले दस बरसों में ब्रिटिश सरकार द्वारा शासन सुधार के नाम पर इस देश का अपमान करने की कहानी दोहराने की आवश्यकता नहीं है। न ही हिन्दुस्तानी पार्लियामेन्ट कही जाने वाली इस सभा द्वारा हिन्दुस्तानी राष्ट्र के सर पर पत्थर फेंक–फेंक कर हमें अपमानित करने के उदाहरणों की याद दिलाने की आवश्यकता है। सब सुपरिचित और स्पष्ट है। आज फिर, जबकि जनता साइमन कमीशन से कुछ सुधारों के टुकड़ों की आशा में आंखे फैलाए हुए हैं और उन टुकड़ों के लोभ में आपस में झगड़ रही है। विदेशी सरकार सार्वजनिक सुरक्षा

(पब्लिक सेफ्टी) और औद्योगिक विवाद (ट्रेड डिस्प्यूट) कानूनों के रूप में अपने दमन को और भी सख्त कर रही है। इनके साथ ही अगले अधिवेशन में अखबारों द्वारा राजद्रोह के कानून (प्रेस सेडीशन) जनता पर कस दिए जाने की धमकी दी जा रही है। सार्वजनिक काम करने वाले मजदूर नेतओं की अंधाधुन्ध गिरफ्तारियां स्पष्ट कर देती हैं कि सरकार का रवैया क्या है।''

विदेशी सरकार अपने दमन के कानूनी शक्ल दे रही थी लेकिन जहां दमन है वहां प्रतिशोध भी है— क्रान्ति उसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। अतएव पर्चे के तीसरे पैरे में यह प्रतिक्रिया यों व्यक्त हुई है :

''राष्ट्रीय दमन और अपमान की इस उत्तेजनापूर्ण परिस्थिति में अपने उत्तरदायित्व की गम्भीरता का अनुभव करके हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ ने अपनी सेना को यह कदम उठाने की आज्ञा दी है। इस कार्य का प्रयोजन यह है कि कानून के नाम पर किए जाने वाले इस प्रहसन को समाप्त कर दिया जाए। विदेशी सरकार और नौकरशाही जो चाहे कहे परन्तु उसकी वैधानिकता की नकाब फाड़ देना आवश्यक है।''

अंतिम पैरे में इस प्रक्रिया का, क्रांति का, जिसने इस घटना को जन्म दिया, ध्येय इन शब्दों में स्पष्ट किया गया है :

''हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्जवल भविष्य में विश्वास रखते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शांति और स्वतंत्रता का अवसर मिल सके। हम मानव रक्त बहाने के लिये अपनी विवशता से दुखी हैं, परन्तु क्रांति द्वारा सबके समान स्वतंत्रता देने और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए क्रान्ति के अवसर पर कुछ न कुछ रक्तपात अनिवार्य है।''[1]

---

1. भगत सिंह, एक ज्वलंत इतिहास : हंसराज रहबर, पृष्ठ सं0 185, 186

यह एक ऐतिहासिक घटना थी, जिसके माध्यम से राजनैतिक उद्देश्य को स्पष्ट किया गया था। यह बम किसी मनुष्य की हत्या करने के उद्देश्य से नहीं फेंका गया था। बल्कि यह संविधान पर व काले कानूनों पर फेंके गये थे इस घटना का यही वास्तविक महत्व है।

भगत सिंह के क्रान्तिकारी चिन्तन में यह बात शामिल थी, ''सेवा करना कष्ट सहना, कुर्बानी देना। अपने इन्हीं सिद्धान्तों पर चलते हुये अपने उद्देश्यों की पूर्ति की ओर आगे बढ़ गये। बम फेंकने के पश्चात वे वहां से आगे नहीं, बल्कि स्वयं को गिरफ्तार करवाया ताकि अंग्रेजी हुकूमत द्वारा मुकदमा चले। जिसमें माध्यम से वह जो ब्यान दें, वो जनता तक पहुंचे। जिससे जनता में जागृति पैदा हो। जनता अपने अधिकारों को समझें। और उसको प्राप्त करने के लिये हर संभव प्रयास करें।

भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने 6 जून 1929 को दिल्ली के सेंशन जज मि0 लियोनाई मिडिल्टन की अदालत में 'हमने बम क्यों फेकें' पर ब्यान दिया था। उसमें अपने ध्येय, इस घटना के महत्व और रजनीति में आये गुणात्मक परिवर्तन की व्याख्या इन शब्दों में की–

''हमने उन लोगों की ओर से प्रतिरोध प्रकट करने के लिये असेम्बली के फर्श पर बम फेकें, जिनके पास अपनी ह्दय विदारक व्यथा की अभिव्यक्ति का कोई दूसरा साधन नहीं रह गया है। हमारा एकमात्र ध्येय यह था कि बहरों को अपनी आवाज सुनाएं और समय की चेतावनी उन लोगो तक पहुंचाएं जो उसकी अपेक्षा कर रहे हैं। दूसरे लोग भी हमारी ही तरह सोच रहे हैं और यद्यपि भारतीय जाति ऊपर से एक शांत समुद्र की तरह दिखाइ दे रही है, तथापि भीतर ही भीतर एक तूफान उफन रहा है। हमने उन लोगों को खतरे की

चेतावनी दी है, जो सामने आने वाली गंभीर परिस्थितियों की चिंता किये बिना सरपट दौड़े जा रहे हैं। हमने उस काल्पनिक अहिंसा की समाप्ति की घोषणा की है, जिसकी अनुपयोगिता के बारे में नई पीढ़ी के मन में किसी प्रकार का संदेह नहीं बचा है। हमने ईमानदारी पूर्ण सद्भावना तथा मानव जाति के प्रति अपने प्रेम के कारण उन भयंकर खतरों के विरूद्ध चेतावनी देने के लिये यह मार्ग चुना है, जिनका पूर्वाभास हमें भी देश के करोड़ों लोगों की भांति स्पष्ट रूप से हुआ।

''हमने पिछले पैरे में 'काल्पनिक अहिंसा' शब्द का प्रयोग किया है। हम इसकी व्याख्या करना चाहते हैं। हमारी दृष्टि में बलप्रयोग उस समय अन्यायपूर्ण होता है, जब वह आक्रामक नीति से किया जाए और वह हमारी दृष्टि में हिंसा है। परन्तु जब शक्ति का प्रयोग किसी विहित (समाज सम्मत) उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाए तो वह नैतिक दृष्टि से न्यायसंगत हो जाता है। बल प्रयोग का पूर्ण बहिष्कार काल्पनिक भ्रान्ति है। इस देश में एक नया आंदोलन उठ खड़ा हुआ है, जिसकी पूर्व सूचना हम दे चुके हैं। यह आंदोलन गुरू गोविन्द सिंह और शिवाजी, कमल पाशा और रजाखां, वाशिंगटन और गैरी बाल्डी तथा लफायते और लेनिन के कार्यों से प्रेरणा ग्रहण करता है।''

यह आवाज भगत सिंह व श्री बटुकेश्वर दत्त जी की ही नहीं वरन् भारत वर्ष के उन करोड़ों दरिद्र देश वासियों की आवाज थी, जिन्हें अनेक मौलिक अधिकारों तथा आर्थिक हितों से वंचित कर दिया था। यह आवाज उत्पीड़त, शोषित एवं अपमानित राष्ट्र की थी। भगत सिंह ने कहा था कि उन्होने यह कार्य व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा विद्वेष की भावना से नहीं किया वरन् उनका उद्देश्य केवल उस शासन–व्यवस्था के विरूद्ध प्रतिवाद प्रकट करना है, जिसके हर एक कार्य में उसकी अयोग्यता ही नही वरन् अपकार करने की असीम क्षमता भी प्रगट होती है।

इस विषय पर उन्होने जितना भी विचार किया, उसमें उनका दृढ़ विश्वास होता गया कि वह केवल संसार के सामने भारत की लज्जाजनक तथा असहाय अवस्था का ढिंढोरा पीटने के लिये कायम है। वह एक गैर–जिम्मेदार तथा निरंकुश शासन का प्रतीक है।

जनता के प्रतिनिधियों ने कई बार राष्ट्रीय मांगों को सरकार के सामने रखा। किन्तु उनकी मांगों की सर्वथा अवहेलना की गयी। भगत सिंह का यह कार्य मानवता के प्रति हार्दिक सदभाव, अमिट प्रेम तथा उसे व्यर्थ के रक्तपात से बचाने के लिये चेतावनी देने के के लिये किया गया। अपने ब्यान में भगत सिंह ने 'क्रान्ति' शब्द की व्याख्या इन शब्दों में की थी–

''क्रान्ति से हमारा अभिप्राय समाज की वर्तमान प्रणाली और वर्तमान संगठन को पूरी तरह उखाड़ फेंकना है। क्रान्ति के लिये खूनी लड़ाइयां अनिवार्य नहीं है और न ही उसमें व्यक्तिगत हिंसा के लिये केई स्थान है। वह बम और पिस्तौल का सम्प्रदाय नहीं है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है– अन्याय पर आधारित मौजूदा समाज व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।''

भगत सिंह ने कारावास के दौरान जेल में भरतीय कैदियों के साथ दुर्व्यवहार होने के विरोध में भूख–हड़ताल की। जिसका उद्देश्य सरकार द्वारा राजनैतिक कैदियों के साथ अच्छे क्लास के कैदियों जैसा सुलूक किया जाना था। उन्होने होम मेम्बर के पत्र द्वारा जो मांगे प्रस्तुत की थी उसमें स्पष्ट किया था।

''राजनैतिक कैदियों से हमारा मतलब उन लोगों से है जिन्हें शासन विरोधी कार्यवाइयों के कारण सजा हुई।''

19 अक्टूबर 1929 में भगत सिंह ने अपनी और बटुकेश्वर दत्त जी की तरफ से पंजाब के छात्र सम्मेलन के लिये विद्यार्थियों के नाम यह संदेश काल

कोठरी से भेजा और उनसे आग्रह किया कि वे आने वाले 1930–31 के आन्दोलन में जी खोलकर हिस्सा लें और जनता के बीच क्रान्ति का पैगााम पहुंचायें।

इस समय नौजवानों से हम यह नहीं कह सकते कि वो बम और पिस्तौल उठायें। आज विद्यार्थियों के सामने इससे भी महत्वपूर्ण काम है। आने वाले लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस देश की आजादी के लिये जबरदस्त लड़ाई की घोषणा करने वाली है। राष्ट्रीय इतिहास के इन कठिन क्षणों में नौजवानों के कन्ध ों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ेगी। यह सच है कि स्वतंत्रता के इस युद्ध में अग्रिम मोर्चों पर विद्यार्थियों ने मौत से टक्कर ली है। क्या परीक्षा के इस समय वे उसी प्रकार की दृढ़ता और आत्म विश्वस का परिचय देने से हिचकिचायेगें। नौजवानों को क्रान्ति का यह संदेश देश के कोने–कोने में पहुंचाना है, फैक्टरी–कारखानों के क्षेत्रों में, गन्दी वस्तियों और गांवों की जर्जर झोपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी है। जिससे आजादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण सम्भव हो जायेगा। पंजाब वैसे ही राजनीतिक तौर पर पिछड़ा हुआ माना जाता है। इसकी भी जिम्मेवारी युवा वर्ग पर ही है। आज वे देश के प्रति अपनी असीम श्रद्धा और शहीद यतीन्द्र नाथ दास के महान बलिदान से प्रेरणा लेकर यह सिद्ध कर दें कि स्वतंत्रता के इस संघर्ष में वे दृढ़ता से टक्कर ले सकते हैं।[1]

भगत सिंह ने 'इंकलाब जिन्दाबाद' का नारा देश की राजनीति में बुलन्द किया 'मार्डन रिव्यू' के सम्पादक श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय ने अपनी एक सम्पादकीय टिप्पणी में भगत सिंह के नारे 'इंकलाब–जिन्दाबाद' को खून–खराबे और अराजकता का प्रतीक बताया। भगत सिंह ने उसका जबाब लिखकर मार्डन रिव्यू के पास भेजने के लिये मजिस्ट्रेट को दे दिया जिसके अनुसार–

---

1. शहीद भगत सिंह की चुनी हुई कृतियां, शिव वर्मा, पृ0– 118

इस देश में इस समय इस नारे को सब लोगों तक पहुचानेका कार्य हमारे हिस्से में आया है। इस नारे की रचना हमने नहीं की है। यही नारा रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन में प्रयोग किया गया है। प्रसिद्ध समाजवादी लेखक अप्टन सिंक्लेयर ने अपने उपन्यासों 'बोस्टन' और 'आईल' में यही नारा कुछ अराजकतावादी क्रान्तिकारी पात्रों के मुख से प्रयोग कराया है। इसका अर्थ क्या है? इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सशस्त्र संघर्ष सदैव जारी रहे और कोई भी व्यवस्था अल्प समय के लिये भी स्थायी न रहे, दूसरे शब्दों में देश और समाज में अराजकता फैली रहे।

दीर्घकाल से प्रयोग में आने के कारण इस नारे को एक ऐसी विशेष भावना प्राप्त हो चुकी है जो संभव है कि भाषा के नियमों एवं कोष के आधार पर इसके शब्दों से उचित तर्कसम्मत रूप में सिद्ध न हो पाये, परन्तु इसके साथ ही इस नारे से उन विचारों को पृथक नहीं किया जा सकता, जो इसके सथ जुड़े हुये हैं। ऐसे समस्त नारे एक ऐसे स्वीकृत अर्थ के द्योतक हैं, जो एक सीमा तक उनमें उत्पन्न हो गए हैं तथा एक सीमा तक उनमें निहित हैं।

उदाहरण के लिये हम यतीन्द्रनाथ जिन्दाबाद का नारा लगाते हैं। इससे हमारा तात्पर्य यह होता है कि उनके जीवन के महान् आदर्शों तथा उस अथक उत्साह को सदा–सदा के लिये बनायें रखें, जिसने इस महानतम बलिदानी को उस आदर्श के लिये अकथनीय कष्ट झेलने एवं असीम बलिदान करने की प्रेरणा दी। यह नारा लगाने से हमारी यह लालसा प्रकट होती है कि हम भी अपने आदर्शों के लिये ऐसे ही अचूक उत्साह को अपनायें। यही वह भावना है, जिसकी हम प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार हमें 'इन्कलाब' शब्द का आर्थ भी कोरे शाब्दिक रूप में नहीं लगाना चाहिये। इस शब्द का उचित एवं अनुचित प्रयोग करने वाले लोगों के हितों के आधार पर इसके साथ विभिन्न अर्थ एवं विभिनन विशेषतायें

जोड़ी जाती हैं। क्रान्तिकारियों की दृष्टि में यह एक पवित्र वाक्य है। हमने इस बात को ट्रिब्यूनल के सम्मुख अपने वक्तव्य में स्पष्ट करने का प्रयास किया था।

1931 में भगत सिंह ने फांसी की काल कोठरी में भेजे गये 'कौम के नाम सन्देश' में इस नारे की व्याख्या इन शब्दों में की थी– ''जब आप नारे लगाते हैं, तो मैं समझता हूं कि आप लोग वस्तुतः जो पुकारते हैं, वहीं करना भी चाहते हैं।''

भगत सिंह ने हाईकोर्ट के ब्यान में भी कहा था– ''इंकलाब जिन्दाबाद से हमारा वो उद्देश्य नहीं था जो आम तौर पर गलत अर्थ में समझा जाता है। पिस्तौल और बम इन्कलाब नहीं लाते, बल्कि इंकलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है।

लाल रामसरन दास ने अंग्रेजी में एक काव्य पुस्तिका लिखी। कारावास के दौरान उन्होने भगत सिंह के पास उसकी भूमिका लिखने के लिये भेजा। जिसकी भूमिका में उन्होने लिखा है–

''राजनैतिक क्षेत्र में ''ड्रीमलैंड'' का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वर्तमान परिस्थिति में वह आंदोलन की एक महत्वपूर्ण रिक्तता को भरती है। वास्तव में हमारे देश के सभी राजनैतिक आंदोलनों में, जिन्होने हमारे आधुनिक इतिहास में कोई न कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, उस आदर्श की कमी रही है। एक गदर पार्टी को छोड़कर, जिसने अमरीकी प्रणाली की सरकार से प्रेरित होकर स्पष्ट शब्दों में कहा था कि वह मौजूदा सरकार की जगह गणतांत्रिक ढंग की सरकार कायम करना चाहती है, मुझे अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद एक भी ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी नहीं मिली, जिसके सामने यह विचार स्पष्ट हो कि वह किसलिए लड़ रही है। सभी पार्टियों में केवल ऐसे लोग थे जिनके पास केवल

एक विचार था कि उन्हें विदेशी शासकों के विरूद्ध संघर्ष करना है। यह विचार पर्याप्त रूप से सराहनीय है। लेकिन इसे एक क्रान्तिकारी विचार नहीं कहा जा सकता। हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि क्रान्ति का अर्थ मात्र उथल–पुथल या रक्तरंजित संघर्ष नहीं है। क्रान्ति में मौजूदा हालात (यानी सत्ता) को पूरी तरह से ध्वस्त करने के बाद एक नये और बेहतर स्वीकृत आधार पर समाज के सुव्यवस्थित पुनर्निमाण का कार्यक्रम अनिवार्य रूप से अन्तर्निहित रहता है।''

26 जनवरी 1930 में उन्होने जेले 'बम का दर्शन' नामक परिपत्र लिखकर भेजा था। जिसमें हिंसा और अहिंसा की व्यख्या इस प्रकार की है–

''हिंसा का अर्थ है, अन्याय के लिये किया गया बल प्रयोग, परन्तु क्रान्तिकारियों का तो यह उद्देश्य नहीं है। दूसरी ओर अहिंसा का जो आम अर्थ समझा जाता है, वह है आत्मिक शक्ति का सिद्धान्त। उसका उपयोग व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय अधिकारों को प्राप्त करने के लिये किया जाता है। अपने आपको कष्ट देकर आशा की जाती हैकि इस प्रकार अन्त में अपने विरोधी का हृदय परिवर्तन संभव हो सकेगा।''

भगत सिंह को आतंकवादी कहकर भी सम्बोधित किया गया। किन्तु उन्होने उसका विरोध 'कौम के नाम सन्देश' में लिखकर प्रकट किया। जो उन्होने 2 फरवरी 1931 में काल कोठरी में लिखा था, जिसके अनुसार–

''यह बात प्रसिद्ध है कि मैं आतंकवादी रहा हूं, परन्तु मैं आतंकवादी नहीं हूं। मैं एक क्रान्तिकारी हूं जिसके कुछ निश्चित विचार और निश्चित आदर्श हैं और जिसके सामने एक लम्बा प्रोग्राम है।''

भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरू पर लाहौर षड़यंत्र केस में मुख्य चार्ज था। राजा के खिलाफ युद्ध। इसी आधार पर उन्हें फांसी की सजा दी गयी।

भगत सिंह के वकील श्री प्राणनाथ मेहता ने उनसे 'मर्सी–पिटीशन' (दया प्रार्थना) की राय दी। इस पर उन्होने पत्र द्वारा पंजाब के गवर्नर से मांग की थी, कि इन्हें युद्ध बन्दी माना जाये। जिसके कुछ अंश इस प्रकार हैं–

''हम युद्धबन्दी हैं और इसी आधार पर हम आपसे मांग करते हैं कि हमारे प्रति युद्धबन्दियों जैसा ही व्यवहार किया जाये– हमें फांसी देने के बदले गोली से उड़ा दिया जाये।''

22 मार्च 1931 में सेण्ट्रल जेल में कुछ बन्दी क्रान्तिकारियों ने भगत सिंह को एक पर्ची लिखकर भेजा कि यदि वे फांसी से बचना चाहते हों, तो बताएं। इस पर भगत सिंह ने उन्हें उत्तर लिखकर भेजा, जिसके मुख्य शब्द इस प्रकार हैं–

''अगर मैं फांसी से बच गया तो इंकलाब का निशान मद्धिम पड़ जायेगा या शायद मिट ही जाये। लेकिन मेरे दिलेराना ढंग से हंसते हंसते फांसी पाने की सूरत में हिन्दुस्तानी माताएं अपने बच्चों के भगत सिंह बनने की आरजू किया करेगीं और देश की आजादी के लिये बलिदान होने वालों की तादाद इतनी बढ़ जायेगी कि इन्कलाब को रोकना शैतानी शक्तियों के बस की बात न रहेगी।''

इस प्रकार भगत सिंह व्यक्तिगत विचारों से जन क्रान्तिकारी आन्दोलन की तरफ, व्यक्तिगत क्रान्ति से वर्गीय क्रान्ति और वर्ग संघर्ष की तरफ निसंदेह आगे बढ़ें और इस संघर्ष में वह अंग्रेजों के खिलाफ राष्ट्रीय क्रान्तिकारी संघर्ष की तत्कालीन जरूरतों से जोड़ने में भी कामयाब हुये।

समाजवादी विचार

''देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं, उनका कर्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निमाण करें।''

– भगत सिंह

भगत सिंह तथा उनके साथी उस समय देश के सामने उपस्थित व्यवहारिक कार्यभारों के लिये मार्क्सवाद को अपना पथ–प्रदर्शक स्वीकार करने की दिशा में आगे बढ़ें। इस सदी के तीसरे दशक में बदली हुई परिस्थितियों में नौजवान क्रान्तिकारी नयी विचारधारा की तरफ आगे बढ़े। उन्होने सामाजिक शक्तियों की ओर सामाजिक उथल–पुथल से पीड़ित जनता की स्थिति एवं विदेशी शासन के प्रति उनकी नफरत तथा ब्रिटिश दासता के खिलाफ उनकी प्रगाढ़ विद्रोह की भावना को और भी मजबूत किया।

उस समय साम्राज्य विरोधी भारतीय नौजवानों की एक ऐसी पीढ़ी उभर कर सामने आयी, जो पूर्ण स्वाधीनता की मांग कर रही थी, एक ऐसी मांग जिसे उस समय तक राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं तक ने स्वीकार नहीं किया था। ये नौजवान जातिगत और साम्प्रदायिक भेदभावों के विरोधी थे और एक धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोंण अपना रहे थे। किसी भी अन्य क्रान्तिकारी ने जागरूक जनता के साथ इतना गहरा संपर्क स्थापित नहीं किया, जितना कि भगत सिंह ने स्थापित किया। इसीलिये वे आम जनता और नौजवानों के 'प्यारे' बने।

प्रारम्भ में भगत सिंह रूसी अराजकतावादी बाकुनिन से प्रभावित थे। उनको अराजकता से समाजवाद की और लाने का श्रेय दो व्यक्तियों को है– कामरेड सोहन सिंह जोश व मशहूर कम्युनिष्ट नेता और पंजाबी मासिक पत्रिका

किर्ती के सम्पादक छबील दास जोश। वे नेशनल कालेज के प्रधानाचार्य थे और नौजवान क्रान्तिकारियों को क्या पढ़ें और कैसे पढ़े यह बतलाते रहते थे। लाला लाजपत राय की 'द्वारका दास लाइब्रेरी' में क्रान्तिकारी पुस्तकों का अच्छा संग्रह था। जिसका लाभ भगत सिंह ने उठाया। इस पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री राजाराम शास्त्री जी थे जिनका कहना था कि 'भगत सिंह पुस्तकों को पढ़ता ही नहीं बल्कि निगलता है फिर भी उसके ज्ञान की पिपासा सदा अनुबुझी ही रहती है।''

भगत सिंह पुस्तकों का अध्ययन करते नोट्स बनाते और अपने साथियों से विचार–विमर्श करते थे। उनमें राजनीतिक बहस होती थी, जिसमें भगत सिंह आतंकवाद और समाजवाद दोनों का समर्थन करते थे। भगत सिंह ने अपनी समझ को ज्ञान की रोशनी पर आलोचनात्मक तरीके से परखने का प्रयास किया। परिणम स्वरूप उन्होने अराजकतावाद को छोड़कर समाजवाद का ध्येय के रूप में स्वीकार किया।

हर युग अपने प्रवक्ता पैदा करता है, यह एक ऐतिहासिक नियम है। भगत सिंह लाहौर से भागकर कुछ समय कानपुर में रहे, जहां सुरेश भ्टटाचार्य श्री बटुकेश्वर दत्त, अजय घोष व शिववर्मा इत्यादि क्रान्तिकारी थे, जो मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़े हुये थे। उनके संपर्क में आकर भगत सिंह ने मार्क्सवाद का अध्ययन शुरू किया और उनका प्रशिक्षण यहीं से शुरू हुअ। इस प्रकार मार्क्सवादी चेतना को विकसित करने एवं उसे राष्ट्रीय रूप देने का श्रेय भगत सिंह और उनके साथियों को है।

1928 के आरम्भ में भगत सिंह ने विभिन्न दलों को मिलाकर क्रान्तिकारियों का एक अखिल भारतीय संगठन बनाने का विचार अपने साथियों के सामने रखा। उनके प्रस्ताव इस प्रकार थे–

"समय आ गया है कि हम साम्राज्यवाद को साहस के साथ अपना अन्तिम लक्ष्य घेषित करें।"

उन्होने क्रान्तिकारी दल 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ'का नाम बदलकर 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातं. संघ' रखने का प्रस्ताव रखा। जिसको स्पष्ट किया—

"पार्टी का नाम तदनुसार बदला जाना चाहिये ताकि लोग जान सकें कि हमारा अन्तिम लक्ष्य क्या है?"

भगत सिंह और उनके साथियों के सम्मुख यह समस्या थी कि इस नई विचार—धारा के अनुसार संगठन को नया रूप देना था। और इसके लिये दिल्ली में क्रान्तिकारी दल के प्रतिनिधियों की बैठक बुलायी गयी एवं उसने पार्टी का नाम बदला गया। 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ' के साथ 'समाजवादी' शब्द को जोड़ने का तात्पर्य थ कि "हमारे क्रान्तिकारी आन्दोलन ने आदर्शवाद की सीमाओं को पार किया और सर्वहारा के जीवन दर्शन को अपने चिन्तन का आधार बनाया।" भगत सिंह और सुखदेव ने हिन्दुस्तान प्रजातंत्र दल के साथ 'समाजवादी' शब्द जोड़ने का जो प्रस्ताव रखा, उसमें कुछ विरोध तो हुआ किन्तु बाद में वह स्वीकृत हो गया।

भगत सिंह ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को तीन नारे दिये— 'इंकलाब जिन्दाबाद', 'सर्वहारा जिन्दाबाद', 'साम्राज्यवाद का नाश हो'। इन नारों के माध्यम से भगत सिंह ने अपने पूरे कार्यक्रम का निचोड़ बड़ी ही निपुणता से देशवासियों के सम्मुख रखा। इन नारों का उद्देश्य समाजवाद का ऐलान करना था जिसका तात्पर्य है— हमारे इंकलाब का अर्थ पूंजीवादी युद्धों की मुसीबतों का अन्त करना है।"

"भविष्य करोड़ों मेहनतकशों का है और यह क्रान्ति का चालक–शक्ति 'सर्वहारा वर्ग' है।"

तीसरा नारा तात्कालिक कार्यभार का सूचक था। कोई भी राष्ट्र गुलाम हो तो वह वर्गहीन समाज की स्थापना नहीं कर सकता, शोषण एवं खात्मा नहीं कर सकता, और मनुष्यों के बीच समानता कायम नहीं कर सकता। इसलिये ऐसे किसी राष्ट्र के लिये पहली जरूरत साम्राज्यवादी गुलामी के बंधनों को तोड़ने की होती है। दूसरे शब्दों में, किसी गुलाम देश में क्रान्ति साम्राज्यवाद विरोधी उपनिवेशवाद विरोधी होती है।

भगत सिंह ने 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' का नारा दिया, ब्रिटिश साम्राज्यवाद मुर्दाबाद नहीं कहा क्योंकि वैसा करना क्रान्ति की अवधारणा को विकृत करना होता। वे व्यापक अन्तराष्ट्रीय दृष्टिकोंण वाले व्यक्ति थे, जो साम्राज्यवाद के चंगुल से भारत की जनता को नहीं अपितु सम्पूर्ण मानवता को मुक्त करना चाहते थे।

जब स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व बुर्जुआ वर्ग के बजाय सर्वहारा वर्ग अर्थात उसका क्रान्तिकारी संगठन करता है, तो राष्ट्रीयता को छोड़ा नहीं जाता, बल्कि राष्ट्रवाद का समाजवाद में रूपान्तरण होता है।

भगत सिंह के माध्यम से साण्डर्स हत्याकाण्ड के पश्चात् जो पोस्टर्स लगाये गये थे, उनमें आखिर में लिखा था–

"मनुष्य का रक्त बहाने के लिये हमें खेद है। परन्तु क्रान्ति की वेदी पर कभी–कभी रक्त बहाना अनिवार्य हो जाता है । हमारा उद्देश्य एक ऐसी क्रान्ति से है जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त कर देगी।"

असेम्बली में बम विस्फोट के बाद भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त जी ने नारे लगाते हुये लाल रंग के पर्चे फेंगें थे जिसमें लिखा था–

''बहरों को सुनाने के लिये धमाके की आवश्यकता होती है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी अराजकतावादी शहीद वेलां के ये अमर शब्द हमारे काम के औचित्य के साक्षी हैं।'' इसी पर्चे में अंत में लिखा था–

''हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्जवल भविष्य में विश्वास रखते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शान्ति और स्वतंत्रता का अवसर मिल सके।

बम फेंकने के पश्चात, भगत सिंह ने जो ब्यान अदालत के सामने दिया था। उसमें 1919 के मांटेस्ग्यू–चेम्सफोर्ड़ सुधार के तहत कायम असेम्बली को ''शोषकों की दम घोटने वाली सत्ता का एक खतरनाक स्मारक'' बतलाकर उसकी निंदा की। अपने इसी ब्यान में उन्होने कहा था–

''बम मजदूर नेताओं की व्यापक गिरफ्तारियों के विरोध में फेंके गये थे, यह इशारा स्पष्ट रूप से मेरठ षड़यंत्र केस में कम्युनिष्ठों और दूसरों की गिरफ्तारियों की तरफ था।''

इस ब्यान में औद्योगिक विवाद विधेयक का विरोध किया गया था, जिसका मकसद मजदूरों की एक आम हड़ताल को गैर कानूनी करार देना था। ब्रिटिश सरकार ब्रिटिश मजदूरों की उस आम हड़ताल से भयभीत थी जिसने ब्रिटेन में एक क्रान्तिकारी परिस्थिति पैदा की थी। इस विधेयक का विरोध पूरी ट्रेड यूनियन आन्दोलन ने किया। इसका विरोध असेम्बली में राष्ट्रीय नेताओं ने किया और यह महसूस करके कि सरकार इस विधेयक के जरिये जनता के उस हिस्से को कुचलना चाहती थी, जिसकी हड़ताल प्रशासन को पूरी तरह अपाहिज

बना सकती थी, भगत सिंह भी इस विरोध में शामिल हुये।

भगत सिंह ने अपने ब्यान में समाजवाद की पैरवी, साम्राज्यवादी शोषण का उसकी गुलामी की स्थिति का वर्णन करते हुये कहा था–

''यदि इस सभ्यता के पूरे ढांचे को समय रहते नहीं बचाया गया, तो वह नष्ट भ्रष्ट हो जायेगा। अतः क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है और जो लोग इस आवश्यकता का अनुभव करते है, उनका यह कर्तव्य है कि समाज को समाजवादी आधारों पर पुर्नगठित करें। जब तक यह नहीं होगा और एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण होता रहेगा ,तब तक उससे उत्पन्न होने वाली तकलीफों और अपमानों से मानव जाति को नहीं बचाया जा सकता और तब तक युद्ध को मिटाने तथा सार्वभौमिक शान्ति के युग का सूत्रपात करने के बारे में की जाने वाली समस्त चर्चा ही कोरा पाखण्ड है।''

''क्रान्ति से हमारा प्रयोजन अंततः एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना से है, जिसको इस प्रकार के घातक खतरों का सामना न करना पड़े और जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रभुता को मान्यता दी जाये और एक विश्व संघ मानव जाति को पूंजीवाद के बन्धन से तथा युद्ध से उत्पन्न बरबादी और मुसीबतों से बचा सकें।''

कम्युनिष्ठ साहित्य और लेनिन की अनेक रचनाओं के अध्ययन ने भगत सिंह को इस नतीजे पर पहुंचाया कि भारत की स्वाधीनता का संघर्ष समाजवाद के लिये अन्तरराष्ट्रीय मजदूर वर्ग के संघर्ष का ही एक अभिन्न अंग है। भगत सिंह के विचार से यदि वर्तमान–शासन व्यवस्था बढ़ती हुई जन–शक्ति के मार्ग में बाधांए पहुंचायेगी तो क्रान्ति के आदर्श को पूरा करने के लिये युद्ध

होना अनिवार्य है। उनके शब्दों में–

"सभी बाधाओं को रौंदकर आगे बढ़ते हुये उस युद्ध के फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र की स्थापना होगी। यह अधिनायकतंत्र क्रान्ति के आदर्शों की पूर्ति के लिये मार्ग प्रशस्त करेगा। क्रान्ति मानव जाति का जन्म सिद्ध अधिकार है, जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतंत्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक हे, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है।"

भगत सिंह ने काल–कोठरी से नौजवानों को सन्देश भेजा था जिसमे अपनी समाजवादी विचारधारा को उजागर किया था, उसके अनुसार–

"नौजवानों को क्रान्ति का यह सन्देश देश के कोने–कोने में पहुंचाना है, फैक्ट्री–कारखानों के क्षेत्रों में, गन्दी–वस्तियों और गांवों की जर्जर झोपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलग जगानी है, जिससे आजादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असंभव हो जायेगा। "

भगत सिंह समाज के लिये जागरूक थे और उनके अनुसार प्रगति के लिये परिवर्तन की भावना तथा आकांक्षा स्वाभाविक है। समाज परिवर्तन से भय खाता है जो अकर्मण्यता है, जिसको उन्होने स्पष्ट किया था–

"अर्कमण्यता का वातावरण निर्माण हो जाता है, और रूढ़िवादी शक्तियां मानव समाज को कुमार्ग़ पर ले जाती है। ये परिस्थितियां मानव समाज की उन्नति में गतिरोध बन जाती हैं।"

21 जनवरी 1930 में लेनिन की छठी बरसी पर भगत सिंह व 'लाहौर केस' के सभी अभियुक्त अदालत में लाल स्कार्फ पहनकर आये और

उन्होने नारे लगाये– 'समाजवादी क्रान्ति जिन्दाबाद', 'कम्युनिष्ठ इण्टरनेशनल जिन्दाबाद', 'मेहनतकश जनता जिन्दाबाद', 'लेनिन का नाम अमर रहे', 'साम्राज्यवाद का नाश हो '। उन्होने लेनिन के निर्माण दिवस के लिये एक तार लिखा, जो अदालत को पढ़कर सुनाया व अदालत से यह मांग की कि उसे भेज दें। यह तार तीसरी इण्टरनेशनल, मास्कों के अध्यक्ष के नाम प्रेषित था। और इसके द्वारा उन्होने लेनिन–दिवस के अवसर पर सोवियत रूस पर हो रहे महान अनुभव और साथी लेनिन की सफलता को आगे बढ़ाने के लिये दिली मुबारकबाद भेजी। जिसमें लिखा था–

''हम अंतरराष्ट्रीय मजदूर वर्ग के आन्दोलन की आवाज में अपनी आवाज मिलाते हैं। सर्वहारा की विजय सुनिश्चित है। पूंजीवाद पराजित होगा।''

भगत सिंह तथा उन सभी अभियुक्तों पर मुकदमें के दौरान अनेकों अत्याचार किये गये और अन्त में उन्होने एक लिखित ब्यान के द्वारा अदालत जाने से इन्कार कर दिया, उन्होने ऐलान किया कि ''हम न तो विदेशी सरकार को मानते हैं और न उसकी अदालत को।''

भगत सिंह का विचार था कि– साम्राज्यवाद लूटने खसोटने के उद्देश्य से संगठित किये गये एक षड़यंत्र को छोड़कर और कुछ नहीं है। मनुष्य होने के नाते हर व्यक्ति आजादी का हकदार है, उसे कोई दूसरा व्यक्ति दबा नहीं सकता। मौजूदा सरकार के नियमों और कानूनों का अस्तित्व ही हमारी जनता के हितों के बरखिलाफ विदेशी शासकों के स्वार्थ के लिये है और ऐसी स्थिति में उनके प्रति कोई भी नैतिक बन्धन नहीं हो सकता। शोषण की मशीनरी का एक पुर्जा होने के नाते अंग्रेजी अदालतें न्याय नहीं दे सकतीं।

भगत सिंह साम्यवादी मार्क्स के लिये भी अपने विचार व्यक्त किये थे–

"साम्यवाद का जन्मदाता मार्क्स, वास्तव में इस विचार को जन्म देने वाला नहीं था। असल में यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति ने ही एक विशेष प्रकार के विचारों वाले व्यक्ति उत्पन्न किये थे। उनमें मार्क्स भी एक था। हां, अपने स्थान पर मार्क्स भी निःसन्देह कुछ सीमा तक समय के चक्र को एक विशेष प्रकार की गति देने में आवश्यक सहायक सिद्ध हुआ।"

"मैने इस देश में समाजवाद एवं साम्यवाद के विचारों को जन्म नहीं दिया, वरन् यह तो हमारे ऊपर समय एवं परिस्थिति के प्रभाव का परिणाम है।

असेम्बली बम फेस में भगत सिंह जो व्याख्या की है, उसके अनुसार क्रान्ति का अर्थ है– मौजूदा समाज व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकना और उसकी जगह समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करना।

बम–काण्ड के द्वारा भगत सिंह देशवासियों में जागृति पैदा करना चाहते थे। राष्ट्र के भविष्य को उज्जवल बनाना ही उनका आदर्श था। उनकी यह नव वैज्ञानिक चेतना तथा उत्कर साहस उनके दस्तावेजों के शब्द–शब्द से मुखारित है–

"इस आदर्श से प्रेरणा ग्रहण करके हमने एक सुनिश्चित और काफी जोरदार चेतावनी दी है। यदि इसकी भी उपेक्षा कर दी जाती है और वर्तमान व्यवस्था नवोदित प्राकृतिक शक्तियों के मार्ग को अवरूद्ध रखने का काम जारी रखती है तो एक भीषण संघर्ष उत्पन्न होना निश्चित है। जिसके परिणामस्वरूप समस्त बाधिक तत्वों को उठाकर फेंक दिया जायेगा तथा सर्वहारा अधिनायकत्व स्थापित होगा, जिससे क्रान्ति के लक्ष्य की उपलब्धि की जा सके।

क्रान्ति मानव जाति का जन्मजात अधिकार है। स्वतंत्रता सभी मनुष्यों का ऐसा जन्म सिद्ध अधिकार है जिसे किसी भी स्थिति में छीना नहीं जा

सकता। श्रमिक वर्ग मानव समाज का वास्तविक आधार है। लोक–प्रभुता ही श्रमिकों का अन्तिम ध्येय है। क्रान्ति की इस वेदी पर हम अपना यौवन धूपबत्ती की भांति जलाने के लिये प्रतिबद्ध हैं। इस महान ध्येय के लिये कोई भी बलिदान बड़ा नहीं माना जा सकता।

धार्मिक विचार

"निरा विश्वास और अन्ध विश्वास खतरनाक है, इससे मस्तिष्क कुंठित होता है और आदमी प्रतिक्रियावादी हो जाता है।"

— भगत सिंह

भगत सिंह का जन्म एक सिख परिवार में हुआ था। किन्तु उनके बाबा अर्जुन सिंह आर्य समाजी हो गये थे और उनके पिता सरदार किशन सिंह ने भी आर्य समाज ग्रहण कर लिया था। किन्तु उनकी दादी सिख धर्म को मानने वाली थी। उनके परिवार में सहिष्णुता और उदारता विद्यमान थी जिससे सिख धर्म तथा आर्य समाज का संगम हो गया था। धर्म के साथ–साथ उनके परिवार में राष्ट्रीय भावना तथा बलिदार की पूर्ण भावना का विकास था। ऐसे परिवार में जन्म लेने के पश्चात् भी भगत सिंह नास्तिक हो गये थे। यह एक आश्चर्यचकित घटना है।

भगत सिंह का बचपन अपने बाबा अर्जुन सिंह के संरक्षण में बीता। जो धर्म–पुरूष तथा कर्म पुरूष दोनों ही थे। हवन, वेद पाठ प्रभु–प्रार्थना तथा कीर्तन जैसे वातावरण में भगत सिंह का पालन पोषण हुआ। ऐसे वातावरण में वह धर्म के प्रति विरक्त रह गये। उन्होने अपने बाबा से धर्म का नहीं, कर्म का ही प्रभाव ग्रहण किया था किन्तु शुरू में वह पूर्णतया नास्तिक नहीं बने थे। उन्होने स्वयं लिखा है–

"असहयोग–आन्दोलन के दौरान में नेशनल कालेज में दाखिल हो गया। वहां ही मैं सारी धार्मिक समस्याओं के बारे में यहां तक कि ईश्वर के बारे में खुले तौर पर सोचने लगा। अतः इनके बारे में विचार चर्चा शुरू कर दी। पर, उस समय भी ईश्वर में मेरा पक्का विश्वास था। तब मैने दाढ़ी केश रख लिये थे।

पर तो भी मैं किसी के मिथहास तथा सिद्धान्त या किसी और धर्म में विश्वास न कर सका।''

देशभक्तिपूर्ण विचारों को जनता में प्रचारित–प्रसारित करने के लिये नवयुवकों ने 'नेशनल नाटक–क्लब' की स्थापना की। जिसमें देश–भक्ति के नाटक खेले जाते थे, उसमें प्रमुख भूमिका भगत सिंह निभाते थे। इन नाटकों में हिन्दू–मुस्लिम एकता के साथ–साथ धार्मिक अन्ध विश्वासों पर चोट की जाती थी।

इसके पश्चात भगत सिंह क्रान्तिकारी दल में शामिल हो गये। वे कई क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आये और उनसे धार्मिकता पर विचार विमर्श किया। भगत सिंह ने अपने लेख ''मैं नास्तिक क्यों हूं'', में लिखा है–

''सबसे पहले मैं जिस नेता से मिला, वह पूरी तरह सजग होने पर भी ईश्वर के अस्तित्व में इन्कार नहीं कर सकता था। मैं ईश्वर के बारे में पूंछता तो वह कह देता, जब तुम्हारा मन करे ईश्वर का ध्यान कर लिया करो। नास्तिकता के सिद्धान्त को मानने के लिये जो साहस चाहिये, वह उस साहस के बिना नास्तिक थे। जिस दूसरे नेता से मैं मिला, उनका ईश्वर में दृढ़ विश्वास था। मैं आपको उसका नाम बताता हूं– माननीय कामरेड शचीन्द्र नाथ सान्याल। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'बंदी जीवन' में पहले पृष्ठ से ही ईश्वर की शान का जबर्दस्त महिमा गाान है। इस खूबसूरत किबात के दूसरे भाग के अन्तिम पृष्ठ पर उनके वेदान्तवाद के कारण ईश्वर की आध्यात्मिक महिमा उनके विचारों का सार है।''

अपने–आपको नास्तिक बताते हुये– ''भगत सिंह ने शुरू के क्रान्तिकारियों के तरीके और दृष्टिकोंण के लिये पूरा सम्मान प्रदर्शित किया है और उनकी धार्मिकता के स्त्रोतों की पड़ताल की है। वे संकेत करते हैं कि अपने

स्वयं के राजनीतिक कार्यों की वैज्ञानिक समझ के अभाव में उन क्रान्तिकारियों को अपनी आध्यात्मिकता की रक्षा करने, व्यक्तिक प्रलोभन के विरूद्ध संघर्ष करने, अवसाद से उबरने, भौतिक सुखों और अपने परिवारों तथा जीवन तक को त्यागने की सामर्थ्य जुटाने के लिये विवेकहीन विश्वासों एवं रहस्यवादिता की आवश्यकता हैं

एक व्यक्ति जब निरन्तर अपने जीवन को जोखिम में डालने और दूसरे सारे बलिदान करने के लिये तत्पर होता है, तो उसे प्रेरण के गहरे स्त्रेत की आवश्यकता होती है। शुरू के क्रान्तिकारी, आतंकवादियों की यह अनिवार्य आवश्यकता रहस्यवाद और धर्म से पूरी होती थी। लेकिन उन लोगों को ऐसे स्त्रोतों से प्रेरणा लेने की जरूरत नहीं रह गयी थी। जो अपने कामों की प्रकृति को समझते थे, जो क्रातिकारी विचारधारा की दिशा में आगे बढ़ चुके थे, जो स्वर्ग और मोक्ष के प्रलो भन और आश्वासन के बिना ही विश्वास के साथ और निर्भीक भाव से फांसी के तख्ते पर चढ़ सकते थे। जो दलितों की मुक्ति और स्वतंत्रता के पक्ष में इसलिये लड़े क्योंकि लड़ने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था।

उस समय अछूत समस्या भी एक ज्वलंत समस्या बनी। और यह समस्या विवाद का विषय बन गयी। भगत सिंह ने भी एक लेख 1928 में विद्रोही नाम से किर्ती में प्रकाशित करवाया, जिसमें छुआछूत को देश का कलंक बताया। उन्होने इस पाप की संज्ञा दी। इसने इन्सान में से इन्सानियत की, आत्मविश्वास और आत्म निर्भरता की भावना ही समाप्त कर दी। इसके विषय में उन्होने कहा कि इन्हें अछूत न कहिए और न समझिये। बस समस्या हल हो जायेगी।

भगत सिंह ने अध्ययन को अपने सिद्धान्तों का प्रमुख अंग बनाया। उनका मानना था कि– ''अध्ययन करो ताकि तुम अपने विरोधियों के तर्कों का जबाब देने योग्य बन सको।'' अपने विस्तृत अध्ययन का ब्यौरा देकर उन्होने लिखा है–

''1926 के अन्त तक मेरा यह विश्वास दृढ़ हो चुका था कि ब्रह्माण्ड का सर्जनकार, पालने वाले और सर्वशक्तिमान के अस्तित्व का सिद्धान्त निराधार है। मैने इस विषय पर दोस्तों से बहर करना शुरू कर दी। मैं घोषित नास्तिक बन चुका था।''

मई 1927 में भगत सिंह लाहौर में गिरफ्तार हुये और उन्हें एक महीना रेलवे पुलिस जेल में रखा गया। इस दौरान पुलिस आफीसरों ने उन्हें धमकाया–फुसलाया कि तुम क्रान्तिकारियों के खिलाफ बयान देकर वादामाफ गवाह तन जाओ तो न सिर्फ यह कि तुम कैद और फांसी की सजा से बच जाओगे बल्कि तुम्हें पुरस्कार भी मिलेगा और तुम्हें अदालत में पेश नहीं किया जायेगा। पुलिस आफीसरों ने उन्हें ईश्वर का नाम लेने और प्रार्थना करने को भी प्रेरित किया। लिखा है कि मेरे लिये एक परख की घड़ी थी। मैं उस परख में सफल रहा। मैने कभी प्रार्थना न की। मैने कभी एक पल के लिये भी अपने जान बचाने की नहीं सोची। उस परख में पूरा उतरना आसान बात नहीं थी। विश्वास मुश्किलों को न सिर्फ कम करता है बल्कि खुशगवार भी बना देता है। आंधी और तूफान में सही–सलामत रहना बच्चों का खेल नहीं है। ऐसे परख के समय किसी में बचे हुये अहं को भी काफूर कर देता है। अगर वह साहस करता है तो कहना होगा कि उसमें सिर्फ अहं के अलावा कोई और भी ताकत होगी।

भगत सिंह प्रगति के लिये संघर्ष में पुराने विश्वास तथा अन्ध विश्वासों को बाधक समझते थे। उन्होने यह सूत्र प्रस्तुत किया कि–

''आलोचना और स्वतंत्र विचार किसी क्रान्तिकारी के दो अपरिहार्य गुण हैं। जो व्यक्ति प्रगति के लिये संघर्ष करता है, उसे पुराने विश्वासों की एक–एक बात की आलोचना करनी होगी, उस पर अविश्वास करना होगा, और

उसे चुनौती देनी होगी। इस प्रचलित विश्वास के एक–एक कोने में झांककर उसे विवेकपूर्ण समझना होगा।''1

भगत सिंह स्वीकार करते थे कि ''ईश्वर में कमजोर आदमी को जर्बदस्त आश्वासन और सहरा मिलता है और विश्वास उसकी कठिनाइयों को आसान ही नहीं बल्कि सुखकर भी बना देत है।'' वे यह भी जनते थे कि–

''आंधी और तूफान में अपने पांवों पर खड़े रहना कोई बच्चों का खेल नहीं है।'' लेकिन वे सहारे के लिये किसी भी बनावटी अंग के विचार को दृढ़तापूर्वक अस्वीकार करते थे। वे कहते थे–

''अपनी निर्यात का सामना करने के लिये मुझे किसी नशे की जरूरत नहीं है।'' उन्होने ऐलान किया था ''जो आदमी अपने पांवों पर खड़े होने की कोशिश करता है और यर्थाथवादी हो जाता है, उसे धार्मिक विश्वास को एक तरफ रखकर, जिन–जिन मुसीबतों और दुखों में परिस्थितियों ने उसे डाल दिया है, उनका एक मर्द की तरह बहादुरी के साथ सामना करना होगा।''

भगत सिंह दूसरी बार गिरफ्तार हुये तो लाहौर षड़यंत्र केस चला। अतएव उन्होने लिखा है कि–

''मुझे पहले ही अच्छी तरह मालूम है कि (हमारे मुकदमें का) फैंसला क्या होगा। एक हफ्ता के अन्दर ही फैंसला सुना दिया जायेगा, मुझे अपना जीवन आदर्श के लिये कुर्बान करना है, इस विचार के अलावा मुझे और किस चीज का धैर्य है। किसी आस्तिक हिन्दू को तो अगले जन्म में राजा बनने की आशा हो सकती है, कोई मुसलमान या ईसाई कुर्बानियों के बदले में स्वर्ग के मजों की कल्पना कर सकता है। लेकिन मैं किस बात की आशा करूं। मुझे पत है कि

---

1. शहीदे आजम की जेल, नोट बुक, पेज नं0–194

जिस क्षण पैरों से नीचे से तख्ते खींचे जायेगें, वही मेरा अन्तिम क्षण होगा। मेरा, या वेदों की शब्दावली में कहाजाये तो मेरी आत्म का खात्मा हो जायेगा। अगर मैं पुरस्कार के दृष्टिकोंण से देखने का साहस करूंगा तो शानदान अंत वाला जद्दोजहद भरा जीवन ही अपने आप में (मेरा) पुरस्कार होगा। इससे ज्यादा कुछ नहीं।''

''फांसी से कुछ दिन पूर्व बब्बर अकाली केस के बाबा रणधीर सिंह ने भगत सिंह को सलाह दी कि वे भगवान को याद कर लें। भगत सिंह ने अस्वीकृत कर दिया। जिस पर उन्होने भगत सिंह को 'घमण्डी' की संज्ञा दी। उस पर भगत सिंह ने ''मैं नास्तिक क्यों हूं'' लेख लिखा। जिसके माध्यम से ईश्वर और धर्म पर अपने विचार व्यक्त किये थे। उसमें उन्होने आस्तिकों से प्रश्न किये थे–

''एक सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक एवं सर्वज्ञानी ईश्वर है जिसने कि पृथ्वी या विश्व की रचना की, तो कृपा करके मुझे यह बतायें कि उसने यह रचना क्यों की ? कष्टों और सन्तानों से पूर्ण दुनिया, असंख्य दुखों के शाश्वत अनन्त गठबन्धनों से ग्रसित एक भी व्यक्ति तो पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं है।''

ईश्वर की उत्पत्ति के विषय में भगत सिंह का विचार था कि ''मनुष्य की सीमाओं को पहचानने पर, उसकी दुर्बलता व दोष को समझने के बाद, परीक्षा की घाड़ियों में मनुष्य को बहादुरी से सामना करने के लिये उत्साहित करने, सभी खतरों को पुरूषत्व के साथ झेलने तथा संपन्नता एवं ऐश्वर्य में उसके विस्फोट को बांधने के लिये ईश्वर के काल्पनिक अस्तित्व की रचना हुई।''

भगत सिंह के यह विचार ईश्वर धार्मिक विश्वास और धर्म की

तिलांजलि के लिये न तो आकस्मिक थे और न ही उनके अभियान या अहम् का परिणाम थे।

भगत सिंह भावना को भी अत्यधिक महत्व देते थे। उनका विश्वास था कि व्यक्ति मर जाता है किन्तु भावना कभी नहीं मरी। फांसी लगने से कुछ समय पूर्व उन्होने कहा था–

''देश भक्ति के लिये ये सर्वोच्च पुरस्कार है और मुझे गर्व है कि मैं यह पुरस्कार पाने जा रहा हूं। वे सोचते हैं कि वे मेरे पार्थिव शरीर को नष्ट करके, वे इस देश में सुरक्षित रह जायेगें। यह उनकी भूल है।

वे मुझे मार सकते हैं लेकिन मेरे विचारों को नहीं मार सकते। वे मेरे शरीर को कुचल सकते हैं लेकिन मेरी भावनाओं को नहीं कुचल सकते। ब्रिटिश हुकूमत के सिर पर मेरे विचार उस समय तक एक अभिशाप की तरह मंडराते रहेगें, जब तक वे यहां से भागने के लिये मजबूर न हो जायें।''

****

राष्ट्रीय आन्दोलन में सरदार भगत सिंह का योगदान

भारत में ब्रिटिश साम्रज्यवाद की स्थापना के बाद, इस देश को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पंजे से स्वतंत्र कराने के लिये स्वतंत्रता आन्दोलन अथवा राष्ट्रीय आन्दोलन चले। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन कई चरणों से गुजरता हुआ अपने लक्ष्य की ओर अग्रसित हुआ। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के पश्चात् ऐसी अनेक घटनायें हुई, कुछ ऐसे तत्व सक्रिय हुये, जिसके परिणामस्वरूप भारत को लगभग 200 वर्षों तक अंग्रेजों की गुलामी की बेड़ी में जकड़े रहने पश्चात् स्वतंत्रता की बयान भयस्सर हुई।

ब्रिटिश साम्राज्य में भारतीय राज्यों का विलय होने के पश्चात् भारतीयों में अंग्रेज विरोधी भावनाएं जागृत होने लगी। प्लासी विद्रोह के साथ अंग्रेजों के विरूद्ध अनेक विद्रोह, आन्दोलन एवं बगावतें हुईं और ब्रिटिश शासन का खुले आम विरोध किया गया। जिसमें किसानों, शासकों, सैनिकों जमींदारों, धार्मिक भिक्षुओं तथा अपदस्य भारतीय शासन के मंत्रियों एवं आश्रितों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह तथा आन्दोलन किये।

ब्रिटिश शासन अन्याय और शोषण पर आधारित था। अंग्रेजी शासन के आरम्भिक 100 वर्षों में राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक सामाजिक और सैनिक क्षेत्र में अनेक ऐसी प्रवृत्तियों का उदय हुआ जिन्होने भारतीय जनता को अंग्रेजी शासन का प्रबल विरोधी बना दिया। जिसके परिणामस्वरूप एक व्यापक विद्रोह हुआ, जिसे 1857 का भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा जाता है। यद्यपि इस संघर्ष में अंग्रेज सफल हुये और उन्होने भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना की। क्रान्ति की असफलता के बाद अंग्रेजों ने क्रान्ति में भाग लेने वाले भारतीयों पर अमानुषिक अत्याचार किये।

असफल क्रान्ति ने राष्ट्रीयता की भावनाओं को प्रोत्साहित किया। भारतीय धर्म और संस्कृति का पुर्नजागरण हुआ तथा अंग्रजों के प्रति भारतीय भावनायें दिन प्रतिदिन उग्र होती चली गयी। इन भावनाओं ने 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में महत्वपूर्ण योग दिया। 1885 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अखिल भारतीय स्वरूप का संगठन था। इसका उद्‌देश्य जाति, धर्म या वर्ण के किसी भेदभाव के बिना सभी भारतवासियों का प्रतिनिधित्व करना था।

भारतीय स्वतंत्रता के लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कांग्रेस के द्वारा जिन विभिन्न रूपों में कार्य किया गया, उसके आधार उदारवादी, उग्रवादी तथा गांधी युग के रूप में हमारे सामने आये। इनके माध्यम से भारत में अनेक आन्दोलन हुये। भारत और ब्रिटेन की बीच हितों का विरोध इन आन्दोलन का मूल आधार था। गांधी युग में तो राष्ट्रीयता जन–जन की वस्तु बन चुकी थी। बच्चे–बच्चे के मुख से स्वतंत्रता की मांग सुनने को मिलती थी।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में भारत में अपूर्व राष्ट्रीय जागृति की लहर आयी, और वह दो धाराओं में बंट गयी। एक उग्रवादी राष्ट्रवाद की धारा प्रभावित हुई जो 'निष्क्रिय प्रतिरोध' के सिद्धान्त पर ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध संघर्ष करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त नवयुवकों का एक ऐसा वर्ग था जिन्हें उग्रवादियों के शान्ति पूर्ण संघर्ष में विश्वास नहीं था। वे हिंसा तथा आतंक द्वारा भयभीत करके विदेशी शासन का समूल नष्ट करना चाहते थे। इस प्रकार उदारवादी, उग्रवादी तथा क्रान्तिकारी सभी का लक्ष्य एक ही था, भारत की आजादी, साधन भले ही भिन्न थे और यह आन्दोलन नागरिक स्वतंत्रता के पक्षधर थे।

नवयुवकों के इस वर्ग को क्रान्तिकारी आन्दोलन का रूप दिया गया। भारतीय क्रान्तिकारियों के कार्यों की पृष्ठभूमि में एक निश्चित् दर्शन था और

उनका एक सामान्य लक्ष्य था। इन क्रान्तिकारियों के द्वारा सरकारी खजाने लूटने, सशस्त्र डकैती, हत्या और बमबाजी के जो भी कार्य किये जाते थे वे सभी भारत के लिये स्वतंत्रता प्राप्त कने की निश्चित और व्यापक योजना के अंग थे। इन क्रान्तिकारियों के उद्देश्य भारत में ब्रिटिश शासन को समाप्त कर स्वतंत्रता प्राप्त करना और निम्न वर्ग के प्रति अन्याय पर आधारित व्यवस्था का अन्त करके एक न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना करना था।

भारत में क्रान्तिकारी संगठित होना शुरू हो गये थे। धीरे–धीरे क्रान्तिकारी आतंकवाद की दो धाराएं विकसित हुई– एक पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार तथा दूसरी बंगाल में। ये दोनों धाराएं सामाजिक बदलाव से उपजी नई सामाजिक शक्तियों से प्रभावित हुई। इसमें थे, क्रान्तिकारी रामप्रसाद 'विस्मिल' योगेश चटर्जी और शचीन्द्र नाथ सान्याल आदि। उत्तर प्रदेश के क्रान्तिकारियों के लिये 'काकोरी काण्ड' एक बड़ा आघात जरूर था, पर ऐसा नहीं जो क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिये मौत साबित हो। बल्कि इस घटना के पश्चात् क्रान्तिकारी संघर्ष के लिये और भी युवा तैयार हो गये। विजय कुमार सिन्हा, शिव वर्मा, जयदेव कपूर एवं भगत सिंह भगवतीचरण बोहरा, सुखदेव ने चन्द्रशेखर आजाद के नेतृत्व में एच.आर.ए. को फिर से कार्य शुरू करने दिया एवं ये युवा समाजवादी विचारधारा के प्रभाव में आते चले गये।

काकोरी के बाद के युग में चन्द्रशेखर आजाद के बाद उत्तर भारत के सबसे बड़े नेता तथा प्रमुख व्यक्ति सरदार भगत सिंह थे। सरदार भगत सिंह का जन्म जिस वंश में हुआ था, उसके लिये देश भक्ति या देश के लिये त्याग करना कोई नई बात नहीं थी। भगत सिंह के बाबा सरदार अर्जुन सिंह आर्य समाजी थे। तथा देशभक्ति की भावना उनमें कूट–कूट के भरी हुयी थी।

सरदार अर्जुन सिंह ने समाज सेवा और देशसेवा का जो मार्ग

प्रशस्त किया था, उसमें उनके तीनों बेटे चल पड़े थे। भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह एवं उनके छोटे भाई सरदार अजीत सिंह तथा सरदार स्वर्णसिंह अपने सच्चे देश प्रेम के लिये पंजाब में प्रसिद्ध हैं। कैद, निर्वासन तथा दरिद्रता के द्वारा इनकी देश भक्ति की कड़ी परीक्षा हो चुकी है।

जिस दिन सरदार किशन सिंह और सरदार स्वर्ण सिंह जेल से छूटे एवं सरदार अजीत सिंह के छूटने का समाचार मिला, उसी दिन भगत सिंह का जन्म हुआ। इसीलिये उनकी दादी ने उनको भाग्यों वाला कहा, जिससे उनका नाम भगत सिंह पड़ा। बचपन में ही उन्होने घर में रखी हुयी सरदार अजीत सिंह की पुस्तकों एवं पुराने समाचार पत्रों का अध्ययन किया। इस प्रकार उनके क्रान्तिकारी विचारधारा का शिलान्यास बचपन में ही हो गया।

उस समय जलियांवाला बाग का हत्याकांड, असहयोग आन्दोलन और उसका स्थगन आदि ऐसी घटनायें हुयी जिसका प्रभाव भगत सिंह पर पड़ा। और वे आंदोलन के उद्‌देश्य क्या है इस पर विचार करने लगे। इससे उनके विचारों में परिवर्तन आया और इन विचारों का विकास नेशनल–कालेज में अध्ययन के दौरान तीव्र गति से हुआ। अनेक क्रान्तिकारी पुस्तकों का अध्ययन उन्होने किया। एवं देश के लिये बलिदान देने की दिशा में उन्मुख हुये।

अपनी देशभक्ति की भावना का परिचय उन्होने गृह त्याग करके दिया एवं देश के लिये बलिदान देने की भावना से ओत–प्रोत होकर वह क्रान्तिकारी संगठन में शामिल हो गये। एक सम्पादक के रूप में उन्होने क्रान्तिकारी लेख लिखे। भगत सिंह क्रान्तिकारी दल के सदस्य के रूप में शामिल होकर उसके कार्यों में जुट गये। अतः भगत सिंह क्रान्तिकारी पार्टी के सक्रिय सदस्य बनकर, देश की स्वतंत्रता व क्रान्ति के वेदी पर अपना सर्वस्व बलिदान कने की प्रतिज्ञा कर बैठे।

कुछ समय तक उग्र और गुप्त साहित्य के माध्यम से नवयुवकों में क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार होता रहा। किन्तु भगत सिंह महसूस कर रहे थे कि वह खुले रूप में जनता के सामने आकर जनता को अपने विचारों से अवगत करायें। और अपने इसी उद्देश्य को क्रान्तिकारी पार्टी के सामने रखकर 1926 में नौजवान भारत सभा की स्थापना की। यह नौजवानों का खुला मंच था जिसके माध्यम से जलसे व भाषण हुआ करते थे।

क्रान्तिकारियों ने बम बनाना सीखा, इसीलिए जनता इन्हें 'बम पार्टी' कहती थी। 1926 में लाहौर से दशहरा बम काण्ड की घटना घटित हुयी। जिसमें पुलिस ने भगत सिंह को पकड़ा। पहली बार भगत सिंह की गिरफ्तारी इसी काण्ड में हुयी। पुलिस ने उन पर अनेकों अत्याचार किये किन्तु उन्होने अपने क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का अदभुत परिचय दिया।

क्रान्तिकारी युवा व्यक्तिगत आतंकवाद और हत्या की राजनीति छोड़कर धीरे–धीरे संगठित क्रान्तिकारी कार्यवाही में विश्वास करने लगे थे, किन्तु 30 अक्टूबर 1928 को लाहौर में साइमन कमीशन के खिलाफ प्रदर्शन के दौरान लाला लाजपतराय पर बर्बर लाठी चार्ज व उसके बाद उनकी मौत ने युवा क्रान्तिकारियों को एक बार फिर व्यक्तिगत आतंकवाद और हत्या की राह पकड़ने को मजबूर कर दिया।

युवा क्रान्तिकारियों ने शेर–ए–पंजाब के नाम से मशहूर इस महान नेता की हत्या को अपने पौरूष के लिये चुनौती समझा और उसे स्वीकार किया। 17 दिसम्बर 1928 को भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राजगुरू ने लाहौर में लाला जी पर लाठी बरसाने वालों में से एकपुलिस अधिकारी साण्डर्स की हत्या की और उसके बाद पोस्टर्स लगाये। जिसके माध्यम से उन्होने सरकार को यह ज्ञात कराया कि यह कार्य उन्होने बदला लेने के दृष्टिकोंण से किया है।

इसके पश्चात् एच.एस.आर.ए. के नेतृत्व ने जनता को यह समझाने का निर्णय किया कि उनका उद्देश्य अब बदल गया है। और अब वह जन क्रान्ति में विश्वास रखते हैं। इसी समय सरकार जनता, विशेषक मजदूरों के मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध लगाने के मकसद से दो विधेयक 'पब्लिक सेफ्टी बिल' और 'ट्रेड डिस्पूयटस बिल' पास काने की तैयारी कर रही थी। उसके प्रति विरोध जताने के लिये भगत सिंह और श्री बटुकेश्वर दत्त जी असेम्बली में बम फेकें। यह कार्य उन्होने 'बहरे कानों तक अपनी आवाज पहुंचाने के लिये' किया।

बम फेंकने का उद्देश्य अपनी गिरफ्तारी देना और अदालत को अपनी विचारधारा के प्रचार का माध्यम बनाना था। जिससे जनता उनके विचारों और राजनीतिकदर्शन को जान सकें। भगत सिंह और साथियों पर अदालत में मुकदमा चला। वे अदालत में जो बयान देते, अगले दिन वे अखबारों में छपते, जिससे पूरे देश में उनका प्रचार होता। अदालत में क्रान्तिकारी इंकलाब जिन्दाबाद, साम्राज्यवाद मुर्दाबाद, सर्वहारा जिन्दाबाद के नारे लगाते और गीत गाते।

बेडियों में जकड़े इन युवा बलिदानियों के ये नारे और गीत जनता को झकझोर गये।

अहिंसक आन्दोलन में विश्वास रखने वाले भी अब इन क्रान्तिकारियों के प्रति सहानुभूति रखने लगे और भगत सिंह का नाम हर व्यक्ति की जुबान पर आ गया।

क्रान्तिकारी भगत सिंह और उनके साथियों ने जेल की अमानवीय दशाओं में सुधार के लिये अनशन किया, जिससे भारतीय जनता क्षुब्ध और उद्वेलित हुयी। इन क्रान्तिकारियों की मांग थी कि उन्हें राजनीतिक बन्दी समझा

जाये, अपराधी नहीं। इन हड़ताली क्रान्तिकारियों बंदियों के साथ पूरे देश में समर्थन की लहर व्याप्त हो गयी।

लाहौर षड़यंत्र व ऐसे ही कई अन्य मामलों में अनेक क्रान्तिकारियों को लंबी सजायें दी गई। भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरू को फांसी की सजा सुनाई गई। फांसी की खबर सुनक पूरा देश स्तब्ध हो गया। हजारों आंखे बहुत रोई, व दूर–दराज के गांवों में भी उदासी की लहर दौड़ गई। 23 मार्च 1931 में इन तीनों को फांसी दी गई। फांसी के फंदे को चूमते हुये फांसी के तख्ते पर ये नौजवान क्रान्तिकारी गीत गाते हुये शहीद हो गये।

भगत सिंह ने बहुत कुछ लिखा है, बहुत कुछ कहा है, व बहुत कुछ किया है। भगत सिंह के इरादे, कारनामे व उनकी कामयाबी का पूरा रेखाचित्र जो हमने लिया है उससे भंगत सिंह पूरी ऊंचाइयों के साथ हमारे सामने हैं। भगत सिंह अपने प्रताप के साथ ऊंचाइयों पर पहुंचकर भारत माता को अर्पित हो गये।

शहीद होने से पहले भगत सिंह ने कहा था कि ब्रिटिश हुकूमत के लिये मरा हुआ भगत सिंह जीवित भगत सिंह से ज्यादा खतरनाक होगा। मुझे फांसी हो जाने के बाद मेरे क्रान्तिकारी विचारों की सुगन्ध हमारे इस मनोहर देश के वातावरण में व्याप्त हो जायेगी। वह नौजवानों को मदहोश करेगी और वे आजादी और क्रान्ति के लिये पागल हो उठेगें। नौजवानों का यह पागलपन ही ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को विनाश की कगार पर पहुंचा देगा। यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

मैं बेसब्री के साथ उस दिन का इन्तजार कर रहा हूं। जब मुझे देश के लिये मेरी सेवाओं और जनता के लिये मेरे प्रेम का सर्वोच्च पुरस्कार मिलेगा।

भगत सिंह की भविष्यवाणी सत्य साबित हुई। उनका नाम मौत को चुनौती देने वाले साहस, बलिदान, देशभक्ति और संकल्पशीलता का प्रतीक बन गया। समाजवादी समाज की स्थापना का उनका सपना शिक्षित युवकों का सपना बन गया और 'इंकलाब जिन्दाबाद' का उनका नारा समूचे राष्ट्र का युद्धनाद हो गया। कारागार कोड़े और लाठियों के प्रहार उनके मनोबल नहीं तोड़ सके।

1945–46 के दौर में जब विश्व ने एक सर्वथा नये भारत को करवटें बदलते देखा। मजदूर, किसान, नवयुवक, नौसेना, थलसेना, वायुसेना और पुलिस तक सब कड़ा प्रहार करने के लिये आतुर थे। बलिदान और यातनाओं को सहन करने की जो भावना 1930–31 में थोड़े से नौजवानों में थी, अब समूचे राष्ट्र की जनता में दिखाई देने लगी।

1947 में देश आजाद हो गया किन्तु आज वर्षों बाद भी भगत सिंह के बलिदान को भुलाया नहीं जा सकता। भगत सिंह क्रान्तिकारी से क्रान्ति के प्रतीक बन गये।

****

परिशिष्ट

19 अक्टूबर 1968 में
प्रसारित डाक टिकट
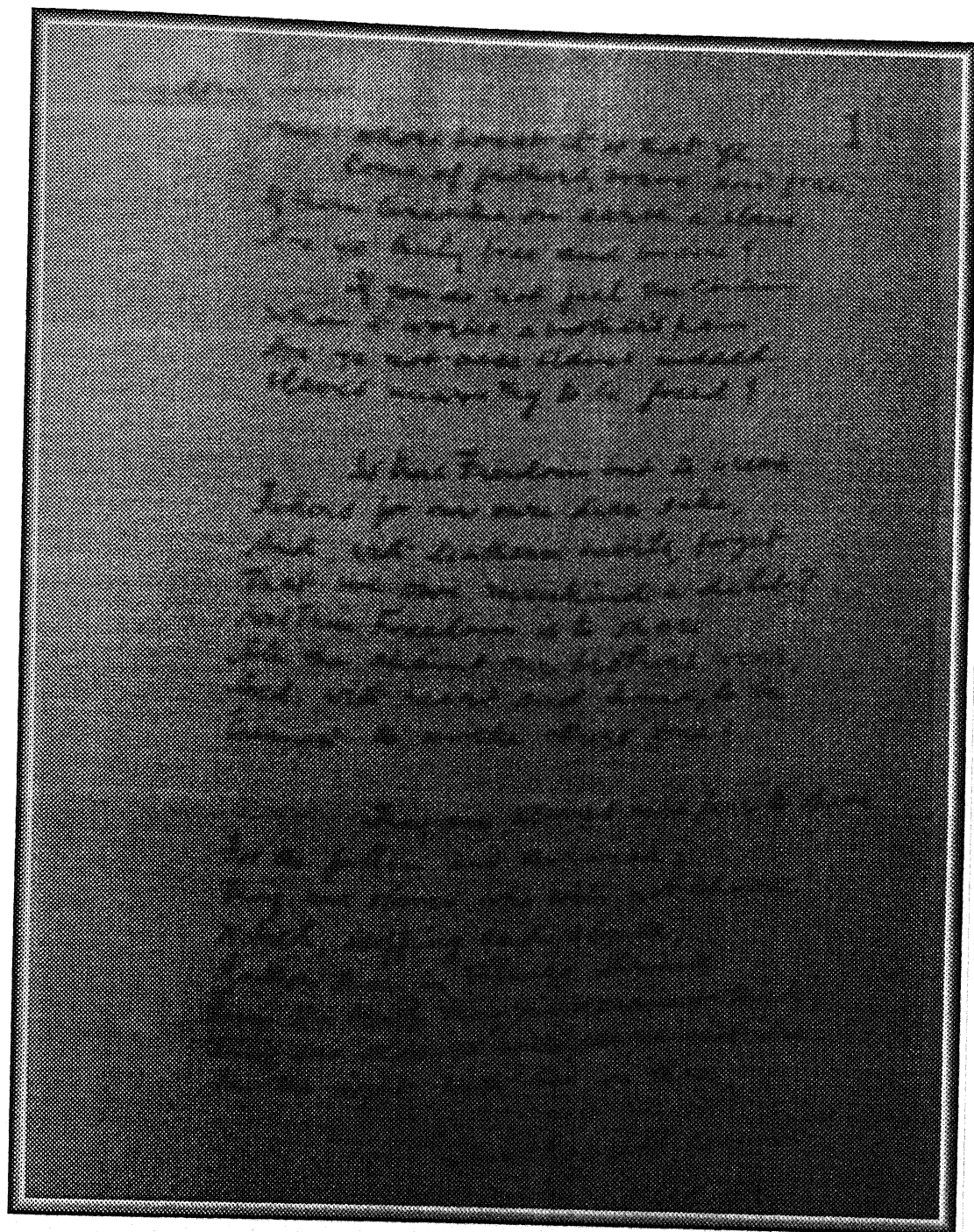
भगत सिंह की अंगरेजी हस्तलिपि

भगत सिंह की उर्दू हस्तलिपि

परिशिष्ट-एक
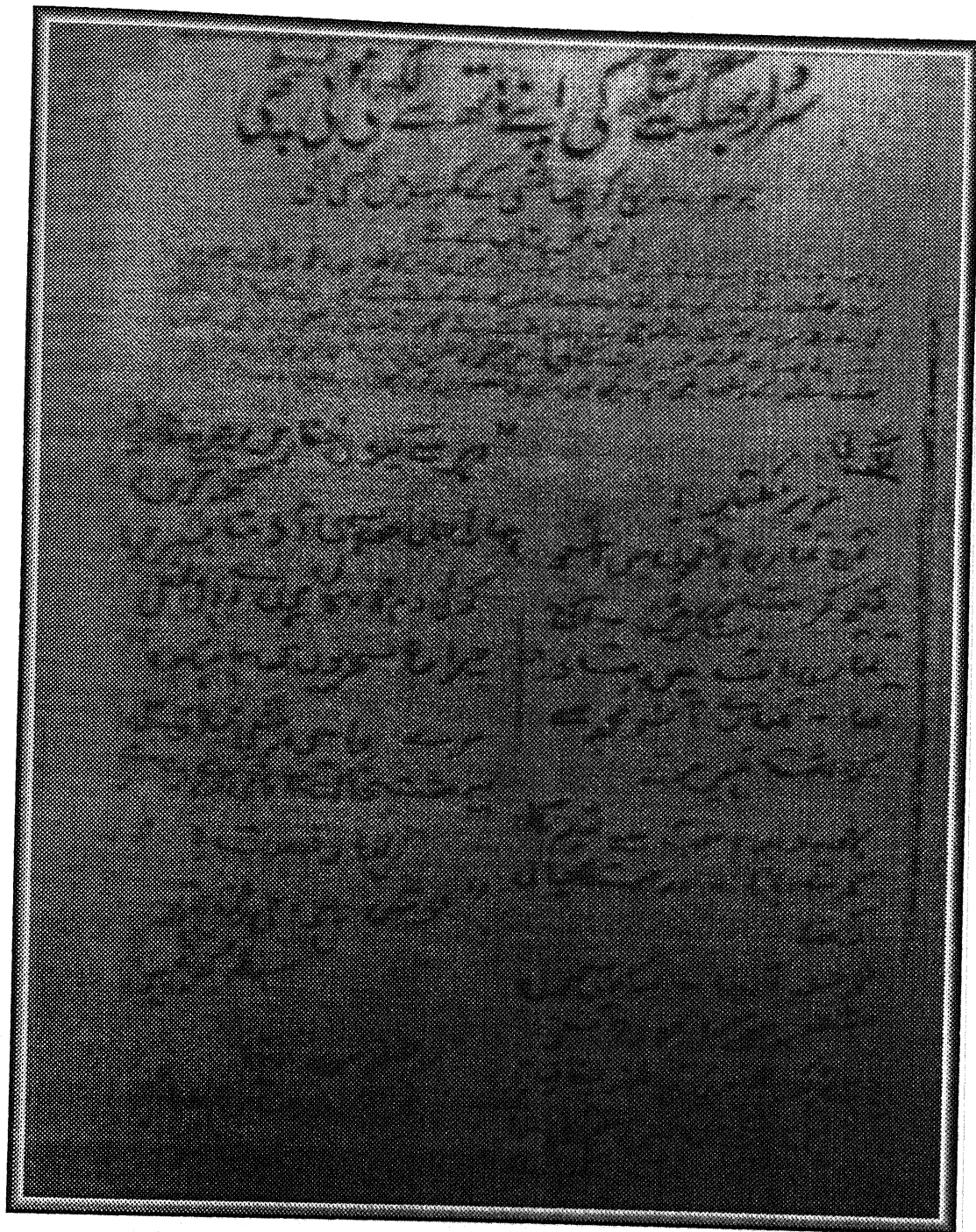
एक संवाद- क्रांतिदर्शी श्री कुलतार सिंह जी से

इस शोध प्रबन्ध के प्रथम परिशिष्ट में उस महान विभूति की प्रेरणा–वाणी को संदर्भित करना प्रासंगिक होगा जिसकी भावना मात्र राष्ट्रभक्ति को जागृत कर देती है। सरदार भगत सिंह के छोटे भाई श्री कुलतार सिंह जी से दूरभाष पर संवाद इस प्रबन्ध भूमि की प्रेरणा का महत् स्रोत है। इस संवाद में जिस मुख्य पक्ष पर चर्चा हुई, उसमें भगत सिंह के जीवन का प्रश्न प्रधान रहा। भगत सिंह के व्यक्तित्व, जीवन संदर्भों, स्रोत सामग्री आदि पर लगभग 20–25 मिनट तक वार्ता हुई। उनका यह कथन कि 'भगत सिंह का जीवन भारत वर्ष के लिए ही था, परिवार के लिए नहीं' गहन भावनाओं से परिपूर्ण है। स्रोत सामग्री के प्रश्न पर उन्होने अपनी पुत्री वीरेन्द्र सिन्धु की पुस्तक– 'युगदृष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' का हवाला दिया। इसका प्रयोग इस शोध प्रबन्ध में यथा स्थान किया गया है। श्री कुलतार सिंह से संवाद के दौरान शोध हेतु विविध बिन्दुओं पर भी चर्चा हुई। इन सभी चर्चाओं को मस्तिष्क में पृष्ठभूमि रूप में रखते हुये मैने विविध संदर्भों को विवेचित किया है। इस शोध प्रबन्ध के बीच में श्री सिंह से यह वार्ता अत्यन्त प्रेरणास्पद रही। इस वार्ता के आयोजन हेतु मैं तत्कालीन माननीय सांसद हमीरपुर श्री गंगाचरण राजपूत जी के प्रति अपनी शुभ भावना प्रकट करती हूं, जिनके प्रयास से यह संवेदनात्मक संवाद संभव हुआ।

परिशिष्ट-दो

स्पेशल मजिस्ट्रेट, लाहौर के नाम

द्वारा, सुपरिण्टेण्डेण्ट, सेन्ट्रल जेल, लाहौर

11 फरवरी, 1930

मिस्टर मजिस्ट्रेट,

4 फरवरी, 1930 के सिविल एण्ड मिलिट्री गजट में प्रकाशित आपके बयान के सम्बन्ध में यह जरूरी जान पड़ता है कि हम अपने अदालत में न आने के कारणों से आपको परिचित करायें, ताकि कोई गलतफहमी और गलत प्रस्तुति सम्भव न हो।

पहले हम यह कहना चाहेगें कि हमने अभी तक ब्रिटिश अदालतों का बायकाट नहीं किया है। हम मि. लुइस की अदालत में जा रहे हैं, जो हमारे विरूद्ध जेल एक्ट धारा 22 के अधीन मुकदमें की सुनवाई कर रहे हैं। यह घटना 29 जनवरी को आपकी अदालत में घटित हुई थी। लाहौर षड़यंत्र केस के सम्बन्ध में यह कदम उठाने के लिए हमें विशेष परिस्थितियों ने मजबूर किया है। हम शुरू से ही महसूस कते रहे हैं कि अदालत के गलत रवैये द्वारा या जेल के अथवा अन्य अधिकारियों द्वारा हमारे अधिकारों की सीमा लांघकर हमें निरन्तर जान–बूझकर परेशान किया जा रहा है ताकि हमारी पैरवी में बाधाएं डाली जा सकें। कुछ दिन पहले जमानत की दरख्वास्त में हमने अपनी तकलीफें आपके सामने रखी थीं, लेकिन उस दरख्वास्त को कुछ कानूनी नुक्तों पर नामंजूर कते

हुये आपने बन्दियों की तकलीफों का जिक्र करना जरूरी नहीं समझा, जिनके आधार पर जमानत की दरख्वास्त दी गयी थी।

हम महसूस करते हैं कि मजिस्ट्रेट का पहला व मुख्य फर्ज यह होता है कि उसका व्यवहार निष्पक्ष व दोनों पक्षों के ऊपर उठा होना चाहिए। यहां तक कि उस दिन माननीय जस्टिस कोर्ट ने यह रूलिंग दी थी कि मजिस्ट्रेट को दूसरी सबसे महत्वपूर्ण बात अपने सामने रखनी चाहिए कि विचाराधीन कैदी को अपनी पैरवी के सम्बन्ध में किसी मुश्किल का सामना न करना पड़े और यदि कोई मुश्किल हो तो उसे दूर करना चाहिए, अन्यथा पूरा मुकदमा एक मजाक बनकर रह जाता है। लेकिन ऐसे महत्वपूर्ण मुकदमे में मजिस्ट्रेट का व्यवहार इससे उल्टा रहा है, जिसमें 18 नवयुवकों पर गम्भीर आरोपों– जैसे हत्या, डकैती और षड़यंत्र– के अधीन मुकदमा चलाया जा रहा है, जिनसे संभव है उन्हें मृत्युदंड दिया जाये। जिन प्रमुख मुद्दों पर हम आपकी अदालत में न आने के लिए विवश हुए हैं, वे इस तरह हैं–

विचाराधीन कैदियों में से अधिकांश दूर–दराज प्रान्तों से है और सभी मध्य वर्गीय लोग हैं। ऐसी स्थिति में उनके सम्बन्धियों द्वारा उनकी पैरवी के लिए बार–बार आना न सिर्फ बहुत मुश्किल है, बल्कि बिल्कुल असम्भव है। वे अपने कुछ दोस्तों से मुलाकात करना चाहते थे, जिन्हें वे अपनी पैरवी की सभी जिम्मेदारियां सौंप सकते थे। साधारण बुद्धि का भी यही तकाजा है कि उन्हें मुलाकात करने का हक हासिल है, इस महसद के लिए बार–बार प्रार्थना की गयी, लेकिन सभी प्रार्थनाएं अनसुनी रहीं।

श्री बी0के0 दत्त बंगाल के रहने वाले हैं और श्री कमलनाथ तिवारी बिहार के। दोनों अपनी–अपनी मित्र कुमार लज्जावती व श्रीमती पार्वती से भेंट

करना चाहते थे। लेकिन अदालत ने उनकी दरख्वास्त जेल–अधिकारियों को भेज दी और उन्होने यह कहक दरख्वास्त रद्द कर दी कि मुलाकात सिर्फ सम्बन्धियों व वकीलों से ही हो सकती है। यह मामला बार–बार आपके ध्यान में लाया गया, लेकिन ऐसा कोई कदम नहीं उठाया गया, जिससे बन्दी पैरवी के लिए आवश्यक प्रबन्ध कर सकते। बाद में उन्हें इनका वकालतनामा हासिल करने पर भी मुलाकात करने की आज्ञा नहीं दी गयी और यहां तक कि मजिस्ट्रेट ने जेल–अधिकारियों को यह लिखने से भी इन्कार कर दिया कि बन्दी उसकी ओर से चलाये जा रहे मुकदमें की पैरवी के सम्बन्ध में इन मुलाकातों की मांग कर रहे थे और इस प्रकार बन्दी ऊपर की अदालत में जाने योग्य नहीं रहे। लेकिन मुकदमें की सुनवाई जारी रही। इन परिस्थितियों में बन्दी बिल्कुल विवश थे और उनके लिए मुकदमा मजाक से अधिक कुछ नहीं था। यह बात नोट कने योग्य है कि दूसरे बन्दियों में भी अधिकांश की ओर से कोई वकील पेश नहीं हो रहा था।

मेरा कोई वकील नहीं है और न ही मैं पूरे समय के लिए किसी को वकील रख सकता हूं। मैं कुछ नुक्तों सम्बन्धी कानूनी परामर्श चाहता हूं और एक विशेष पड़ाव पर मैं चाहता था कि वे (वकील) कार्रवाई को स्वयं देखें, ताकि अपनी राय बनाने के लिए वे बेहतर स्थिति में हों, लेकिन उन्हें अदालत में बैठने तक की जगह नहीं दी गयी। हमारी पैरवी रोकने के लिये, हमें परेशान करने के लिए क्या सम्बन्धित अधिकारियों की यह सोची–समझी चाल नहीं थी? वकील अपने सायलों (प्रार्थियों) के हितों को देखने के लिये अदालत में आता है, जो न तो स्वयं उपस्थित होते हैं और न उनका कोई प्रतिनिधि वहां होता है। इस मुकदमें की ऐसी कौन–सी विशेष परिस्थितियां हैं, जिससे मजिस्ट्रेट वकीलों के प्रति ऐसा सख्त रवैया अपनाने पर मजबूर हुए? इस प्रकार हर उस वकील की हिम्मत तोड़ी गयी जो बन्दियों की मदद के लिए बुलाये जा सकते थे। श्री

अमरदास को पैरवी (डिफेंस) की कुर्सी पर बैठने की इजाजत देने की क्या तुक थी, जबकि वे किसी भी पक्ष का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे थे और न ही उन्होने किसी को कानूनी परामर्श दिया। अपने मुख्तारों से मुलाकातों के सम्बन्ध में मुझे कानूनी सलाहकार से विचार–विमर्श करना था और इसी नुक्ते को लेकर हाईकोर्ट जाने के लिये उनसे कहना था। लेकिन उनके साथ इस सम्बन्ध में बात करने का मुझे कोई अवसर ही नहीं मिला और कुछ न हो सका। इस सबका क्या मतलब है? यह दिखाकर कि मुकदमा कानून के अनुसार चलाया जा रहा है, क्या लोगों की आंखों में धूल नहीं झोंकी जा रही? अपने बचाव का इन्तजाम करने के लिए बन्दियों को कतई कोई अवसर नहीं दिया गया। इस बात के खिलाफ हम रोष प्रकट करते हैं। यदि सब कुछ उचित ढंग से नहीं किया जाता तो इस तमाशे की कोई जरूरत नहीं है। न्याय के नाम पर हम अन्याय होता नहीं देख सकते। इन परिस्थितियों में हम सभी ने सोचा किया तो हमें अपनी जिन्दगी बचाने का उचित अवसर मिलना चाहिए, और या हमें हमारी अनुपस्थिति में चले मुकदमें में हमारे खिलाफ दी सजाओं को भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए।

तीसरी बड़ी शिकायत अखबारों के बांटने सम्बन्धी हैं। विचाराधीन कैदियों के कभी भी दण्ड प्राप्त कैदी नहीं माना जाना चाहिए और यह रोक उन पर तभी लगायी जा सकती जब उनकी सुरक्षा के लिए बेहद जरूरी हो। इससे अधिक इसे उचित नहीं माना जा सकता। जमानत पर रिहा न हो सकने वाले बन्दी को कभी भी दण्ड के तौर पर कष्ट नहीं देने चाहिए। सो प्रत्येक शिक्षित विचाराधीन कैदी को कम से कम एक अखबार लेने का अधिकार है। अदालत में 'एक्जीक्यूटिव' कुछ सिद्धान्तों पर हमें हर रोज एक अंग्रेजी अखबार देने के लिये सहमत हुई थी। लेकिन अधूरी चीजें न होने से भी बुरी होती हैं। अंग्रेजी न

जानने वाले बन्दियों के लिए स्थानीय अखबार देने के अनुरोध व्यर्थ सिद्ध हुये। अतः स्थानीय अखबार न देने के आदेश के विरूद्ध रोष प्रकट करते हुये हम दैनिक ट्रिब्यून लौटाते रहे हैं।

इन तीन आधार पर हमने 29 जनवरी को अदालत में आने से इन्कार कने की घोषणा की थी। ज्यों ही यह मुश्किलें दूर कर दी जायेगी, हम बाखुशी अदालत में आयेगें।

परिशिष्ट-तीन

गवाहियों की अपेक्षा रसगुल्ले ज्यादा जरूरी

आज अदालत में भगत सिंह ने शिकायत की है कि जब बचाव समिति के एक सदस्य दोपहर में भोजन के लिए कुछ वस्तुएं ला रहे थे तब खाने योग्य वस्तुएं अदालत में नहीं लाने दी गयीं।

दोपहर में भोजन के बाद कथित अपराधी जीतन सान्याल ने मजिस्ट्रेट से शिकायत की कि उनके लिए बंगाल से रसगुल्ले का पार्सल आया था, लेकिन जेल–अधिकारियों ने वह इस तरह कुचल डाला कि वे खाने योग्य न रहें।

सरदार भगत सिंह (मजिस्ट्रेट से) : रसगुल्ले बाहर पड़े हैं। क्या आप उनका मुआयना करने का कष्ट करेंगे। आहा! एक खूबसूरत दृश्य है! बस जरा अवलोकन कर लें! इन गवाहियों की अपेक्षा रसगुल्ले हमारे लिए ज्यादा जरूरी हैं।

जतिन सान्याल : सभी चीजें बहुत बेहूदा हाल में है। क्या आप इसे तर्कसंगत कहते हैं।

सरदार भगत सिंह : यह (मजिस्ट्रेट) बिल्कुल तर्कविहीन हैं।

जतिन सान्याल : यह हम किसे वापस करें, आपको या जेल–अधिकारियों को?

सरदार भगत सिंह : लेकिन इसकी कीमत कौन देगा? हमारे दोस्त ने काफी रकम खर्च की है इस पर।

मजिस्ट्रेट : यह बात जेल–अधिकारियों के साथ सम्बन्ध रखती है।

(ट्रिब्यून, लाहौर, 9 अप्रैल 1930 में प्रकाशित)

(भगत सिंह और उनकी साथी मुकद्में के परिणाम से पूरी तरह परिचित थे और मिलने वाली सजाओं की ओर से बिल्कुल बेपरवाह। क्योंकि वे अपने विचार जनता तक ले जाने और लोगों को ऐतिहासिक जिम्मेदारी के लिये तैयार कना चाहते थे, इसलिये यह भी इच्छा रखते थे कि मुकदमें की कार्रवाई धीमी गति से आगे बढ़ें, ताकि जनता तक उनके विचार पहुंच सकें। लेकिन सरकार खीझ रही थी। आखिर 1 मई, 1930 को एक विशेष अध्यादेश द्वारा एक विशेष ट्रिब्यूनल स्थापित किध्या गया। उस अध्यादेश के बारे में बनाये गये सरकारी बहाने का उत्तर भगत सिंह ने 2 मई, 1930 को प्रस्तुत निम्नलिखित दस्तावेज में दिया। 1–सं.)

परिशिष्ट- चार

भगत सिंह का पत्र अपने पिता के नाम

प्यारे पिताजी,

मुझे यह जानक हैरानी हुई कि आपने स्पेशल ट्रिव्यूनल को मेरे लिये स्पष्टीकण की दरख्वास्त पेश की है। यह खबर इतनी दुखाद है कि मैं इसे खामोशी से बरदाश्त नहीं कर सकता। इस खबर ने मेरी मानसिक शान्ति भंग कर दी है। मैं नहीं समझ सकता कि मौजूदा हालात में इस मसले पर आप कैसे इस किस्म की दरख्वास्त दे सकते हैं।

आपका बेटा होने के नाते मैं आपकी पैतृक भावनाओं का पूरा एहतेराम करता हूं। लेकिन उसके बावजूद मैं समझता हूं कि आपको मेरे साथ परामर्श किये बिना मेरे विषय में कोई प्रार्थना पत्र देने का अधिकार न था।

आप जानते हैं कि राजनैतिक क्षेत्र में मेरे विचार आपसे सर्वथा भिन्न हैं। मैं आपकी सहमति या असहमति का विचार किये बिना ही स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करता रहा हूं। मुझे विश्वास है कि आपको यह बात स्मरण होगी कि आप मुझे आरम्भ से ही यह बात मना लेने के लिये प्रयत्न करते रहे हैं कि मैं अपना मुकदमा समझदारी से लड़ें एवं अपना बचाव ठीक रूप से उपस्थित करूं। यह बात भी आपकी जानकारी में है कि मैं सदैव इसका विरोध करता रहा हूं। मैने अभी अपने बचाव के लिये स्पष्टीकण देने की इच्छा नहीं प्रकट की और न मैने कभी इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार ही किया है। यह बात एक गलत दृष्टिकोंण का परिणाम थी या मेरे पास इन कार्यों के प्रमाण में उपस्थित कने के लिये कोई तर्क न थे, यह एक ऐसी बात है जिस पर इस समय विचार नहीं किया जा सकता।

आप जानते हैं कि इस मुकदमें में हम एक निश्चित नीति पर चल रहे हैं। मेरा प्रत्येक कार्य, उस नीति से मेरे सिद्धान्तों एवं हमारे कार्यक्रम से सामन्जस्य रखते हुये होना चाहिये। आज परिस्थिति सर्वथा भिन्न है, परन्तु परिस्थिति इसके अतिरिक्त कुछ और होती, तो भी मैं अन्तिम व्यक्ति होता जो अपना बचाव उपस्थित करता। इस सारे मुकदमें में मेरे सामने एक ही विचार था और वह यह कि यह जानते हुये भी हमारे विरूद्ध भयानक अपराध लगाये गये हैं, हम उस ओर से पूर्णतया अवहेलना की वृत्ति बनाएं रखें। मेरा यह दृष्टिकोंण रहा है कि समस्त राजनैतिक कार्यकर्ताओं को ऐसी दशा में अदालत की अवहेलना और उपेक्षा दिखानी चाहिये और उनको जो कठोर से कठोर दण्ड दिया जाये, वह उन्हें हंसते–हंसते सहना चाहिये। इस पूरे मुकदमें में हमारी नीति इसी सिद्धान्त पर आधारित रही है। हम ऐसा उकने में सफल हुये हैं या नहीं, यह निर्णय कना मेरा कार्य नहीं है। हां हम स्वार्थपरता को छोड़कर अपना काम करते रहे हैं।

वायसराय ने लाहौर षड़यंत्र केस आर्डिनेंस जारी करते हुये उसके साथ जो बयान जारी किया था, उसमें उन्होने कहा था कि इस षड़यंत्र के अपराधी शान्ति, सुव्यवस्था एवं कानून को समाप्त करने का प्रयत्न कर हैं। इससे जो वातावरण उत्पन्न हुआ उसने हमें यह अवसर दिया कि हम जनता के समक्ष यह बात उपस्थित करें कि वह देखें कि शान्ति, सुव्यवस्था और कानून समाप्त करने का प्रयास हम कर रहें या हमारे विरोधी। इस बात पर भिन्न दृष्टिकोंण हो सकते हैं।

सम्भवतया आप भी इन लोगों में से एक हैं, जो इस बात में हमसे विरूद्ध मत रखते हैं, परन्तु इसको यह आशय नहीं कि आप मेरी ओर से ऐसे प्रयत्न बिना मेरे साथ परामर्श किये करते रहें। मेरा जीवन इतना मूल्यवान नहीं हैं। जितना आप समझते हैं। कम से कम मेरे लिये इस जीवन का इतना महत्व

नहीं है कि इसे सिद्धान्तों की अमूल्य निधि बलिदान करके बचाया जाये। मेरे और भी साथी हैं, जिनके अभियोग इनते ही भारी हैं जितना मेरा अभियोग। हमने एक सम्मिलित नीति अपनायी हैं और हम अन्तिम क्षण तक एक–दूसरे के साथ कन्धा मिलाकर खड़े रहेगें। हमें इस बात की चिन्ता नहीं है कि हमें व्यक्तिगत रूप से इस निश्चय का कितना मूल्य चुकाना पड़ता है।

पिताजी मैं बड़ी चिन्ता अनुभव क रहा हूं। मुझे डर है कि आप पर दोष लगाते हुये या इससे भी अधिक आपके इस कार्य की निन्दा कार्य हुये मैं कहीं सभ्यता की परिधि को न लांघ जाऊं तथा मेरे शब्द अधिक कठोर न हो जायें, फिर भी मैं स्पष्ट शब्दों में इनती बातें अवश्य कहूंगा कि यदि कोई दूसरा व्यक्ति मेरे प्रति इस प्रकार का बर्ताव करता, तो मैं उसे देशद्रोही से कुछ कम न समझता, परन्तु आपके लिए मैं एक बात नहीं कह सकता।

बस इतना ही कहूंगा कि एक कमजोरी थी, निम्न कोटि की मानसिक दुर्बलता। यह एक ऐसा समय था जब हम सबकी परीक्षा हो रही थी पिताजी मैं यह कहना चाहता हूं कि आप इस परीक्षा में असफल रहे है। मैं जानता हूं कि आपने अपना समस्त जीवन भारत की स्वतंत्रता के लिये न्यौछावर कर दिया है, परन्तु इस महत्वपूर्ण घड़ी में आपने ऐसी दुर्बलता क्यों दिखलायी, मैं यह बात समझ नहीं पाया।

अन्त में मैं आपको और अपने दूसरे मित्रों एवं मेरे मुकदमें में सहानुभूति रखने वाले सभी व्यक्तियों को मैं बता देना चाहता हूं किमैं आपके इस कार्य को अच्छी दृष्टि से नहीं देखता। मैं आज भी किसी मूल्य पर अपना बचाव उपस्थित करने के पक्ष में नहीं हूं। यदि न्यायालय हमारे कुछ साथियों की ओर से स्पष्टीकरण इत्यादि के बारे में उपस्थित की गई प्रार्थना स्वीकार क लेता, तो

भी मैं कोई स्पष्टीकण उपस्थित न करता। भूख हड़ताल के दिनों में मैने अदालत को जो प्रार्थना पत्र दिया था और उन दिनों मैने जो इन्टरव्यू दिया था, उसका अर्थ गलत समझा गया और समाचार पत्रों में यह प्रकाशित क दिया गया कि मैं अपना स्पष्टीकरण देना चाहता हूं। इसके विपरीत मैं तो किसी भी अवसर पर बचाव उपस्थित करने के लिये सहमत नहीं था। आज भी मेरे विचार वहीं हैं जो पहले थे। वोर्स्टल जेल में बंदी मेरे साथी इस बात को मेरी ओर से पार्टी के साथ विद्रोह एवं विश्वासघात समझते होगें। मुझे उनके सामने अपनी स्थिति स्पष्ट कने का अवसर नहीं मिल सकेगा।

मैं चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में जो कठिनाइयां उत्पन्न हो गयी हैं, उनके विषय में लोगों को वास्तविकता का ज्ञान हो जाये। अतः मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप शीघ्र ही यह पत्र प्रकाशित करवा दें।

आपका तावेदार–

भगत सिंह

दूसरे लाहौर षड़यंत्र केस के अभियुक्तों के नाम पत्र

साथियो,

जिन्दा रहने की ख्वाहिश कुदरती तौर पर मुझमें भी होनी चाहिए। मैं इसे छिपाना नहीं चाहता, लेकिन मेरा जिन्दा रहना मशरुत सशर्त है, मैं कैद होकर या पाबन्द होकर जिन्दा रहना नहीं चाहता।

मेरा नाम हिन्दुस्तानी इन्किलाबी पार्टी का मरकजी निशान बन चुका है और इन्किलाब पसन्द पार्टी के आदर्शों और बलिदानों ने मुझे बहुत ऊंचा कर दिया है। इतना ऊंचा कि जिन्दा रहने की सूरत में इससे ऊंचा मैं हरगिज नहीं हो सकता।

आज मेरी कमजोरियां लोगों के सामने नहीं हैं। अगर मैं फांसी से बच गया तो वो जाहिर हो जायेंगी और इन्किलाब का निशान मद्धिम पड़ जायेगा या शायद मिट ही जाये, लेकिन मेरे दिलेराना ढंग से हंसते–हंसते फांसी पाने की सूरत में हिन्दुस्तानी माताएं अपने बच्चों के भगत सिंह बनने की आरजू किया करेंगी और देश को आजादी के लिए बलिदान होने वालों की तादाद इतनी बढ़ जायेगी कि इन्किलाब को रोकना इम्पीरियलिज्म की तमामतर कोशिकों के भी बस की बात न रहेगी।

हां, एक विचार आज भी चुटकी लेता है। देश और इन्सानियत के लिये जो कुछ हसरतें मेरे दिल में थीं, उनका हजारवां हिस्सा भी मैं पूरा नहीं क पाया। अगर जिन्दा रह सका तो, शायद इनको पूरा कने का मौका मिलता और मैं अपनी हसरतें पूरी कर सकता।

इसके सिवा कोई लालच मेरी दिल में फांसी से बच रहने के लिये कभी नहीं आया। मुझसे ज्यादा खुशकिस्मत कौन होगा? मुझे आजकल अपने आप पर बहुत नाज है। अब तो बड़ी बेताबी से आखिरी इन्तेहां अंतिम परीक्षा का इन्तजार है। आरजू है किया और करीब हो जाये।

आपका साथी

भगत सिंह

मौत का परवाना

3648/ Bhagat Singh death

565-w
4-4-31
Three Death Warrants

WARRANT OF EXECUTION ON SENTENCE OF DEATH.

~~Section 381 of the Criminal Procedure Code.~~
Sections 8 and 11 of Ordinance No: III of 1930.
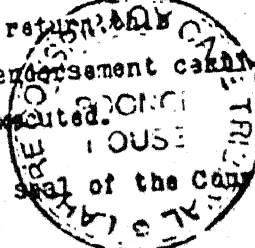
In the Court of the LAHORE CONSPIRACY CASE TRIBUNAL, Lahore, constituted under Ordinance No: III of 1930.

TO THE SUPERINTENDENT OF THE CENTRAL JAIL AT LAHORE.

WHEREAS Bhagat Singh, son of Kishen Singh, resident of Khawasrian, Lahore, one of the prisoners in the Lahore Conspiracy Case, having been found guilty by us of offences under section 121 and section 302 of the Indian Penal Code and also under section 4(b) of the Explosive Substances Act read with section 6 of that Act and with section 120-B of the Indian Penal Code at a trial commencing from the 5th: May, 1930, and ending with the 7th October, 1930, is hereby sentenced to death.

This is to authorise and require you, the said Superintendent, to carry the said sentence into execution by causing the said BHAGAT SINGH to be hanged by the neck until he be dead at Lahore on the 27th: day of October, 1930, and to return this warrant to the High Court with an endorsement certifying that the sentence has been executed.

Given under our hands and the seal of the Court, this 7th day of October, 1930.

PRESIDENT OF THE TRIBUNAL.

MEMBER OF THE TRIBUNAL.　　MEMBER OF THE TRIBUNAL.

फांसी दे दी गयी
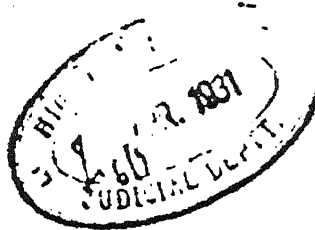
I hereby certify that the sentence of death passed on Bhagat Singh has been duly executed, and that the said Bhagat Singh was accordingly hanged by the neck till he was dead, at Lahore C. Jail on Monday the 23rd day of March 1931; at 7 P.M. that the body remained suspended for a full hour, and was not taken down until life was ascertained by a medical officer to be extinct; and that no accident, error or other misadventure occurred.

[signature] Major I.M.S.

Superintendent of the Jail at

[signature]
DI

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. युगदृष्ट भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे — वीरेन्द्र सिन्धु
2. भगत सिंह "एक ज्वलंत इतिहास" — हंसराज रहवर
3. बन्दी जीवन — शचीन्द्र नाथ सान्याल
4. भगत सिंह और उनका युग — मन्मथनाथ गुप्त
5. भगत सिंह से चार मुलाकातें पंजाबी — सोहन सिंह जोश
6. अमर शहीदों के संस्मरण — राजाराम शास्त्री
7. अमर शहीद सरदार भगत सिंह — जितेन्द्र नाथ सान्याल
8. यश की धरोहर — भगवान दास माहोर
9. शहीदे आजम की जेल नोटबुक — अनुवाद विश्वनाथ मिश्र
10. हेगेल के न्याय दर्शन की समालोचना का प्रयास — "कार्ल मार्क्स" से उद्धत
11. अंग्रेजी दार्शनिक : महत्वपूर्ण कृतियां : दप्रिंसिपल्स आफ साइकोलाजी और फर्स्ट प्रिंसिपल्स — हर्बर्ट स्पेंसर (1820–1903)
12. फ्रांसीसी विचारक — अगस्त काम्टे (1798–1857)
13. "सत्ता के बारे में" — लेनिन की रचना

14. ''सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्स्की	लेनिन
15. तोमास्सो कैम्पाबेला (1568–1639)	इतावल
16. ब्रिटिश दार्शनिक राजनीतिक चिन्तक	जान आस्टिन (1811–1680)
17. लहू है कि तब भी गाता है	'पाश' चमनलाल व कत्यायनी
18. विचारों की सान पर	सत्यम वर्मा
19. शहीद भगत सिंह की चुनी हुई कृतियां	शिव वर्मा
20. ''सरदार भगत सिंह'' पत्र और दस्तावेज	वीरेन्द्र सिन्धु
21. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष	प्रो0 विपिन चन्द्र
22. भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज	जगमोहन सिंह चमन लाल
23. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास	मन्मथनाथ गुप्त
24. भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास	श्री गुरूमुख निहाल सिंह
25. भारतीय राजनीति	राम गोपाल
26. भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन	आर0सी0 अग्रवाल

BIBLIOGRAPHY

	Title	Author
1.	Indian Constitutional Document	Mukherjee
2.	Govt. of India : History Survey	Ilbert
3.	The cambridge history of India	Robet
4.	India Administration to the down of responsible Government	Thakore
5.	History of British India	P.E. Robert
6.	Indian polity	Chesney
7.	History of India	Mill
8.	Oxford history of India	Smith
9.	Historical Introduction to the Govt. of India	Ilbert
10.	A short history of India	Havell
11.	National polities and1957 Elections in India	Poplai, S.H.
12.	Indian political parties	Raj Kumar, N.V.
13.	The Congress Ideology and programe	Sadiq Ali
14.	History of the India Liberal party	Shukla, B.S.

15.	Party polities in India, The Devlopment of a multiparty system	Welner, M
16.	A Nation in Making	S.N. Bannerjee
17.	Indian politics sine the mutiny	C.Y. Chintamani
18.	The Indian problem	Coupland
19.	R. Palme Dutt.	India Today
20.	Rajendra Prasad	India Divided
21.	History of India from (1858-1918)	Dodurell
22.	The Communal Triangle in India	Mehta and Patwardhan
23.	Renasent India	Dr. Zacharia
24.	Discovery of India	J. Nehru
25.	Builders of Modern India, C.R. Dass	H.D. Gupta
26.	Constitutional History of India	A.B. Keith

14. ''सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्स्की	लेनिन
15. तोमास्सो कैम्पाबेला (1568–1639)	इतावल
16. ब्रिटिश दार्शनिक राजनीतिक चिन्तक	जान आस्टिन (1811–1680)
17. लहू है कि तब भी गाता है	'पाश' चमनलाल व कत्यायनी
18. विचारों की सान पर	सत्यम वर्मा
19. शहीद भगत सिंह की चुनी हुई कृतियां	शिव वर्मा
20. ''सरदार भगत सिंह'' पत्र और दस्तावेज	वीरेन्द्र सिन्धु
21. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष	प्रो0 विपिन चन्द्र
22. भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज	जगमोहन सिंह चमन लाल
23. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास	मन्मथनाथ गुप्त
24. भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास	श्री गुरूमुख निहाल सिंह
25. भारतीय राजनीति	राम गोपाल
26. भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन	आर0सी0 अग्रवाल

BIBLIOGRAPHY

1. Indian Constitutional Document — Mukherjee
2. Govt. of India : History Survey — Ilbert
3. The cambridge history of India — Robet
4. India Administration to the down of responsible Government — Thakore
5. History of British India — P.E. Robert
6. Indian polity — Chesney
7. History of India — Mill
8. Oxford history of India — Smith
9. Historical Introduction to the Govt. of India — Ilbert
10. A short history of India — Havell
11. National polities and1957 Elections in India — Poplai, S.H.
12. Indian political parties — Raj Kumar, N.V.
13. The Congress Ideology and programe — Sadiq Ali
14. History of the India Liberal party — Shukla, B.S.

15. Party polities in India, The Devlopment of a multiparty system — Welner, M
16. A Nation in Making — S.N. Bannerjee
17. Indian politics sine the mutiny — C.Y. Chintamani
18. The Indian problem — Coupland
19. R. Palme Dutt. — India Today
20. Rajendra Prasad — India Divided
21. History of India from (1858-1918) — Dodurell
22. The Communal Triangle in India — Mehta and Patwardhan
23. Renasent India — Dr. Zacharia
24. Discovery of India — J. Nehru
25. Builders of Modern India, C.R. Dass — H.D. Gupta
26. Constitutional History of India — A.B. Keith